मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाओी देसाओी
नवजीवन मुद्रणालय, कालुपुर, अहमदाबाद

पहली आवृत्ति, प्रति ५०००

दो रुपये

जून, १९४८

जीवनकी ताज़गी

मनुष्य स्वभावसे स्थावर है या जंगम ?

थोड़ा विचार करनेसे ज्ञात होता है कि अुसमें ये दोनों वृत्तियाँ वर्तमान हैं । यदि मनुष्यको जंगली दशासे अुन्नति करते करते आजकी स्थिति प्राप्त हुअी है, तो असलमें मनुष्य जंगम ही होना चाहिअे । जहाँ अन्न और पानी मिले, वहाँ जानेकी प्राणिमात्रकी स्वाभाविक वृत्ति है। जब तक मनुष्य शिकारीका जीवन बिताता था, तब तक अुसे भटकना ही पड़ता था। महाभारतमें भी यह वर्णन मिलता है कि अेक जंगलमें शिकार खतम होते ही पाण्डवों-जैसे आरण्यकोंको दूसरा जंगल खोजना पड़ा था । शिकारी जीवन त्यागकर जब मनुष्यने गड़रिये और चरवाहे (गो-पाल) का जीवन पसन्द किया, तब भी अेक जंगल या बीड़की घास खतम होते ही अुसे दूसरी जगह जाना पड़ता था । श्रीकृष्णके ग्वाल पूर्वज अैसा ही करते थे । आगे चलकर मनुष्यके मनमें विचार आया कि जहाँ अन्न हो वहाँ जाकर रहनेकी बनिस्बत जहाँ रहते हैं वहीं अन्न अुत्पन्न किया जा सके, तो क्या ही अच्छा हो । मनुष्यने जंगलों और बीड़ोंमें मारे मारे फिरना छोड़कर खेती करना शुरू किया, और वह आर्य* बना । खेती शुरू हुअी, और मनुष्यके जीवनमें बहुत ही बड़ा परिवर्तन हो गया । संस्कृति बढ़ी और स्थावरता आयी। स्थावरताके साथ मनुष्यकी कार्यशक्ति तो बढ़ी, लेकिन अुसकी वीर्यशक्ति (vitality) कुछ कम हो गयी होगी । अेक दिशामें कुछ न कुछ त्याग किये बिना मनुष्य दूसरी दिशामें तरक्की कर ही नहीं सकता ।

परन्तु मनुष्य तो लोभी ठहरा । अुसे दोनों स्थितियोंका लाभ चाहिअे था । अुसने देखा कि अगर प्रकृतिने वनस्पति सृष्टिको स्थावर बनाया है, तो अुनकी शादियाँ लगानेके लिअे तितलियों जैसे पुरोहित भी पैदा किये हैं । अमुक बड़ा वर्ग स्थावर रहकर वैभवकी वृद्धि करे और अुसे जंगमताका लाभ पहुँचानेवाला दूसरा अेक वर्ग भटकता रहे, यह व्यवस्था

* अर् = खेती करना

1388

मनुष्यके लिअे अनुकूल सिद्ध हुअी। मनुष्यने गृहस्थाश्रमके साथ साथ घुमक्कड़ोंके अेक-दो आश्रम क़ायम किये। ब्रह्मचारीने जहाँ अध्ययन पूरा किया कि वह घूमने निकलता ही था। तीर्थयात्रा पूरी होनेपर ही अुसे ब्याह करनेकी अिजाज़त मिलती थी। दूसरी तरफसे जहाँ गृहस्थाश्रमकी प्रवृत्ति कुछ ढीली पडी, स्थावरताका जंग चढ़ा कि धर्मशास्त्र कहता है— "अब बहुत भोग लिया, चलो, फिर वनकी तरफ।" जहाँसे आये वहाँ लौटनेमें अेक तरहका आनन्द, अेक तरहका विश्राम होता है। सबेरे अुठकर घूमने गये हुअे लड़के शाम होते ही माँकी सुखदायी गोद खोजेंगे ही। मनुष्य जिस जंगलको छोड़कर बस्तीमें आया, और गृहस्थ अेवं नागरिक बना, अुसके अुसी जंगलमें लौटकर परिव्राजक बननेकी तैयारी करनेमे यही आनन्द भरा हुआ है। और अुसमें प्रगति भी है। प्रगति हमेशा पेंचदार कीलके पेंचों जैसी होती है। अेक चक्कर पूरा करके मूल स्थानपर आनेके साथ ही हम अेक सीढ़ी अूपर चढ़ते हैं।

पुरानी व्यवस्था यह थी कि गृहस्थाश्रमी लोगोंको भी कभी-कभी यात्रापर जाना ही चाहिअे, ताकि मनुष्य देशदेशांतरकी स्थिति देख सके, समझ सके, नये नये सम्बन्ध क़ायम कर सके और स्थावरताकी वजहसे जीवनपर चढ़े हुअे जंगको निकाल सके।

यदि समाजशास्त्रका विकास करनेवाले धर्मकारोंने अैसी व्यवस्था न की होती, तो भी मनुष्य स्वभाव किसी न किसी रीतिसे अिसे खोज ही लेता। मनुष्यमात्रमें जो प्राकृतिक या अीश्वरीय प्रेरणा विद्यमान है, धर्मकार अुसीको शास्त्रीय रूप देनेका काम करते हैं। निरी प्राकृतिक वृत्ति नीचे भी गिर सकती है या अूपर भी अुठा सकती है। जो प्राकृतिक वृत्ति मनुष्यको अूपर अुठाती है, अुसीको अीश्वरीय प्रेरणा कहते हैं। जो अीश्वरकी ओर ले जाय, वही अीश्वरीय। यही कारण है कि स्वतंत्ररूपसे विकसित धर्मोंमें भी सर्वत्र लगभग अेक-सी ही व्यवस्था पाअी जाती है। तीर्थयात्रा करनेकी योजना जापानके शिंटो या बुद्धिस्ट धर्ममे भी पाअी जाती है, और हिन्दुओंकी आश्रमव्यवस्थामें भी। हजका सवाब बतलाने वाले अिस्लाममें भी अिसे स्थान है, और सनके कपडे पहनकर यरुसलेमकी

पवित्र भूमि तक यात्रा करनेवाले ओसाओी भक्तजनोंको भी यह चीज़ प्रिय है।

यात्राको ही प्रधान धर्म माननेवाले परिव्राजक तो हमारे यहाँ थे ही, परन्तु अिसके सिवा हरअेक वर्णके लिअे भी यात्राका थोड़ा-बहुत धर्म बतलाया गया था। ब्राह्मण पहले ब्रह्मचारीके नाते विद्यायात्रा करता था, बादमें यज्ञसत्रोंमें जाता था, चौमासा छोड़कर बीच बीचमें तीर्थयात्रायें तो होती ही थीं। और अैन बुढ़ापेमें भी मरनेके लिअे अेक जगह बैठे रहनेके बदले, जहाँतक पैर ले जायँ, वहाँतक अीशान्य दिशामें चलते जानेका विधान है!

यदि क्षत्रिय आखेटके लिअे हर साल न निकलें, तो खेतीकी रक्षा कैसे हो? और खेतिहर राजको पैदावारका छठा हिस्सा कैसे दें? यदि राजामें शक्ति हो, तो वह घोड़ा छोड़कर अश्वमेधके लिअे भी प्रस्तुत होता ही था। जो राजा दिग्विजय न करे, वह कमजोर समझा जाता था।

वैश्य यानी सौदागर। जब वे अपने काफिले लेकर जंगल पार करने, अेक राज्यमेंसे दूसरे राज्यमें प्रवेश करते, यहाँका माल वहाँ पहुँचाते और वहाँका यहाँ ले आते, तभी सार्थवाहका अुनका जीवन सार्थक माना जाता था। अपनी नयी दुलहिनको भी घर पर छोड़कर सुदूर समुद्रकी यात्रा करनेवाले वाणिज्य-वीरोंकी ढेरों कथायें हमारे साहित्यमें विद्यमान हैं।

बौद्ध साधु अर्थात् प्रबल प्रचारक। अुन्होंने समुद्रयात्राके निषेधकी परवाह न करके सुदूर देशोंतक संस्कृतिका विस्तार किया, और देश देशान्तरके लोगोंको भी वे अिस देशमें ले आये। जिस तरह जंगलमें गेंडा निडर होकर अकेला घूमता है, अुसी तरह श्रवणको सर्वत्र विहार करना चाहिअे। बुद्ध भगवान्की यह सिखावन थी। और स्वयं अुन्होंने तो अिस तरह विहार कर करके अेक समूचे प्रान्तको ही अपनी अिस प्रवृत्तिका नाम दे दिया। बौद्ध धर्मको स्वीकार करनेके बाद सम्राट् अशोकने दिग्विजय छोड़ धर्मविजयको अपनाया और प्रतिवर्ष नयी नयी दिशामें धर्मयात्रायें शुरू कीं।

वृद्धश्रवा अिन्द्रने वैदिक संस्कृतिके प्रारम्भमें ही आदेश दिया था कि जो बैठा रहता है, अुसका नसीब भी बैठा रहता है। जो चलता है, अुसीका भाग्य

चलता है। 'चराति चरतो भगः' यह प्रेरणा लेकर गड़रिये चले, खलासी चले, भक्त चले, सैनिक चले और परिव्राजक भी चले। अिस संसारमें जो कुछ जीवित है वह सभी चलता है, और जब मनुष्य चलते-चलते अूब जाता है, तब स्थावर बनकर रहनेके बदले अिस संसारको ही छोड़कर चल देता है।

यदि मनुष्यको यात्राकी दीक्षा किसीसे मिली है, तो वह आकाशके तारोंसे नहीं, बल्कि जीवनके अखंड प्रवाहका वहन करनेवाली नदियोंसे। अुसमें भी दो प्रकारकी वृत्तियाँ पाअी जाती हैं। जिस प्रकार प्राचीन कालमें कुछ लोग सूरजके अुदय स्थानका पता लगानेके लिअे अुत्तरोत्तर पूर्वकी तरफ़ चलते जाते थे, और दूसरे कुछ लोग अुसके विश्राम-स्थानकी खोजमें पश्चिमकी तरफ़ जाते थे, अुसी तरह कुछ लोग स्वयं यह देखनेके लिअे कि अिन नदियोंका यह अितना अुमड़ता हुआ पानी कहाँसे आता है, अुनके अुद्गमकी तरफ बढ़ते जाते थे, तो दूसरे कुछ अिस सारे पानीका विसर्जन कहाँ होता है, किसमें होता है, हमें वहाँ क्या दीखेगा, अिसका अनुभव करनेके लिअे नाविक बनकर समुद्रकी तरफ जाते थे। गंगोत्रीकी तरफ़ जानेवाले गड़रिये और गंगासागरकी तरफ दौड़नेवाले मल्लाह दोनों भाअी भाअी ही हैं। नदी मुखसे ही समुद्रमें प्रवेश करनेकी सिफारिश करनेवाले कविके वशजोंने कितनी समुद्रयात्रा की है, अिसकी जाँच करने पर केवल निराशा ही पल्ले पड़ेगी। आज यह बतलाना कठिन है कि वेदकालके तुग्र और भुज्यु जो जलयात्रा करते थे, वह नदीकी थी या समुद्रकी। जातक कथामें जिन वणिकोंका वर्णन आता है, वे अेक तरफ़ जावा, बाली, और श्याम-चीन तक जाते होंगे, और दूसरी तरफ अफ्रीकाका सारा पूर्व किनारा छानते होंगे। लेकिन अुनमेंसे अेकने भी प्लीनीकी तरह पूर्व या पश्चिम सागरका 'पेरीप्लस' नहीं लिखा है। जावा पहुँचनेके बाद जिन्होंने लौटनेकी आशा ही छोड़ दी, अुनके वंशज समुद्रयात्राका निषेध करें, तो अिसमें आश्चर्य ही क्या? और यह निषेध किस लिअे? तो कहते हैं कि वहाँ खाने-पीनेमें पवित्रता-अपवित्रताका ध्यान नहीं रहता। आचार धर्मका ठीक-ठीक पालन नहीं हो सकता। अिस संकटसे बचनेका यह अेक अनूठा अुपाय खोजा गया। अेक आदमीको धूपमें जानेसे पित्त-

प्रकोप होता था। अुसने वैद्यसे अिलाज पूछा। सयाने वैद्यने सनातनी बुद्धिमानीसे कहा — "भले मानस, धूपमें जाना ही गलत है। छायामें ही बैठे रहो न, फिर देखें पित्तप्रकोप कैसे होता है?" अिस डरसे कि कहीं किसीकी बुरी निगाह मेरी स्त्रीपर न पड़ जाय, बुरे आदमीको सुधारनेके बदले अपनी स्त्रीको ही सिरसे पैर तक परदेमें 'ढैंक' कर देनेकी बात जिन लोगोंको सूझी और जिन्होंने स्त्रियोंको अन्तःपुरमें ही पूर देना पसन्द किया, यदि अुन लोगोंने समुद्रयात्राका निषेध करके अपनेको अपने ही देशमें पूर रखनेका फैसला किया, तो वह यथायोग्य ही हुआ। अरे, अिन डरपोक व्यवस्थाकारोंने वैराग्यघन संन्यासियोंको भी यह आदेश दिया कि जहाँ खानेको अच्छा न मिलता हो, लोग श्रद्धा-भक्तिसे खिलाते न हों, घमासान मारपीट हर घड़ी चलती रहती हो, अुस देशमें जाना ही न चाहिअे। अुन्होंने यह भी लिख रखा है कि जिस मनुष्यको यात्राका शौक हो, अुसके साथ अपनी बेटीका ब्याह नहीं करना चाहिअे! अुनके निकट सुरक्षितता ही प्रथम धर्म है!

अितना करनेपर भी, और जीवनका अच्छे-से-अच्छा सत्त्व सुखा डालनेपर भी जिसकी रक्षा हम करना चाहते थे, क्या अुसकी रक्षा कर सके? जिनके संसर्गसे बचनेके लिअे हमने समुद्रयात्रा छोड़ी, वे सब मधु-मक्खियोंके छत्तेकी तरह हमपर टूट पड़े और अुन्होंने हमारे राज, हमारे व्यापार, हमारी शिक्षा और हमारे भाग्य — सभीपर कब्जा कर लिया और यहाँ अपना डेरा जमा लिया। 'जो बैठा रहता है, अुसका भाग्य भी बैठा ही रहेगा।'

२

सच तो यह है कि जब जीवनका अुत्थान ढीला पड़ जाता है, तो मनुष्यके हृदयमें अज्ञातका डर घुस जाता है। यदि जीवनमें यौवनपूर्ण प्राण हो, तो अुसी अज्ञातका आमंत्रण टाले नहीं टलता। अज्ञातका पीछा करना, अुसका अनुभव करना, अुसपर विजय पाकर अुसे ज्ञात बनाना ही जीवनका बड़े-से-बड़ा आनन्द और अच्छे-से-अच्छा पौष्टिक अन्न है। वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा अज्ञातपर अेक प्रकारकी विजय प्राप्त की जा सकती है, और यात्रा द्वारा दूसरे प्रकारकी।

जब मनुष्य घोड़ेपर चढ़ता है, तो अुसका हृदय अिस तरह फूलता है, मानो घोड़ेकी शक्तिका भी अुसमें संचार हो गया हो। और शक्तिके अिस साक्षात्कारके कारण मनुष्यका व्यक्तित्व भी अुस हद तक परिपुष्ट होता है। अस्सी मीलकी रफ़्तारसे दौड़नेवाली मोटरका अंकुशचक्र हाथमें आनेपर मनुष्यको लगता है कि यह सारा वेग मेरा ही है। किसी संस्था या राज्यके सचालनका फल — अुसका व्यक्तिगत आनन्द — अिसीमें है कि अुसके कारण अमुक लोगोंके साथ मेरा तादात्म्य हो जाता है, अमुक शक्तिका मैं अमुक मात्रामें अुपयोग कर सकता हूँ, और अमुक व्यक्तियोंको अिकट्ठा करके अेक विराट् शक्ति पैदा कर सकता हूँ। व्यक्तित्वका विकास, शक्तिका संचय और भावीका नियंत्रण ही मनुष्यके लिअे बड़े-से-बड़े आनन्दका विषय है। यात्रामें मनुष्य जितने भूमिभागको आँखों द्वारा अपना कर लेता है, जितना अन्तर पादाक्रान्त करता है, जितना अनुभव जुटा सकता है, अुतने दरजे तक अुसका जीवन समृद्ध होता है। कोठार-भण्डारमें भरा हुआ धन बाहरी होनेसे भाररूप होता है। अनुभवके द्वारा सञ्चित ज्ञान, अर्जित सस्कार और विकसित शक्ति भीतरी होनेसे अुनका भार नहीं लगता, अुल्टे अुनके आ मिलनेसे जीवनमें दूसरा बहुत-सा बोझ अुठानेकी शक्ति प्राप्त हो जाती है। जो मनुष्य यात्राके लिअे निकलता है, अुसे बहुत-सी वस्तुओंके परिग्रहका त्याग करना ही होता है। जो हलका नहीं हो सकता, वह यात्रा कर ही नहीं सकता, चाहे वह बादल हो या आदमी। और यात्रा द्वारा प्राप्त ज्ञान, संस्कार या कौशल अितना आत्मसात् हो जाता है कि अुसका परिग्रह या भार मालूम ही नहीं होता।

यात्रा द्वारा प्राप्त किये ज्ञानमें और आजकी शिक्षा-सस्थाओंमें प्रचलित प्रणाली द्वारा प्राप्त किये ज्ञानमें बड़े-से-बड़ा फर्क यही है। आज-कलकी शिक्षा प्रणाली द्वारा प्राप्त किया ज्ञान भाररूप होता है, क्योंकि वह व्यवहारमें लाया हुआ या हजम किया हुआ नहीं होता। अिसलिअे छोटे बालकोंको पाठशालाकी शिक्षा देनेके बदले यदि यात्राकी शिक्षा दी जाय, तो आखिरकार वह कम खर्चीली और अधिक फलदायी होगी।

यात्री ज्यों ज्यों यात्रा करता जाता है, त्यों त्यों वह अपने चातुर्यका विकास करता है, धीरज और अुदारताका विकास करता है और अन्तमें अच्छे-से-अच्छा समाजशास्त्री बनता है। यात्रा अर्थात् कष्ट सहनेका बादशाही तरीका। यात्राकी असुविधाओंसे मनुष्यको यह नहीं लगता कि वे अुसके दारिद्र्यकी प्रतीक हैं, बल्कि वह सोचता है कि अपनी सूझ-बूझको बढ़ानेका अेक अच्छा मौका अुसे मिला है। अेक दृष्टिसे यात्रा व्यक्तित्वके विकासका साधन है, जब कि दूसरी दृष्टिसे देखा जाय तो वह अनुभवसे ओतप्रोत देशभक्तिका ही अेक प्रकार है। हम अपने देशको जितना देख चुकते हैं, अुसके जितने भागका निरीक्षण कर चुकते हैं, और जितनेको अपना लेते हैं, अुतने देशके प्रति हमारी अेक विशेष धारणा बनती है, अुससे आत्मीयताका सम्बन्ध जुड़ जाता है, अुसके लिअे अभिमान अथवा भक्ति पैदा होती है, और हम अुसके भक्त बन जाते हैं। किसी भी प्रान्तकी यात्रा कर चुकनेके बाद अखबारोंमें अुस प्रान्तके समाचार पढ़ते समय हमारे दिलमें अुनके लिअे कितनी दिलचस्पी होती है!

लेकिन अैसी यात्राके मूलमें दुनियाको लूटनेकी वृत्ति नहीं होनी चाहिअे। जहाँ दुनियाका सत्त्व चूस लेनेकी, अुससे अधिकसे अधिक फायदा अुठानेकी वृत्ति रहती है, वहाँ अूपर कहे गये अुच्च लाभोंमेंसे बहुत ही थोड़े लाभ हाथ आते हैं। स्वार्थी प्रवृत्तिसे प्राप्त होनेवाले लाभोंकी बहुत बड़ी मर्यादा होती है। जब कोअी भक्त या सेवक यात्राके लिअे निकलता है, तो अन्तर्बाह्य सारी शक्तियाँ अपना सब लेकर अुसके साथ हो लेती हैं। दुनियाको चूसनेवाला मनुष्य आखिर अिन्द्रियपरायण ही होगा। और चूँकि अिन्द्रियानुभव अेक हद तक ही आवश्यक होते हैं, अिसलिअे जैसे-जैसे अुनकी मात्रा बढ़ती है, वैसे-वैसे वे अधिकाधिक स्वादहीन होते जाते हैं और अन्तमें अुनका छिछलापन प्रकट हो जाता है। अिन्द्रियानुभवसे मिलनेवाला आनन्द परिमित होता है। मानवजाति अुसका अन्त देख चुकी है।

किन्तु मनुष्यने आज भी अिन्द्रियानुभवसे होनेवाले विकासका अन्त नहीं देखा है। अुसकी विविधता अभी नष्ट नहीं हुअी है। मनुष्य जितना अधिक निःस्पृह, निराग्रही और निस्स्वार्थ होता है, यात्रा द्वारा वह

अुतनी ही अधिक संस्कारिता प्राप्त कर सकता है। जब भक्त या सेवक यात्राको निकलता है, तो अुसमें आत्मानुभव, आत्मविकास और आत्मैक्य तीनोंकी मात्रा बढती जाती है। प्रतिदिन विकसित होनेवाले विश्वको देखकर भोगैश्वर्यके पीछे पडे हुअे मनुष्यके जीमें आता है कि "यह विश्व मेरा हो, मेरे अधीन हो!" अिसके विपरीत भक्तसेवक चाहता है कि मैं ही अिसका सेवक बनूँ, अिसका अंश बनूँ, और अपनेमें अभेदका विकास करके यही बन जाअूँ। जीवनका यही यथार्थ और परम अुत्कर्ष है।

२

कोअी मुझसे पूछे कि यात्रा करनेसे क्या-क्या लाभ है, तो मैं अुसका जवाब आसानीसे दे सकूँगा। लेकिन लोग मुझसे पूछते हैं कि तुम किस अुद्देश्यसे यात्रा करने निकले थे? यह प्रश्न ही बिलकुल दूसरा है। और अिसका जवाब देना सहज नहीं है। खाना, सोना, शादी करना, सन्तान अुत्पन्न करना, आदि विश्वजनीन क्रियायें मनुष्य किस अुद्देश्यसे करता है, सो बतलाना सहल नहीं है। प्रायः मनुष्य यही कहेगा कि मुझसे रहा नहीं जाता, अिसीलिअे मैं अिन सार्वजनिक प्रवृत्तियोंमे भाग लेता हूँ। अिनसे जितने लाभ प्राप्त होते है, वे सब हमारे अिच्छित लाभ तो हैं, परन्तु किस लाभके लोभसे प्रेरित होकर हम प्रवृत्त हुअे हैं, सो हम ठीकसे नहीं कह सकेंगे। भीतरकी अेक अदम्य प्रेरणा बेचैन कर डालती है, अिसलिअे चुपचाप अुसके अधीन होना ही पड़ता है। प्रवृत्तिकी अपनी यह रचना है, योजना है कि जो चीज़ जीवनके लिअे नितान्त अुपयोगी है, अुसके लाभालाभका अधिक विचार करके अुसे पसन्द करना मनुष्यके लिअे ज़रूरी होता ही नहीं। 'नहाना या न नहाना' मनुष्यकी अपनी अिच्छाका विषय हो सकता है, लेकिन 'सोने या न सोने' के विषयमें प्रकृति मनुष्यकी अिच्छाके लिअे कोअी गुंजाअिश नहीं रखती। नींदका आमंत्रण होते ही मनुष्य विवश भावसे अुसके अधीन हो जाता है।

जिस मनुष्यकी वृत्तियाँ विकृत नहीं होतीं, अुसके लिअे यात्राकी प्रेरणा भी अुतनी ही स्वाभाविक होती है। जिस प्रकार बारिशके शुरू

होते ही साँड़ अपने सींगोंसे ज़मीन खोदकर अुसे सूँघने लगता है, अुसी तरह यात्राका अवसर प्राप्त होते ही अपनेआप मनुष्यके पैर बिना पूछे चलने लगते हैं। यदि कोअी अुससे पूछे कि 'कहाँ चले' तो वह कहेगा — "मुझे कोअी पता नहीं। जहाँ जा सकूँगा, चला जाअूँगा। जाना, चलना, स्थानान्तर करना, अेक जगह बैठे न रहना, नये नये अनुभव करना — बस यही मैं जानता हूँ। आँखें प्यासी हैं, सारा शरीर क्षुधित है, अिसलिअे पैर चलते हैं। अिससे अधिक मैं कुछ नहीं जानता।"

शायद पहाड़के रहनेवालोंमें चलनेकी आदत अधिक होती है, परन्तु मैदानके निवासी भी कुछ कम घुमक्कड़ नहीं होते। काशीके गंगाजलको रामेश्वर ले जाकर, रामेश्वरके सेतुकी बालू काशी या हरिद्वार तक पहुँचानेवाले सभी मनुष्य पहाड़ी नहीं होते।

मेरे छुटपनके बहुतसे संस्मरण यात्रासे सम्बन्ध रखते हैं। शाहपुरसे हम बेलगुंदी जाते और वहाँ बिही, अमरूद, आम या करौंदे खाया करते थे। सतारासे जरंडाके पार भी जाकर वहाँ रामदास स्वामीका मठ या हनुमानजीका मन्दिर देखते थे। बेलगाँवसे तिनअीघाट अुतरकर गोआकी अप्रतिम वनश्रीका अवलोकन करते, या फिर आँबोलीघाट पार करके सावतवाड़ीके मोती तालाबके किनारे होनेवाले लकड़ीके रंगीन कामका निरीक्षण करते थे। जहाज़में बैठकर कारवार जाते, वहाँके समुद्र तटपर बालूके महल बनाते, पूना जाकर संगम, पर्वती या चतुःश्रृंगीके दर्शन करते, मिरज, जत, रामदुर्ग, मुधोळ, साँगली और सावनूर जैसे देशी राज्योंके मेहमान बनकर मध्ययुगीन भारतवर्षकी झाँकी देखते और कृष्णाके तीरपर नाचने और कूदते हुअे हाथी-से बैल गाय देखकर आनंदित होते थे। यही मेरे छुटपनके संस्कार हैं। गाड़ीमें घास और गद्देला बिछा हो, अुसे खींचनेवाले बैलोंके गलेमें बँधी घण्टियोंकी आवाज़ रातकी शान्तिको भेदती हो, कहींसे चोर न आ जायें, अिस डरसे जागते रहनेका कर्तव्य स्वीकारनेपर भी आँखें बीच-बीचमें झपकती हों, और हड़बड़ाकर फिर खुलते ही, 'देखो, हम सारी रात किस तरह जागते रहते हैं', यों कहनेवाले तारे माथेपर चमकते हों — यह सारा दृश्य मेरे बचपनके जीवनके साथ गुँथा

हुआ है। यात्राके लिअे मुझे किसी अुद्देश्य या प्रयोजनकी आवश्यकता ही नहीं होती। गांधीजीके साथ विलायत जानेका सुयोग होते हुअे भी मैं क्यों न गया? हिमालयकी यात्रा करनेपर भी मैं अुस पार कैलाश क्यों नहीं गया? अफगानिस्तानके रास्ते रूस जानेका संकल्प अैन वक्त पर क्यों तोड़ दिया? या जावा, बाली, श्याम और सुमात्रा मैं कब जाअूँगा? मॉरिशियससे आये हुअे निमंत्रण मैं कब स्वीकार करूँगा? यदि कोअी अैसे सवाल मुझसे पूछे, तो वह स्वाभाविक है। न जानेका कुछ कारण हो सकता है, पर जानेके लिअे कारणकी क्या जरूरत? कभी नदीसे किसीने पूछा है कि तू क्यों बहती है? जब अुसका बहना रुक जाता है, तभी सबको अचरज होता है।

हिमालयकी यात्राके लिअे मैं किस प्रकार गया और अुससे क्या-क्या पाया, अिसका कुछ कुछ वर्णन तो अिस यात्रा-वृत्तान्तमें शुरूसे आखिर तक जगह जगह आया ही है। हिमालय जानेकी वृत्ति हिन्दू मात्रमें स्वाभाविक रूपसे होती है। सिन्धु, गंगा, ब्रह्मपुत्रा और अुनकी सखियाँ सभी हिमालयकी पुत्रियाँ हैं। अिसलिअे हरअेक नदी-भक्तको कभी न कभी अपने ननिहालमें मौज करने जाना ही है। हिमालयका वैभव संसारके सभी सम्राटोंके समस्त वैभवसे भी बढ़कर है। हिमालय ही हमारा महादेव है। अखिल विश्वकी समृद्धिको समृद्ध करता हुआ भी वह अलिप्त, विरक्त, शान्त और ध्यानस्थ है। हिमालयमें जाकर, अुसीको हृदयमें धारणकर लेनेकी शक्ति जिसमें है, अुसीने जीवनपर विजय पाअी है। अैसे विजयीको अनन्त प्रणाम।

पूना, २७-५-'३८ दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

अितिहास

असलमें यह लेखमाला छपानेके अिरादेसे लिखी ही न गयी थी। आश्रमके साथियों और विद्यार्थियोंके सन्तोषके लिअे आश्रमके अेक हस्त-लिखित मासिकपत्रमें अिसे शुरू किया था। अिसमें जिस यात्राका वर्णन है, अुसमें हम तीन जन थे: स्वामी आनन्द, मैं और हम दोनोंके आत्मीय मित्र अनन्तबुवा मरढेकर। हमारी अिस त्रिपुटिने हिमालयकी यात्रामें जो आनन्द और अनुभव प्राप्त किया, अुसके वर्णनका पार नहीं आ सकता।

* * *

दिल्ली दरबारके बाद जो दमनचक्र शुरू हुआ, अुसके कारण राष्ट्रीय शिक्षाकी प्रिय प्रवृत्ति असम्भव हो गयी। अिसलिअे मुझे यात्रा करनेकी सूझी। १९१२ के शुरूमें मैंने घर छोड़ा। मुझे अैसा स्मरण है कि जिस दिन मैंने बड़ोदा छोड़कर प्रयाग यानी अिलाहाबादका रास्ता लिया, वह दिन अखातीजका दिन था। प्रयाग, काशी और गया, अिन तीन तीर्थोंकी यात्राको त्रिस्थलीकी यात्रा कहते हैं। वह पूरी करके मुझे पितृ-ऋणसे मुक्त होना था। अुसके बाद मुझे बेलुड़मठ देखने और 'श्री रामकृष्ण कथामृत' लिखनेवाले श्री महेन्द्रनाथ गुप्तके दर्शन करनेका अपना संकल्प पूरा करना था। सौभाग्यसे हम बेलुड़मठमें वैशाख पूर्णिमाको पहुँचे। अिसलिअे मठाधिपति स्वामी प्रेमानन्द और दूसरे मठवासियोंके साथ वहाँ बुद्ध भगवान्‌की पूजा कर सके। अुसी दिन खरदह नामके गाँवमें हम चैतन्य संकीर्तन सुनने गये थे। भगिनी निवेदिताने अपने अेक लेखमें अिस स्थानका माहात्म्य बतलाया है। मेरे मित्र बाबा मरढेकर वंश परंपरासे रामदासी सम्प्रदायके थे। अुनका अयोध्याजीके दर्शन करनेका संकल्प था। अुसे पूराकर हम स्वामी आनन्दसे मिलने अलमोड़ा गये। वैशाखका महीना हमने वहीं बिताया। वहाँसे स्वामी आनन्दको लेकर हम लौटे, और हरिद्वारसे बाकायदा यात्रा शुरू कर दी। वे गंगा-दशहरेके दिन थे। ज्यों ज्यों हम अपनी यात्रामें आगे बढ़ते गये, त्यों त्यों यात्राका संकल्प भी बढ़ने लगा। और अन्तमें हम अुत्तराखण्डके चारों धामोंकी, जमनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ और

बद्रीनाथकी यात्रा पूरी करके वापस अलमोड़ा पहुँचे। अिसी यात्राका वर्णन यहाँ दिया गया है।

संसारमें प्रायः अैसा माना जाता है कि पैदल यात्रा करना मुश्किल है। मैं समझता हूँ कि यात्रा करनेकी अपेक्षा अुसका वर्णन लिखनेके लिअे समय निकालना ज़्यादा मुश्किल है। यहाँ हिमालयकी जिस यात्राका वृत्तान्त दिया गया है, वह चालीस दिनमें समाप्त हुअी थी। सन् १९१९में, अर्थात् यात्राके सात वर्ष बाद अुसका वर्णन लिखना शुरू किया। पुराने संस्मरण सभी समान रूपसे ताजे नहीं रह सकते, और जो संस्मरण ताजे न हों, अुनका वर्णन करनेमें कभी मज़ा नहीं आता।

कअी तरहकी परिस्थितियोंके कारण थोड़ी-थोड़ी करके मेरी यह लेखमाला पन्द्रह साल तक लिखी जाती रही। फ़िर अिसमें अेकरूपता कहाँसे आ पाती? अगर पाठक अुसे ध्यानसे देखेंगे, तो अुन्हें अिसमें जीवनरसकी बदलती हुअी वृत्तियाँ दिखायी देंगी। अन्तिम पाँच-सात अध्याय जल्दी जल्दीमे लिखे गये थे, अिसलिअे अुनमें वर्णनोंका विस्तार कम दिखायी देगा। अेक तो ये संस्मरण बहुत कुछ पुछ गये थे, और दूसरे, यात्राका अन्तिम भाग भी कुछ थकावटमें ही पूरा हुआ था। अतः अुस थकावटका असर भी अिन अन्तिम अध्यायोंपर पड़ा है। पाठकोंने जो अपेक्षा रखी थी, और जिस अपेक्षाके लिअे मैं जवाबदेह हूँ, वह अगर यहाँ पूरी न हुअी हो तो, आशा है वे अुदार हृदयसे मुझे क्षमा करेंगे।

अिन पन्द्रह वर्षोंमें गुजरातके नवयुवकोंने कअी यात्रायें की है। मैं आशा करता हूँ कि गुजरात और सारे भारतके युवक यात्राका महत्त्व अुत्तरोत्तर अधिक समझेंगे; चारों दिशाओंमें घूमकर देश तथा देशबन्धुओंका अवलोकन करेंगे; और भारत-भक्तिसे लबालब अनेक यात्रा-वर्णन लिखकर स्वभाषाको सुशोभित करेंगे। मातृभूमिका और अुसके असख्य बालकोंका अनेक प्रकारसे दर्शन कर अुनका वर्णन करना भी अेक प्रकारकी पूजा ही है। अिस पूजाके प्रथम पुष्पके नाते अिस लेखमालाका स्मरण थोड़े दिन तक भी रहा, तो यह सार्थक मानी जायगी।

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

विनय

हिमालयका यह प्रवास सन् १९१२ के अरसेमें किया था। पाँच-छह बरसके बाद अुस प्रवासका वर्णन साबरमतीके सत्याग्रह आश्रममें बैठकर लिखना शुरू किया; और खण्डशः अुसे सन् १९२० के करीब पूरा किया। जब कभी समय मिला और किसी स्नेहीने प्रेरणा दी, अेक-दो प्रकरण लिख दिये। अिस ढंगसे यह किताब लिखी गअी है। गुजरातके जनसमुदायमें मैं अितना घुलमिल गया था और गांधीजीके नवजीवनके द्वारा लोगोंके अितने संपर्कमें आया था कि लोगोंने अिस प्रवासवर्णनको बड़े चावसे पढ़ा। गुजरातीमें अिस किताबकी छह आवृत्तियाँ हो चुकी हैं। बादमें अिसका मराठी अनुवाद हुआ। महाराष्ट्री होनेके कारण वहाँके लोगोंने भी अेक परिचित व्यक्तिके प्रवासवर्णनके तौरपर अिसका स्वागत किया।

अब यही प्रवासवर्णन हिन्दीमें प्रकाशित होने जा रहा है। मुझे पता नहीं हिन्दीभाषी जनता अिसका कैसा स्वागत करेगी। हिन्दी जनता मुझे राष्ट्रभाषा प्रचारककी हैसियतसे ही पहचानती है। जबसे महात्माजीने नागरी और अुर्दू दोनों लिपिके स्वीकारपर जोर दिया और मैंने अुसका प्रचार शुरू किया, तबसे हिन्दीभाषी जनता कुछ अप्रसन्न-सी हुअी है। मेरे सनातनी संस्कारोंसे वह परिचित नहीं है। परिचित होती तो शायद चन्द लोग मेरे अुर्दू लिपिके स्वीकारपर अधिक नाराज हो जाते!

जब मेरे मित्र दादा धर्माधिकारीजीने बड़े प्रेमसे हिमालयके प्रवासका हिन्दी अनुवाद करना स्वीकार किया, तब हिन्दुस्तानी प्रचारका प्रारम्भ हुआ था। मैंने अुनसे कहा कि अिस पुस्तकका सारा वायुमण्डल केवल हिन्दू समाजके सामाजिक-धार्मिक जीवनसे सम्बन्ध रखता है। अिसके पाठकगण भी अुसी ढंगके होंगे। अिसलिअे अिसे हिन्दुस्तानी शैलीमें अुतारनेका प्रयत्न न करें। जैसी मेरी शैली गुजरातीमें है वैसी ही हिन्दीमें प्रतिबिम्बित हो जाय, यही अिस किताबके लिअे अिष्ट है।

दादा धर्माधिकारीजी हिन्दीके सिद्धहस्त लेखक तो हैं ही, शब्दरसिक भी पूरे पूरे हैं। अिसलिअे अुनके अनुवादपर मेरा पूरा भरोसा है। श्री काशिनाथजी त्रिवेदीने भी यत्रतत्र अपनी कलम अिसमें चलाअी है।

धार्मिक जीवनके आदर्शके बारेमें मेरे ही नहीं, देशके बहुतसे चिन्तकोंके विचार वेगसे बदल रहे हैं। यहाँ जिस विचारप्रणालीका पुरस्कार किया है, वह सनातनी धार्मिक दृष्टिके प्रति सहानुभूति और आदर रखते हुअे भी मौलिक सुधार चाहती है। तो भी स्वधर्मनिष्ठाका विकास करके सर्वधर्मनिष्ठा तक वह अिसमें नहीं गअी है। लेकिन पाठकोंके लिअे यह बात सोचना आवश्यक नहीं है। हिमालय स्वयं पार्वती-जैसी भारत-भूमिका पिता है। वह 'नत नयने अनिमेषे' अपनी पुत्रीका कल्याण चिन्तन करता रहता है। अुसका दर्शन करना हरअेक भारतवासीका कर्त्तव्य है। अुस दर्शनके प्रति आकर्षित करनेवाला यह शब्ददर्शन पाठकोंको प्रिय हो!

कराडी

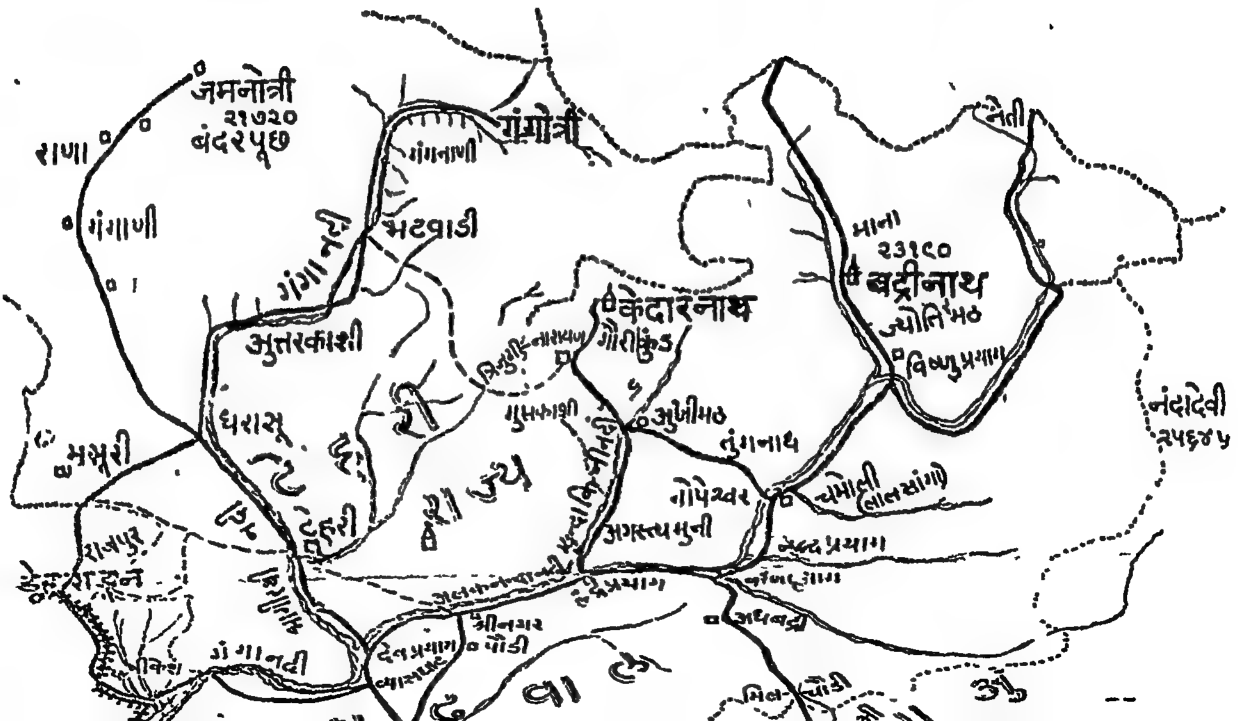
अक्षय तृतीया, ११-६-'४८ काका कालेलकर

प्रिय सुहृद
ब्रह्मचारी अनन्तबुवा मरढेकरकी
पवित्र स्मृतिमें

अनुक्रमणिका

जमनोत्री गंगोत्री केदारनाथ बदरीनारायण

ઉત્તરાખંડની યાત્રા



શ્રીનગર
પૌડી
દેવપ્રયાગ
વ્યાસઘાટ
ગંગા નદી
ઋષીકેશ
હરદ્વાર
સહારનપુર
અધબદ્રી
મિલ-ચૌડી
ગઢ વાલ
૫૭૭૮ લૅન્સડૌન
કોટદ્વારા
નજીબાબાદ
બિજનોર
આલમોરા
દ્વારાહાટ
રાનીખેત
અલમોરા
દક્ષિણ
રામનગર
નૈનીતાલ
ભીમતાલ
કાઠગોદામ
યાત્રા માર્ગ
જંગલી વાટ
નદી
રેલવે

हिमालयकी यात्रा

१

संकल्प

गच्छति पुरः शरीरं
धावति पश्चादसंस्तुतं चेतः ।

हिमालय जानेकी मेरी बड़ी अिच्छा थी; मैं हमेशा हिमालय जानेकी बात तो सोचा करता था; लेकिन कैसे जा सकूँगा, अिसकी कोअी कल्पना भी मेरे दिमागमें नहीं थी । आखिर अेक दिन अनसोचे ढंगसे मेरे लिअे हिमालय जानेका रास्ता खुल गया ।

परिवारके लोगोंको घर पहुँचानेके लिअे मैं बेलगाम गया । वहाँसे कहाँ जानेवाला हूँ, अिसकी कोअी खबर किसीको न देते हुअे ही मैं काशी-यात्राके बहाने रवाना हुआ । अनन्त बुवा मेरे साथ थे ।

हम चले, रेलगाड़ीके वेगसे चले । लेकिन हमारी कल्पनाअें तो पवनवेगसे — पवनवेग ही क्यों, मनोवेगसे — दौड़ती थीं । मेरे दिलमें विचार आया, मैं महाराष्ट्र छोड़कर जा रहा हूँ । शायद लौट भी न सकूँ । अब मराठीकी मीठी बातें फिर कहाँ सुननेको मिलेंगी ? अेक तरफ हिमालय खींच रहा था । दूसरी तरफ महाराष्ट्रका मोह छूटता नहीं था । हृदय आगे दौड़ता था, लेकिन पैर अुठते ही न थे । आखिर विचार किया कि गोआकी रमणीय निसर्गश्रीका निरीक्षण करनेमें आठ-दस दिन बिताये बगैर तो हरगिज न जाअूँगा । चैत्र प्रतिपदासे रामनवमी तक गोआमें रहा, और अुदास अन्तःकरणसे गोआसे रवाना हुआ ।

समुद्रके रास्ते हम बम्बअी आये । बम्बअीमें मुझे कोअी खास काम तो नहीं था, लेकिन मुझसे किसी तरह बम्बअी छोड़ी नहीं जाती थी । बम्बअी महाराष्ट्रका अन्तिम दर्शन था । मुझे महाराष्ट्रसे अितना अनुराग होगा, मराठी भाषा मुझे अितनी प्यारी होगी, अिसकी कल्पना भी अितने दिनोंतक मुझे नहीं थी । मैं महाराष्ट्रीय हूँ, यह भावना भी

जब मैंने बम्बअी छोड़ी, तभी यथार्थमें जाग्रत हुअी। बम्बअीसे मैं बड़ौदा आया। मृत बननेपर जीवात्मा जिस प्रकार अपनी मृत देहको अनेक मिश्रित भावोंसे देखता है, अुसी प्रकार, वैसे ही मिश्रित भावोंसे, गंगनाथ-विद्यालयका मकान आदि सब कुछ मैंने अन्तिम बार देख लिया। गुरुजनोंसे आशीर्वाद लिया और शिव-जयन्तीके दिन (?) सीमोल्लंघन किया।

२

प्रयागराज

वैसाखका महीना था। गरमी सख्त पड़ रही थी। हमारी गाड़ी मध्य हिन्दुस्तानके विस्तीर्ण प्रदेशमेंसे दौड़ने लगी। डिब्बे अितने गरम हो गये थे, मानो डबल रोटीकी भट्टियाँ हों। हरअेक स्टेशनपर पानी पीने पर भी गला सूखा जाता था। जी बेचैन रहता था। फिर भी, अेक चीजके कारण कलेजेको ठण्डक पहुँचती रहती थी। हरअेक स्टेशनपर मराठी भाषा सुनाअी देती थी, और पुण्डलीकके धामके रास्ते जाते हुअे जिस तरह दोनों तरफ बबूलके पेड़ नज़र आते हैं, अुसी तरह यहाँ भी नजर आ रहे थे। मराठी भाषा और बबूलके पेड़ जहाँतक थे, वहाँतक मैं महाराष्ट्रमें ही हूँ, अिस विचारसे चित्तको शान्ति मिलती थी। लगभग जबलपुरतक यही सिलसिला रहा।

जबलपुरमें मेरे अेक मित्र रहते थे। अुन्हें खोजकर मैं अुनसे मिला, और अुनके यहाँ भोजन किया। मेरे दिलमें विचार आया कि यही मेरा आखिरी महाराष्ट्रीय भोजन है। विचित्रता यह रही कि मुझे यह भोजन भी गुप्तवेशमें ही करना पड़ा। कअी वर्ष पहले मेरे ये मित्र अेल्-अेल्० बी० की तैयारी कर रहे थे; अुस वक्त मैंने अुन्हें यह समझानेकी कोशिश की थी कि वकालतका धन्धा गन्दा है, अुसकी अपेक्षा राष्ट्रीय शिक्षक होना कहीं अच्छा है। मैं अपने अिस षड्यंत्रमें सफल हुआ, अिसलिअे मेरे मित्रके सभी आत्मीय और सगे-सम्बन्धी मारे क्रोधके मुझसे जलते थे। अुन्होंने मुझे देखा तो

न था, लेकिन नाम सुना था। मुझे देखकर मेरे मित्रने मुझसे अंग्रेजीमें कहा — “भाभी, अगर मेरी मॉको यह पता चल जाय कि तुम कौन हो, तो तुमपर तुरन्त फूल बरसने लगेंगे। तुम्हें आध घण्टेमें लौटना है। अितनी-सी देरके लिअे व्यर्थका बखेड़ा क्यों मोल लिया जाय?” मैंने भी अुनकी बात मान ली, और चोरकी तरह चुपचाप नहा-धोकर भोजन कर लिया। नाम और रूपका संयोग नहीं हुआ था, अिसलिअे बेचारी मॉने बड़े प्रेमसे रसोअी पकाकर मुझे गरमागरम महाराष्ट्रीय भोजन खिलाया। विदा होते समय मैंने अुसके सामने अपना माथा नमाया, और प्रेमल माताके सारे शुभ आशीर्वाद पाकर मैं रवाना हुआ।

हमारी यात्राका पहला धाम था प्रयागराज। अितिहास-पुराणोंमें प्रसिद्ध गंगा-यमुनाका रमणीय संगम यहीं है। अेक तरफसे दोनों किनारोंकी सफेद बालू अुछालती हुअी स्वर्धुनी दौड़ती आती है। दूसरी तरफसे यमराजकी बहन अपना महत्त्व और प्रतिष्ठा सम्हालती हुअी धीरे-धीरे आगे बढ़ती है। संगमसे दूरतक अिन दो नदियोंके धवल और श्याम प्रवाह अिस प्रकार बहते हैं, मानो वे अलग-अलग ही हों। प्राचीनकालमें हमारे कवियोंने अिस संगमके काव्यमय स्थानपर अपनी सरस्वती बहायी है। हमारी धर्मनिष्ठ जनताने अति प्राचीनकालसे असाधारण अुत्साहके साथ अिस त्रिवेणी-संगमकी पूजा की है। गंगाका नाम लेते ही हरद्वार और ब्रह्मावर्त्त याद आते हैं। और यमुनाका नाम सुनते ही कभी तो कुंजविहारीका मथुरा-वृन्दावन याद आता है, और कभी शाहजहाँकी दिल्ली और आगरेका स्मरण होता है। हिन्दू और मुसलमान संस्कृतिकी अेकताकी थोड़ी झाँकीभर करनेवाले सम्राट् अकबरने अिसी संगमपर अवस्थित सनातन अक्षयवटके आसपास अेक मजबूत किला बनवाया है।

हम किला देखने गये। किलेमें गोरोंकी फौज रहती है। — पहले संगमकी तरफवाले दरवाजेपर जब यात्रियोंकी बहुत भीड़ हो जाती है तो अन्दरसे अेक सिपाही आकर सबको भीतर ले जाता है, और अक्षयवटका दर्शन कराकर दूसरे दरवाजेसे बाहर निकाल देता है। अक्षयवट तो अेक तहखाने-जैसी गुफामें है। वट तो क्या, अेक जबरदस्त तना-भर है। श्रद्धालु लोग कहते हैं कि वृक्षकी पीड़ यहाँ है, और अुसकी डालियाँ

बुद्धगयामें हैं। अिसका अर्थ क्या है, सो समझना मुश्किल है। क्या अिसका यह मतलब लिया जाय कि किसी समय बौद्ध धर्म बुद्धगयासे अिलाहाबादतक फैला हुआ था? अैसा कहा जाता है कि हिमालयमें भी महादेवके महालिंगका अेक छोर केदारनाथमें है, और दूसरा नेपालमें पशुपतिनाथके रूपमें है। लेकिन अुसका अर्थ क्या? अरे, हिन्दू तो यह भी कहते नहीं हिचकते कि गदाधर श्री विष्णुका अेक पैर गयामें है, और दूसरा मक्केमें! कल्पनाके साम्राज्यमें संयमसे क्या मतलब? अक्षयवटकी गुफा काफी लम्बी-चौड़ी है, और अुसमें अनेक मूर्त्तियाँ है। किसी समय गंगा-यमुनाका प्रवाह अक्षयवटसे करीब-करीब लगा हुआ ही था। अुस ज़मानेमें कअी हिन्दू अिस अक्षयवटसे प्रवाहमें कूदकर देहत्याग करते थे। अैसा माना जाता था कि अिस प्रकार अक्षयवटसे कूदकर आत्महत्या करना पाप नहीं है, बल्कि अुसमें मुक्ति है। मानो लोगोंकी अिस अघोर साधनासे तंग आकर ही संगमने अपना स्थान बदल दिया, और अकबरने बरगदके आसपास किला बनवाकर अिस आत्महत्याकी सम्भावनाको सदाके लिअे मिटा दिया। सैनिक दृष्टिसे तो किलेका महत्त्व है ही।

अिस किलेमें बौद्धधर्मीय सम्राट् अशोकका अेक शिला-स्तम्भ है। अुसपर अशोककी धर्म-लिपि खुदी हुअी है। समुद्रगुप्तके राजकवि हरिषेणके लिखे हुअे कुछ श्लोक भी अिसी स्तम्भपर खुदे हुअे हैं। अितिहासवेत्ता अिन दोनों आलेखोंको बहुत महत्त्वका मानते है।

साथके सिपाहीकी थोड़ी .खुशामद करके मैंने अशोकके अिस शिला-स्तम्भके पास जानेकी अिजाज़त पाअी। सिपाही बेचारा पंजाबी था। कहने लगा — 'वहाँ दर्शनके लायक कोअी चीज़ नहीं है। दर्शन तो अुस गुफामें है।' बेचारा भोला पंजाबी! वह क्या जाने कि मेरे लिअे दर्शन क्या है? अिस पत्थरके गोल खम्भेपर दिग्विजय और धर्मविजयके दो स्वतंत्र और अमर लेख है, अिसका बोध अुसे कब होगा? क्या जब हिन्दुस्तानमें शिक्षा अनिवार्य और सार्वत्रिक होगी तब? राष्ट्रीयताकी अुमंग घर-घर पहुँचेगी तब? या कोअी लोक-कवि जनताकी विभिन्न बोलियोंमें अुसकी महिमा गायेगा तब?

किलेके सामने ही संगमके पास अेक विस्तीर्ण रेतीला मैदान है। अुसमें प्रयागके पण्डे अपने-अपने डेरे लगाकर बैठे होते हैं। तम्बुओंकी अिस घनी बस्तीमें यात्री अपने पण्डेका तम्बू पहचान सकें, अिसके लिअे हरअेक तम्बूपर विशिष्ट चिह्नांकित ध्वजा होती है। कोअी कपिध्वज, कोअी मकरध्वज, तो कोअी नौकाध्वज। नये जमानेकी सूचक 'हवाअी-गाड़ियाँ' (मोटरें) और रेलगाड़ियाँ भी ध्वजापर दिखाअी देती हैं।

हर बारहवें साल यहाँ प्रख्यात कुंभ-मेला लगता है। हर साल माघ-मेला तो लगता ही है। अिन मेलोंमें प्रान्त-प्रान्तके साधु, सन्यासी, तपस्वी और सन्त-महन्त आते हैं। धर्म-चर्चा होती है, तत्त्वज्ञानके दंगल होते हैं, नअी-नअी दलीलोंका लेन-देन होता है। आतुर शिष्योंको गुरु मिलते हैं, और शिष्योंके दीवाने गुरुओंको चेलोंकी प्राप्ति होती है। हरअेक वाद-विवादमें कितने प्रमाण मानने चाहियें, अिसकी चर्चा तो घण्टों चलती रहती होगी। कोअी प्रत्यक्ष तथा अनुमान को ही मानते हैं। बहुतेरे अुप-मान और शब्द-प्रमाणको भी मानते हैं। नंगे साधुओंमें जब शास्त्रार्थ होते हैं, तो न्यायशास्त्रमें बताये हुअे प्रमाणोंके अलावा लाठी और गालीके दो अतिरिक्त प्रमाणोंका प्रयोग होता है। ये लोग मौतसे नहीं डरते, लेकिन पुलिससे बहुत डरते हैं। क्योंकि अगर पुलिस अिन्हें पकड़कर हिरासतमें ले ले, तो वहाँ ये अपने धर्मका पालन नहीं कर सकेंगे! अगर डण्डेबाज़ीमें पाँच-दस साधु खप जायें, तो पुलिसके आनेसे पहले अुनके मुर्दोंको रेतमें पूरकर, और रेतकी सतह बराबर करके वे अुसपर बैठ जायेंगे। चाहे वहाँ हजारों बाबा क्यों न खड़े हों, पुलिसको अेक भी गवाह न मिलेगा। अपराधियोंको सजा देनेसे समाजमें अपराध कम नहीं हुअे हैं, और अैसे साधुओंको सज़ा न होनेसे अुनमें अपराध बढ़े नहीं हैं, यह बात विचार करने योग्य है।

मुझे प्रयागराजमें पिताजीके फूलों (अस्थि) का त्रिवेणी-संगममें विसर्जन करना था। वह काम पूरा करके मैंने श्राद्ध किया। नदी किनारे मूँछें मुँड़वाये हुअे लोग बहुत देखनेमें आते थे, जिस कारण अैसा लगता था, मानो मद्रासी लोगोंने अुत्तर हिन्दुस्तानमें अपनी अेक बस्ती ही बसा ली है। आम तौरपर जब हम सिन्धियोंको देखते हैं, तो वे नीम-अंग्रेज और नीम-

पारसी जैसे लगते हैं; लेकिन तीर्थक्षेत्रमे अत्यन्त श्रद्धाशीलता दिखानेवाले और भक्तिसे गद्‌गद होनेवाले यात्रियोंमें सिन्धका नम्बर पहला आयेगा। महाराष्ट्रीय थोडे खर्च और थोडे समयमें अधिक-से-अधिक कैसे देखा जाय, और पुण्यका सचय कैसे हो, अिसीपर ज़्यादा ध्यान देते हैं। गुजराती हमेशा खाने-पीनेकी सुविधाकी फिकरमें घूमते हुअे नज़र आते हैं। और बंगाली अिस बातकी अधिक चिन्ता रखते हुअे दिखाअी देते हैं कि अुनकी भक्तिके भावावेशको सारी दुनिया अच्छी तरह देख सके। मद्रासी चेहरेपरसे तो होशियार मालूम होते है, लेकिन हिन्दी न जानने के कारण, और अपने विचित्र रिवाज और पोशाकके कारण रोझों (जगली घोड़ा) के समान यहाँ-वहाँ भटकते दिखाअी देते है। मज़दूरों और गाडीवालोंसे तो अुनकी कभी बनती ही नहीं।

युक्तप्रान्तके लोगोंके लिअे प्रयाग कोअी परदेश नहीं है। वे तो बाक़ायदा रूअीकी मिरजअी पहने, सिरपर कुछ तिरछी टोपी लगाये, मुँहमें पान दबाये, सजे हुअे साँड़ोंके समान घूमते-फिरते हैं। अुन्हें देखकर हर कोअी कह सकता है — 'आत्मन्येव च संतुष्टः अस्य कार्यं न विद्यते।' अग्रेज़ी पढ़ा-लिखा आदमी चाहे किसी प्रान्तका क्यों न हो, अुसकी अेक अलग ज़ात बन ही जाती है। अैसे तीर्थस्थानमें आनेसे मेरी शिक्षापर कोअी धब्बा तो नहीं लग गया है, अैसी मुखमुद्रा बनाकर वह सबसे दूर, अलग-थलग घूमता है। और अिन सबके चित्र-विचित्र स्वभावों, पोशाकों, और रिवाजोंकी तरफ़से बिलकुल अुदासीन रहकर गगा और यमुनाका सनातन प्रवाह अमरपुरी वाराणसीकी ओर अखण्ड, अविरत बहता ही रहता है।

३

अमरपुरी वाराणसी

मैं पहले भी अेक बार काशीजी गया था। तो भी परिचयसे अुत्पन्न होनेवाली अवज्ञा मुझमें पैदा नहीं हुआी थी। जब रेलमें बैठकर मैं गंगाजीके पुलपरसे जा रहा था, तब काशीका वह अद्भुत दृश्य देखकर मैं गद्गद हो अुठा था। काशीमें दूरसे ही हमेशा अेक अैसी आवाज़ सुनाअी देती है, मानो शहदके छत्तेपर बैठी हुअी मधुमक्खियाँ गुनगुना रही हों। 'वारणा' नदीसे 'असी' नदीतकके दृश्यमें सबसे अधिक ध्यान तो औरंगजेबकी मसजिदकी गगनस्पर्शी दो मीनारें ही आकृष्ट करती हैं। अुन मीनारोंको देखकर अेक विचार-परम्परा मनमें जाग्रत हुअी। मैंने मन ही मन कहा — "अिन दो मीनारोंके पीछे हिन्दुस्तानके अितिहासका परम रहस्य — चरम रहस्य — छिपा हुआ है। औरंगजेबने धर्मान्धताके जोशमें आकर, काशीके केन्द्र, हिन्दू धर्मके तिलक, विश्वेश्वरनाथके मन्दिरको तुड़वा डाला और अुसकी जगह अेक मसजिद बनवाअी। आज भी अिस मसजिदके पिछले हिस्सेमें मूल मन्दिरका अवशेष दीख पड़ता है। औरंगजेबकी मृत्यु हुअी। मुगल साम्राज्यका पतन हुआ। हिन्दू-पदपादशाहीकी स्थापनाकी अिच्छा करनेवाले मराठोंकी धाक दिल्लीपर जम गअी। मराठा सरदार हरिद्वारके पण्डोंको भूमिदान देने लगे। फिर भी, अिन हिन्दुओंको काशी-जैसे पवित्र धर्म-क्षेत्रमें अिस्लामकी पताकाके समान विराजती हुअी औरंगजेबकी मसजिद तोड़ डालनेके विचारने स्पर्शतक नहीं किया। आज यह मसजिद अिस्लामके विजयकी पताका नहीं रही है। लेकिन जब हिन्दुओंका साम्राज्य लगभग सारे देशमें फैल गया था, अुस समय प्रकट की हुअी अुनकी सहिष्णुताकी ध्वजा है। हिन्दू जातिके अिस प्रेम-मन्त्रको अंग्रेज समझ ही नहीं सकते, फिर वे अिसे ग्रहण तो कैसे करते? अिसीलिअे कानपुरके कुअेंपर लिखे हुअे अपने द्वेष-लेखकी हिफाज़तके लिअे सरकारने वहाँ गोरोंका पहरा बिठा दिया है, और दिल्ली शहरके सामने तलवार अुठाकर खड़े हुअे सेनापतिका पुतला खड़ा करनेमें बड़ा पुरुषार्थ माना है।"

अिन विचारोंके प्रवाहमे मैं जाने कहाँ वहता चला जाता; लेकिन पुलके नीचे वहते गंगाजीके शान्त प्रवाहने मुझे भी शान्त कर दिया। पर यह शान्ति देरतक टिकने नहीं पाअी। स्टेशनके पास आते ही मेरी छाती धड़कने लगी। पण्डोंका झुण्ड मेरे पीछे पड़ेगा, अिस खयालसे मेरे गात्र ढीले पड़ गये। रूसके जंगलका कोअी मुसाफिर भेड़ियोंके झुण्डको अपना पीछा करते देखकर भी अितना घबराया न होगा। डरते-डरते मैं ट्रेनसे अुतरा, और अेक गाड़ीवानके पास जाकर अुससे कहा — "भाअी, जितना किराया लेना हो, ले लो, लेकिन मुझे फौरन यहाँसे दुर्गाघाटकी तरफ ले चलो।" गाड़ीवानने गाड़ी तो हाँकी, लेकिन फिर भी दो पण्डे अपने-अपने पोथे बगलमें दबाकर मेरे पीछे दौड़े। मैं अुनके चंगुलसे ज्यों-त्यों छुटकारा पाकर अनन्त भट्टके घर जा पहुँचा।

अनन्त भट्ट बड़े भले आदमी थे। अपना कर्मकाण्ड भलीभाँति निवाहते थे। यजमानोंकी आव-भगत अपने कुलकी प्रतिष्ठाके अनुरूप करते और अपनी आय बढ़ाते थे। साहूकारीका धन्धा भी करते थे। सोनेसे पहले मुझे पण्डोंका खयाल आया। मैंने सोचा, अनन्त भट्ट भी तो अेक तरहके पण्डे ही हैं। अगर ये यहाँ न होते, तो मेरी यात्रा सुचारु रूपसे न हो पाती। विलायतके हर बड़े शहरमे होटल होते हैं। 'हाअुस अेजण्ट्स' होते है। टॉमस कुक-जैसी कम्पनियाँ होती हैं। हर बन्दरगाहपर शिपिंग अेजण्ट्स भी मिलते है। क्या ये पण्डे वही काम हमारे जीवनके अनुरूप ढंगसे नहीं करते? पण्डेको चिट्ठी लिखते ही वह हमे लेनेके लिअे स्टेशनपर आता है। घर ले जाकर रहनेका प्रबन्ध करता है। दर्शनीय मन्दिर और स्थान दिखाता है, अुन सबका माहात्म्य भी बताता है, हमारे साथ बाजारमे भी आता है, और अिस सबके लिअे लेता क्या है? जो कुछ हम दे दें। अितनी सस्ती और सादी व्यवस्था दुनियामें और कहीं न मिलेगी।

तब हमे अिन पण्डोंसे घबराहट क्यों होती है? अिसका कारण यही है कि पण्डोंको अबतक अिस बातका पूरा भान नहीं हुआ है कि वे अब गुरु या पुरोहित न रहकर 'हाअुस अेजण्ट' या 'हॉटेल कीपर' ही रह गये हैं। दो आदर्श सम्हालनेकी कोशिशमें अुनकी यह दशा हो गअी है। सच पूछिये, तो

ये पण्डे यात्रियोंके गुरु कहलाते हैं। अपनी भलमनसाहत और आतिथ्य-धर्मके अनुसार शुरू-शुरूमें अिन्होंने अपने यजमानोंकी खातिरदारी की होगी। बादमें धनवान यात्रियोंको देखकर ब्राह्मणोंका हृदय लोभसे विचलित हो अुठा होगा। ब्राह्मण कहते हैं कि पण्डोंका लोभ सीताजीका शाप है। धन्य है अिन ब्राह्मणोंको, जो अपने भद्दे-से-भद्दे दोषके लिअे भी व्यास या शौनक ऋषिके नामसे पौराणिक प्रमाण अुत्पन्न कर सकते हैं। अिन गंगापुत्रोंमेंसे कुछ आधुनिक पद्धति स्वीकार कर 'हाउस-अेजण्ट' और 'ट्राव्हलर्स गाअिड' बन जायँ, और अिस तरह अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा करें, तो भी वे खूब कमायेंगे और यात्रियोंके आशीर्वाद भी पायेंगे।

दूसरे दिन हम मणिकर्णिका घाटपर नहाने गये। वहाँ गंगाजीका ही पानी लेकर गंगाजीका अभिषेक किया। फिर चक्रपुष्करिणी तीर्थपर पहुँचे। पास खड़े हुअे अेक गंगापुत्रने कहा — "आअिये महाराज, स्नान कीजिये।" मैंने अुसे मना कर दिया। बाबा चौंक गये। अुन्होंने पूछा — "क्यों अिस तीर्थका ज्यादा माहात्म्य नहीं है?" मैंने जवाब दिया — "क्यों नहीं? अगर आदमी अिसमें अेक बार नहा ले, तो फिर अुसे नरकमें जानेकी जरूरत न रह जाय।" बाबा समझ गये। फिर भी, अुनका कुतूहल तृप्त करनेके लिअे हम तीर्थके पास गये। तीर्थपर अेक संगमरमरका पत्थर था। अुसपर अंग्रेजीमें विक्टोरिया रानीका नाम और दूसरी कुछ बातें लिखी थीं। और तीर्थमें? पाँच फुट चौड़ा और पचीस-तीस फुट लम्बा अेक गड्ढा। पानीका रंग हम देख न सके। क्योंकि अुस कुण्डमें रोज नहानेवाले हजारों यात्रियोंके पसीनेकी मैलकी पर्तें पानीपर जम गअी थी। तो भी सैकड़ों यात्री मृत्युके बादके नरकसे बचनेके लिअे अिस नरकमें बड़े शौकसे गोते लगा रहे थे। मुझे लगा, अीश्वर मारे शर्मके अिन लोगोंको नरकवाससे मुक्त कर देता होगा। क्योंकि अिस कुण्डमें स्नान करनेवाले भी जिसे देखकर घिनायें, वैसा कुण्ड अीश्वर नरकमें भी कहाँसे लायेगा?

हम स्मशानघाटकी तरफ चले। वहाँ कटी हुअी लकड़ियोंका ढेर रचकर रक्खा था। मैंने सोचा, कहीं मेरे लिअे ही तो यह ढेर नहीं

रचाया गया है ! जो मनुष्य काशीमें मरता है, अुसके कानमें स्वयं महादेव तार स्वरसे मन्त्र पढ़ जाते है, और काशी-विश्वेश्वर हमेशा अपने शरीरमे अुसकी चिता-भस्मका लेप करते है।

आगे चलकर हमने बिन्दुमाधवका दर्शन किया। सिन्धिया-होलकरके अन्नसत्र देखे। पुण्यश्लोका अहल्याबाअीका स्मरण हुआ। अुनकी व्यवस्थाके अनुसार रोज काशीसे रामेश्वर जानेवाली बहँगीका चित्र दृष्टिके सामने आया। हमने विश्वनाथजीके दर्शन कियें। वहाँकी वह भीड़, वह कीचड़, और सड़े हुअे बिल्वपत्रोंकी वह गन्ध, ये सब कैसे ही क्यों न हों, तो भी काव्यमय प्रतीत होते थे, और भक्तिभावमें वृद्धि ही करते थे। विश्वेश्वरके दरबारमें कोअी भेदभाव नहीं है। सब समान है। दर्शनोंके लिअे चाहे जो जाय, चाहे जब जाय, 'मत जाओ'का नाम न मिलेगा। मन्दिरके गर्भगृहकी दीवारमे अेक तिरछा छेद बनाया गया है। अिस छेदको बनानेका कारण मेरी समझमें नहीं आया। लेकिन मन्दिरकी परिक्रमा करते वक्त मैंने देखा कि दुनियाकी यात्रा करनेवाले गोरे 'ग्लोब ट्रॉटरों' (तुरगयात्रियों)के लिअे विश्वेश्वरके दर्शनोंका प्रबन्ध करनेके विचारसे ही यह छिद्र बनाया गया है। जिस वक्त हम गये, अुस वक्त वहाँ टॉमस कुकका अेक अेजण्ट दो तीन मेमोंको मन्दिरके विषयमें जानकारी दे रहा था। किसीने मुझसे कहा कि मन्दिरके गुम्बदपर मढ़ी हुअी सोनेकी चद्दर पंजाब-केसरी रणजीतसिंहकी श्रद्धाका अेक चिह्न है। पास ही औरंगजेबकी मसजिद है, और बीचमें ज्ञानवापी है। कहते हैं कि जब यवन पुराने मन्दिरको भ्रष्ट करने आये, तब कलियुगकी महिमा जानकर विश्वेश्वरकी मूर्त्ति अिस कुअेंमें कूद पड़ी थी। यह कुआँ ठेठ पाताल तक गया है !

वहाँसे हम वह मठ देखने गये, जिसमें बैठकर अेकनाथ महाराजने अपना 'नाथ भागवत' नामक ग्रंथ पूरा किया था। अिसी स्थानपर यह सिद्ध हुआ था कि संस्कृत भाषाका सामर्थ्य और पावित्र्य मेरी मराठीमें भी है। अिस विचारके आते ही हृदयमें भक्ति अुमड़ आअी। मैंने अुस स्थानको दण्डवत् प्रणाम किया, अेकनाथ स्वामीका स्मरण किया, और हम त्रिलिंग स्वामीकी मूर्त्तिके दर्शन करने गये। त्रिलिंग स्वामी अेक

सुविख्यात दक्षिणी संन्यासी थे। अुन्होंने काशीजीमें अनेक मन्दिरों और मकानोंका जीर्णोद्धार कराया था। लेकिन वे अेक भी नया मन्दिर या नया मकान बनवानेको तैयार न होते थे। अिसका कारण स्पष्ट है। काशीजीके छोटे-मोटे मन्दिरों और मूर्त्तियोंकी गिनती की जाय, तो अुनकी संख्या अितनी निकले कि वह काशीकी जन-संख्यासे बहुत कम तो न हो। वहाँ और नये मन्दिर बनवानेकी जरूरत ही क्या है?

हिन्दुस्तानमें अनेक साम्राज्य हो गये। अनेक राजधानियाँ हो गअीं। आज वे राजधानियाँ या तो नामशेष हो गअी है, या छोटे-छोटे गाँवोंमें रूपान्तरित हो गअी हैं। लेकिन यह देवनगरी अनेक साम्राज्योंके अभ्युत्थान और पतनकी साक्षी होकर भी आजतक ज्यों-की-त्यों बनी है। यदि भूतकालको सजीव देखना हो, तो काशीजीमें देख सकते हैं। गंगाजी अपने घाट-रूपी बन्धनोंको बार-बार तोड़ती ही रहती हैं, और जिस तरह अपनी माँकी लात खाकर भी बछड़ा दूध पीने दौड़ता ही है, अुसी तरह लोग भी फिर-फिर नये-नये घाट बनवाते ही जाते हैं।

वाराणसीमें आज भी पूर्व मीमांसावादी कर्म-काण्डियोंके यज्ञ-याग चलते रहते हैं, वेदान्ती द्वैत-अद्वैतका झगड़ा करके श्रोताओंको खण्डन-खण्ड-खाद्य देते हैं; वैयाकरणी अेक-अेक शब्दकी खाल निकालते हैं; बंगाली और दक्षिणी नैयायिक 'गदाधारी'का अर्थ करनेकी कोशिश करते हैं; अीसाअी और आर्यसमाजी वाग्युद्धकी धूम मचाते है। वेदाभ्यासी दश-ग्रंथोंका घोष करते हैं; कारीगर टाँकी चला-चलाकर पत्थरको देवता बनाते हैं, और कअी भूदेव अन्नक्षेत्रमें खाकर निठल्ले बैठे-बैठे जीवित पत्थर बन जाते हैं।

अिसी नगरीमें अग्रजों और अन्त्यजोंने विश्वामित्रके ऋणसे मुक्त होनेमें सत्यसन्ध हरिश्चन्द्रकी मदद की थी। अिसी नगरीमें तुलसीदासने रामकथाका गान किया था, और यहीं कबीरजीने हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियोंको अेक सूत्रमें पिरोया था।

कुछ लोग बनारसको The city of the dead and the dying—मृतकों और मरणोन्मुखोंकी नगरी कहते हैं। परन्तु जैसा कि

अूपर कहा जा चुका है, हिन्दुस्तानकी अनेक नगरियाँ नामशेष हुअीं; पर वाराणसी आज भी अमरपुरी ही है, क्योंकि काशीजीमें सनातनधर्मका निवास है।

एक दिन हम दशाश्वमेघ घाटसे पुल्तक नावमें घूमने गये। गंगाजीके स्पर्शके कारण शीतल और पावन पवन मन्द-मन्द बह रहा था। नाना प्रकारके मन्दिर 'मुझे देखो, मुझे देखो', कहते हुअे आँखके सामने खड़े होते जाते थे। मैं सबको श्रद्धापूर्वक प्रणाम करता था। जिस प्रकार चकमक पत्थरके टेढ़े-मेढ़े पहलू सुहावने लगते हैं, अुसी प्रकार काशीके मकानोंकी विशृंखल शोभा दृष्टिको आकर्षित करती है। साँझ-सवेरे असंख्य स्त्री, पुरुष, बालक और वृद्ध गंगामैयाकी गोदमें खेलते हुअे नज़र आते है।

दशाश्वमेघ घाटपर अेक परमहंस रहते थे। वे नग्न रहा करते थे। जब मैं पहली बार बनारस गया था, तो मैंने अुनका फोटो लेनेका प्रयास किया था। परन्तु वह निष्फल हुआ। मैं जिधर मुड़ता था, अुधर ही वे अपनी पीठ फेरते जाते थे। अुस दिन मैं बहुत खिन्न रहा, लेकिन बादमें मुझे यह विचार आया कि अैसे परमहंसका फोटो लेना जंगलीपन है। अबकी बार मैं फिर अुनके दर्शन करने गया, तो देखा कि वे वहाँ नहीं थे। किसीने कहा, कुछ दिन पहले गंगाजीमें बाढ़ आअी थी, अुसीमें वे बह गये। कुछ लोगोंने अुन्हें बचानेका प्रयत्न भी किया, लेकिन अुन्होंने लौटनेसे साफ अिनकार कर दिया, और गंगाजीमें जल-समाधि ले ली।

काशीमें जिस प्रकार अनेक धर्म और अनेक सम्प्रदाय हैं, अुसी प्रकार वहाँ स्थापत्य और शिल्पकलाके भी अनेक प्रकार हैं। दूसरे दिन हम अुन्हें देखने निकले। सब देख-दाखकर शामके वक्त थिऑसॉफिस्ट लोगोंके सेण्ट्रल हिन्दू कॉलेजमें पहुँचे। वहाँ सरस्वतीका अेक छोटा-सा मन्दिर देखा। अेक-दो बंगाली विद्यार्थी चद्दर ओढ़कर नंगे सिर घूम रहे थे। पास ही थिऑसॉफिकल लॉजमें श्रीमती बेसण्टका व्याख्यान था। 'भविष्यका मनुष्य प्राणी कैसा होगा?' अिस विषयपर विवेचन हो रहा था। व्याख्यानके बाद हम लोग रामकृष्ण-सेवाश्रम पहुँचे। वहाँ

ब्रह्मचारी चन्द्रशेखर नामक अेक साधु थे। अुन्होंने हमारा स्वागत किया। कअी ब्रह्मचारी संस्कृत पढ़ते थे। पासवाले रुग्णालयमें चारत्वाह रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषा करते थे। सेवाश्रमका प्रबन्ध देखकर मैं .खुश हुआ। अितनेमें दो-तीन बंगाली शहरसे तम्बूरा और तबला लेकर आये। अुन्होंने तम्बूरे और तबलेके साथ गाना शुरू कर दिया। सन्त कवि रामप्रसादका गीत था। गायक अद्‌भुत थे। शामको जब घर लौटे, तो अुसी गायनका स्वर कानोंमें गूँज रहा था।

आखिरी दिन हम कालभैरवके मन्दिरमें गये। वहाँ हमने अपने हाथमें और गलेमें रेशमका काला धागा बाँधा। मन्दिरमें जाकर

तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्त दहनोपम।
भैरवाय नमस्तुभ्य, अनुज्ञां दातुमर्हसि॥

कहकर काशीजीके अिस कोतवालसे आज्ञा ली, और त्रिस्थलीकी यात्रा पूरी करनेके अुद्देश्यसे 'गयाजीके लिअे रवाना हुअे। मैं जानता था कि गया के पण्डे यात्रियोंको बहुत तंग करते हैं, अिसलिअे गयाकी सारी विधियोंकी दक्षिणा और खर्चका पैसा अनन्त भट्टजीको देकर हमने अुनसे रसीद ले ली थी। अिसमें अुतनी ही सुविधा थी, जितनी टॉमस कुक कम्पनीको प्रवासका सारा खर्च देकर कूपनबुक लेनेमें होती है।

हरअेक हिन्दुस्तानीको जीवनमें अेकबार वाराणसीके दर्शन अवश्य करने चाहियें।

४

गयाका श्राद्ध

दुनियाकी हरअेक वस्तु मरती है, मरता नहीं अकेला अेक भूतकाल। भूतकाल चिरंजीव है। महासागरमें भाटा आता है, चन्द्रका क्षय होता है, कुबेर निर्धन होता है, पर्वत घुल जाते है, साम्राज्य स्मृति-पटलसे मिट जाते हैं, लेकिन लोकक्षयकृत् भूतकालका क्षय नहीं होता। भूतकाल दिन-दिन समृद्ध ही होता जाता है। लेकिन आप अुसका संग्रह नहीं कर सकते, क्योंकि आप तो वर्त्तमानमें ही रहते हैं। यदि भूतकालका वृक्ष आपको अपने ऑगनमे रखना हो, तो आपके पास अुसे सींचनके लिअे अमित स्मृति-जल होना चाहिये।

हरअेक मनुष्यकी यह अिच्छा होती है कि अुसकी जड़ें भी भूतकालमें हो। अपनी सन्ततिके द्वारा वह भविष्यमें तो पैर पसार सकता है, लेकिन भूतकालमे प्रवेश करनेके लिअे पैर, भूतोंके समान, अुल्टे होने चाहियें। लेकिन मनुष्यने अेक हिकमत खोज ली है। वह सालमें अेक वार भूतकालमें बसनेवाले अपने पिता, पितामह और प्रपितामहका स्मरण कर अुन्हें श्रद्धांजलि अर्पण करता है, और भूतकालपर अपनी विरासतका अधिकार साबित करता है।

यों तो भूतकाल सर्वत्र रहता है; परन्तु जिस प्रकार विष्णु वैकुण्ठमें रहते हैं, अथवा महादेव कैलाशमें रहते हैं, अुसी प्रकार भूतकाल गयाजीमें रहता है। आज अितने वर्षों बाद भूतकालमें आसानीसे प्रवेश करनेके विचारसे ही मैं फिर गयामे प्रवेश कर रहा हूँ। हरअेक हिन्दू गयाजी जाकर अपने पूर्वजोंका श्राद्ध करता है। पर आज मेरा जी गयाका ही श्राद्ध करना चाहता है।

हम रातको गया पहुँचे। मैं पहले अेक बार वहाँ हो आया था, अिसलिअे वहाँ पहुँचनेपर किसी तरहकी असुविधाका कोअी डर न था। गया तीर्थस्थान है, अिसलिअे वहाँ हजारों या लाखों मनुष्य भी अेक साथ आ जावें, तो भी असुविधाकी कोअी आशंका नहीं रहती। हरअेक घरमें

कितने मनुष्य रह सकते हैं, अिसका हिसाब म्युनिसिपल्टीकी ओरसे कर लिया गया है। हमारे लोगोंको ज्यादा सुविधाओंकी जरूरत नहीं होती। अिसलिअे अगर दक्षिणाके विषयमें किसी प्रकारकी चखचख न हो, तो यात्रा सुखसे हो सकती है। स्टेशनपर पहुँचते ही गयावाले पण्डोंके आदमी आपके सामने हाजिर हो जाते हैं, और आप कहाँके हैं? कहाँसे आये हैं? वगैरा सवाल हिन्दुस्तानकी हरअेक भाषामें पूछ लेते हैं। आप जिस भाषामें जवाब देते हैं, अुसी भाषामें वे सम्भाषण शुरू कर देते हैं। ये आढ़तिये हिन्दुस्तानके किसी भी विश्वविद्यालयके स्नातक नहीं होते, फिर भी वे हिन्दुस्तानकी सभी भाषायें जानते हैं, और यदि आपको अुनके व्याकरण-ज्ञानपर आपत्ति न हो, तो वे सभी भाषाओंमें अस्खलित बोल भी लेते हैं।

मुझे याद नहीं पड़ता कि मेरे हिस्से कौन पण्डा आया था। मैं समझता हूँ कि मैंने अुसका दर्शन भी नहीं किया। अुसके मुनीमके मुनीमका मुनीम मुझे स्टेशनपर मिला, और वहाँसे अेक मकानपर ले गया। अिस डरसे कि कहीं मैं अुसकी वाचालताका शिकार न हो जाअूँ, मैंने पहले ही अुससे कह दिया — "देखो भाअी, मैं पहले अेक बार यहाँ आ चुका हूँ। यात्राके लिअे आवश्यक सारा पैसा मैंने अनन्त भट्टको बनारसमें ही दे दिया है। अुनसे तुम्हें मिल जायगा। अब यहाँ मुझे अिन-अिन सुविधाओंकी जरूरत है। अुनके लिअे ये पैसे लो। मुझे कल श्राद्ध करना है; लेकिन वह मैं कर्नाटकके नृसिंहाचार्यसे ही करवाअूँगा। अुन्हें कल सवेरे आठ बजेसे पहले यहाँ भेज देना। दोपहरमें श्राद्ध खतम होनेके बाद तुम अपनी बही ले आना। मैं अुसमें दस्तखत कर दूँगा। अब अधिक कुछ कहनेकी जरूरत नहीं है। जाओ, जो काम मैंने बतलाये हैं, सो करो और मुझे आराम करने दो।" मेरा यह मिजाज देखकर वह बेचारा चकरा गया, और बिना अेक शब्द बोले मेरे कहे अनुसार अिन्तजाम करने चला गया। अगर मैं अुसे अपना यह अुग्ररूप न दिखाता, तो वह भलामानस अपनी आशाभरी चिकनी-चुपड़ी बातोंमें मेरा कम-से-कम आध घण्टा तो जरूर ही बरबाद करता!

दूसरे दिन मैं फल्गु नदीके किनारे श्राद्ध करने गया। फल्गु नदी जमीनके नीचे बहती है। अुसे सीताजीका शाप है। रेत खोदनेपर

पानी मिलता है। नदीमें हमेशा यात्रियोंकी भीड़ रहती है, और अुस भीड़में हृष्टपुष्ट और रूपवान पण्डे साँड़ोंकी तरह दक्षिणाकी आशासे घूमते-फिरते दिखाओी देते हैं। मैंने नदीमें स्नान किया। अुपले लाया। अुनपर चरु तैयार किया। नृसिंहाचार्य आये। वे सब मंत्र जानते थे, अुनके अुच्चारण भी अच्छे थे, अिसीलिअे मैंने अुन्हें पसन्द किया था।

नदीके पाटमें बैठकर करने योग्य सारी क्रियायें समाप्त करके, मैं पिण्डके साथ गदाधरके मन्दिरमें गया। वहाँ सैकड़ों यात्री जगह-जगह कअी क़तारोंमें बैठे हुअे थे, और श्राद्धकी कवायद कर रहे थे। श्राद्ध-सदृश अत्यंत पवित्र भावनावाली धार्मिक क्रियाका जैसा यांत्रिक स्वरूप यहाँ देखनेको मिला, वह मुझे बहुत बुरा लगा। पग-पगपर दक्षिणाके लिअे लड़नेवाले और अगर कोअी ग़रीब, अज्ञानी यात्री मुँहमाँगी दक्षिणा न दे पाये, तो अुसके मरे हुअे पुरखोंको गालियाँ देनेवाले गयावालोंको देखकर यदि किसीको हिन्दूधर्मकी तरफ़से निराशा हो जाय, तो अुसे ज़्यादा दोष नहीं दिया जा सकता। हम पिण्डदानके लिअे धर्मशिलाके पास जा बैठे। धर्मशिलापर श्री विष्णुका पदचिह्न है। अिस विष्णुपदपर लोग पिण्ड चढ़ाते जाते हैं, और गायें आकर अुन्हें खाती जाती हैं। यह सिलसिला बराबर जारी रहता है। पिण्ड-प्रदानकी क्रिया समाप्त होनेपर गयापुत्रोंसे यात्राका सुफल प्राप्त करना बाकी रह जाता है। अिस वक्त गयापुत्र मनमानी दक्षिणा अैंठ सकते हैं। हम अुनके सामने हाथ जोड़कर खड़े रहते हैं, और वे फूलोंकी मालासे हमारे हाथ बाँध देते हैं; फिर जबतक अुन्हें मनचाही दक्षिणा न मिले, तबतक हाथोंका बन्धन छोड़नेसे अिनकार करते हैं। जेब गरम हो जानेपर माला तोड़ डालते हैं, और हमारी पीठ थपथपाकर यात्राकी सफलता घोषित करते हैं, और हमें विश्वास दिलाते हैं कि हमारे सभी पूर्वज सीधे स्वर्गको पहुँच गये!

मैं बनारसमें ही सारी दक्षिणा दे चुका था, अिसलिअे यहाँ साफ़ बच गया। हमारे मुनीम अेक गयापुत्रको ले आये, और अुसे मेरे सामने लाकर खड़ा कर दिया। गयापुत्र कोअी बीस सालका रहा होगा। वह पीताम्बर पहने था। बदनपर रेशमी कमीज़ और जाकट थी। बाल अिंग्लिश तर्ज़के थे, और पोमेड लगाकर बाक़ायदा चमकदार बनाये गये थे। मैंने बहुत यत्नपूर्वक अपनी

सारी श्रद्धा अेकत्र की, अुसके सामने दोनों हाथ जोड़े और अुन्हें मालासे बँधने दिया। गयापुत्र रुठनेकी तैयारीमें ही था कि अितनेमें मुनीमने कहा — "दक्षिणाके पैसे जमा करा दिये गये हैं।" गयापुत्रने माला तोड़ दी और वह चलता बना। वह गयापुत्र तो शायद मुझे भूल गया होगा, लेकिन मैं अुसे अभीतक भूला नहीं हूँ।

हमारे अुपाध्यायने कहा — "गयामें आकर श्राद्ध करना मनुष्यके गृहस्थ जीवनका अन्तिम कर्तव्य है। वह कर्तव्य सम्पन्न हुआ है। अब तुम्हें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, अिन षड्रिपुओंका त्याग करना चाहिये। लेकिन अिस कलियुगमें यह बात किसीसे होती नहीं। अिसलिअे अुसके बदले किसी अेक वस्तुका त्याग करना चाहिअे।" मैंने पूछा — "शक्कर छोड़ दूँ तो?" आस-पास खड़े हुअे दस-पन्द्रह आदमी यह सुनकर चकित रह गये। अुन्होंने कहा — "शक्कर क्यों छोड़ी जाय?" मैंने कहा — "आज पाँच सालसे मैं शक्कर खाता ही नहीं हूँ।" अुपाध्याय महाराजने सुझाया — "करेला या कद्दू-जैसी कोअी चीज छोड़ दो।" मैंने कहा — "धर्मके साथ अैसा कपट मैं नहीं करूँगा। मैं तो क्रोधका ही त्याग करनेका प्रयत्न करूँगा।" और, मन ही मन अिसमें अेक बात और जोड़ते हुआ कहा — "और अन्धश्रद्धाका भी।"

गदाधरका मन्दिर सुन्दर है। नदीके पाटसे बहुत अूँचाओ पर होनेके कारण अुसकी शोभा और भी बढ़ गअी है। दोपहरमें हमने नृसिंहाचार्यके घर भोजन किया। गया-माहात्म्यका श्रवण किया, और तुरन्त ही बोधिगया जानेका निश्चय किया। गया-माहात्म्य हिन्दू धर्मशास्त्रोंमें अेक अद्भुत प्रकरण है। निष्काम भावसे परोपकार करनेवाले गयासुरसे तेजस्वी उच्च देवोंने षड्यंत्र रचा और अुसमें साक्षात् श्री विष्णुने भाग लेकर अत्यन्त निर्दयतासे — और दगाबाजीसे भी कह सकते हैं — अुसका खून किया। अिस आशयकी अेक कथा अिस माहात्म्यमें है।

तो अब वह कथा सुनिये।

गयाकी ख्याति

लोकपितामह ब्रह्मदेवने असुरवृत्तिसे असुर अुत्पन्न किये, और सद्भावसे देव अुत्पन्न किये। अिन असुरोंमें गयासुर महा बलवान और पराक्रमी था। अुसका शरीर बहुत ही स्थूल था। असुरका नाम लेते ही किसी महापापी, क्रूर, सबको सतानेवाले, अिन्द्रपर धाक जमानेवाले, अप्सराओंको अुठा ले जानेवाले किसी मायावी और कपटी राक्षसका ही खयाल दिलमें आता है। लेकिन सभी असुर अैसे नहीं होते। दानशूर बलिराजा भी असुर था। गयासुर भी अिसी कोटिका असुर था। हमें यही देखना है कि अुसके सामने देव कैसे दिखाअी देते थे।

गयासुरको पवित्रताकी लगन लगी, और अुसने कोलाहल पर्वतपर दारुण तप शुरू किया। हजारों वर्षोंतक सॉस थामकर तप करता रहा। अिससे देव हमेशाकी तरह बहुत ही घबराये। अपनी परिपाटीके अनुसार सारे देव ब्रह्मदेवके पास गये। ब्रह्मदेव शंकरके पास, और शंकर विष्णुके पास। देवोंने अपने सनातन रिवाजके अनुसार विष्णुकी स्तुति की। विष्णुने अुनकी घबराहटका कारण पूछा।

अुन्होंने दुहाअी देते हुअे कहा — "गयासुरके सकटसे हमारी रक्षा करो।"

"तुम चलो, मैं अभी आकर गयासुरको वरदान देता हूँ, और अुसके तपका अन्त करता हूँ।" विष्णुने वचन दिया।

सबने मिलकर गयासुरसे वरदान मॉगनेको कहा। गयासुरने मॉगा — 'मैं देव, ब्राह्मण, यज्ञ, तीर्थ, ऋषि, मुनि, ज्ञानी, ध्यानी, सबसे बढ़कर पवित्र होअूँ।"

देवोंने खुशीसे 'तथास्तु' कहकर वरदान दिया, और सब अपने-अपने घर गये।

लेकिन वहॉ तो 'लिखत सुधाकर लिखिगा राहु'वाली कहावत चरितार्थ हुअी। गयासुरका पवित्र दर्शन करके, अुसका स्पर्श करके, सभी

वैकुण्ठधामको जाने लगे। तीनों लोक खाली हो गये। यमपुरी अुजड़ हो गअी। अिसलिअे यम, अिन्द्र आदि अधिकारी ब्रह्मदेवके पास जाकर शिकायत करने लगे — "यह लीजिअे, हमारा त्यागपत्र! आप अपना दिया हुआ अधिकार लौटा लीजिअे। अब हमारा कोअी काम नहीं रहा।"

देवोंका समुदाय फिर विष्णुकी सेवामें पहुँचा। विष्णु गयासुरको सनद दे चुके थे, अिसलिअे अुन्होंने देवोंको अेक युक्ति सुझाअी — "गयासुरके पास जाकर अुसकी पवित्र देह यज्ञके लिअे माँग लो, और अुस देहपर ही यज्ञ करो।" (!)

ब्रह्मदेवको अपना अगुआ बनाकर सब देव गयासुरके पास गये। गयासुरने अुनकी आवभगत करके अुनके कुछ कहनेसे पहले ही अुनका काम करनेका वचन दे दिया। ब्रह्मदेवने कहा — "यात्राके निमित्त मैं काफी घूमा हूँ, लेकिन तुम्हारे शरीरसे अधिक पवित्र स्थान मैंने कहीं नहीं देखा। मुझे यज्ञ करना है। तुम अपना शरीर दो।"

गयासुर कृत-कृत्य हो अुठा। अुसने ब्रह्मदेवसे कहा — "मेरे माता-पिताके दोनों वंश आज धन्य हो गये। तुम्हींने यह देह अुत्पन्न की है, और तुम्हींने अिसे पवित्र बनाया है। अिसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारा यज्ञ सबके अुपकारके लिअे होगा। 'सर्वेषामुपकाराय यागोऽयम् भविष्यति'।"

अैसे निर्मलभावसे प्रेरित होनेपर गयासुर देह देनेमें क्यों देर करने लगा? वह आड़ा लेट गया। सृष्टिके रचयिता ब्रह्मदेवने यज्ञकी सामग्री और यज्ञके ऋषि वहींके वहीं अुत्पन्न किये। अितने अधिक ऋषि अुत्पन्न किये कि अुनकी नामावलियोंका पार न रहा! गयासुरके शरीरपर बड़ा भारी यज्ञ हुआ। ब्राह्मणोंको दक्षिणा दी गअी। यह समझकर कि गयासुर मर चुका, सबने अुठाकर अुसे अेक बड़े सरोवरमें डाल दिया। वहाँ वह हिलने लगा। हे भगवन्! अब क्या करें? विस्मित ब्रह्मदेवसे चिल्लाकर धर्मराज यमने कहा — "तुम्हारे घरमें वह बड़ी भारी धर्मशिला पड़ी है। अुसे लाकर फौरन अिसके सिरपर पटक दो। मेरी आज्ञा है। अब पाप-पुण्यका विचार न करो।" (!)

यों माथेपर पत्थर रखे जानेपर भी असुर हिलने लगा। तब सब देवोंने अुसे अपने पैरोंसे अच्छी तरह रौंदा। तो भी असुर ठण्डा न हुआ।

अब ब्रह्मा व्याकुल हो अुठे। विष्णु क्षीरसागरमें सो रहे थे। वे वहीं जा पहुँचे। द्वारपालने विष्णुको खबर दी। श्री विष्णुने ब्रह्माको अन्दर बुलाकर आनेका कारण पूछा। ब्रह्माने कहा — "हमने यज्ञ किया, देवरूपिणी धर्मशिला अुसके अूपर पटक दी, रुद्र वगैरा सब देव अुसपर बैठे, तो भी वह निश्चल नहीं होता। अब आप ही हमपर दया कर सकते हैं।"

विष्णुने अपने शरीरसे मूर्त्ति निकालकर ब्रह्मदेवको दी। अुसका बोझ काफी न हुआ। आखिर क्षीरसागरसे विष्णु खुद आये और शिलापर खड़े हो गये। अुनके हाथमें पुराणप्रसिद्ध गदा थी। विष्णुके साथ गायत्री, सावित्री, सरस्वती, लक्ष्मी, सीता, यक्ष, गन्धर्व, अिन्द्र, बृहस्पति आदि सब देवी-देवता आकर गयासुरके शरीरपर खड़े हो गये। तब कहीं वह असुर स्थिर हुआ!

जिसने 'सर्वेषामुपकाराय' अपनी देह सहित सर्वस्व दे दिया था, अुसके हृदयको अिस कपटसे आघात पहुँचा। आन्तरिक वेदनाके साथ अुसने देवोंसे पूछा — "तुमने मुझे अैसा धोखा किस लिअे दिया? मैंने अपना निर्मल शरीर ब्रह्मदेवको यज्ञके लिअे अर्पण किया था। क्या विष्णुके वचन-मात्रसे ही मैं निश्चल न हो जाता, जो तुमने और विष्णुने अपनी गदासे मुझे अितनी पीड़ा पहुँचाअी! खैर, मुझे पीड़ा पहुँचानेका ही तुमने निश्चय कर लिया हो, तो वही सही। मेरी यही अिच्छा है कि अुससे तुम सबको सदा सन्तोष हो।"

> अूचे गयासुरो देवान् किमर्थं वञ्चितो ह्यहम्?
> यज्ञार्थं ब्रह्मणे दत्तं शरीरममलं मया॥
> विष्णोर्वचनमात्रेण किं न स्यां निश्चलो ह्यहम्?
> यत्तुरैः पीडितोऽत्यर्थं गदया हरिणा तथा
> पीड्यश्च यद्यहं देवाः प्रसन्नाः सन्तु सर्वदा॥

देव लज्जित हुअे या नहीं, अिस सम्बन्धमें माहात्म्य चुप है। लेकिन अुन्होंने गयासुरसे कहा — "हम तुझपर प्रसन्न हैं। वरदान माँग।" गयासुरने यह वरदान माँगा — "जबतक यह पृथ्वी, ये पर्वत, ये चन्द्र, सूर्य और तारे हैं, तबतक ब्रह्मा, विष्णु, महेश और दूसरे सारे देव, त्रिलोकके सारे तीर्थ, गंगादि समस्त नदियाँ, सब मेरे मस्तकपर रही

हुओी अिस शिलापर रहें, और मेरे लिअे लोगोंका कल्याण करें। यहाँ जो लोग स्नान, तर्पण और श्राद्ध करें, अुनकी हज़ार पीढ़ियोंका अुद्धार हो। अुनके सब पाप धुल जायँ। सभी तीर्थ लोगोंके लिअे कल्याणकारी हों। अिससे अधिक मैं और क्या माँगूँ? तुममेंसे अेक भी देव यहाँसे कहीं न जाय! यह वचन अवश्य निबाहना। 'समयः प्रतिपाल्यताम्।'

देवोंने 'तथास्तु' कहा। दैत्य हर्षित हुआ, और सदाके लिअे निश्चल हो गया।

* * *

अिस महत्‌कृत्यके बाद ब्रह्मदेवने देवोंकी अुपस्थितिमें वह सारी भूमि और पाँच-पाँच गाँव ब्राह्मणोंको दे दिये। अुनके लिअे सब प्रकारके साज-सामानसे सजे हुअे घर बनवा दिये। कामधेनु दी, कल्प-वृक्ष, पारिजातक आदि वृक्ष दिये, दूधकी नदियाँ दीं, घीके तालाब दिये। शहदके कुअे दिये, दहीके सरोवर दिये, अन्नके पर्वत दिये, भक्ष्य-भोज्य फलोंकी सुविधा कर दी, और ब्राह्मणोंसे कहा — "अब तुम किसीसे कुछ न माँगना।" गदाधरको प्रणाम कर ब्रह्मदेव ब्रह्मलोकको सिधारे।

लेकिन ब्राह्मणोंसे रहा न गया। अुन्होंने धन लेकर यज्ञ करना शुरू किया। यज्ञका धुआँ स्वर्गतक पहुँचा, तब ब्रह्माने आकर अुनसे सब कुछ छीन लिया।

'तुम हमेशा लोभी ही रहोगे,' यह कहकर ब्रह्माने अुन्हें शाप दिया। ब्राह्मण रोने लगे — "हमारी गुज़रबसरका कुछ प्रबन्ध कीजिये।" ब्रह्माने दयाभावसे कहा — "अब तो तुम भीख माँगोगे, तभी मिलेगा। हमेशाके लिअे तुम्हारे भाग्यमें तीर्थका पौरोहित्य ही रहेगा। तुम्हारी पूजाके द्वारा ही लोग मेरी पूजा करेंगे।" असे अुन ब्राह्मणोंके वंशज हैं, हमारे ये गयावाले पण्डे!

* * *

और संकटके अवसरपर ब्रह्मदेवको जिस धर्मशिलाका स्मरण हुआ, अुसका माहात्म्य क्या है, सो भी सुन लीजिये।

अेक पवित्र साधुके धर्मव्रता नामकी अेक कन्या थी। वह सर्व लक्षण सम्पन्ना थी। गुणोंमें लक्ष्मीसे भी बढ़ी-चढ़ी थी। ब्रह्मदेवके परम

तपस्वी पुत्र मरीचिसे वह ब्याही गअी थी। बुढ़ापेमें अेक दिन मरीचि जंगलमें फल-फूल लाने गया। वहाँसे वह थककर आया। धर्मव्रताने अपने थके हुअे पतिके पैरोंमें घीकी मालिश शुरू की। थकावट जैसे-जैसे अुतरती गयी, वैसे-वैसे ऋषिको नींद आने लगी। अितनेमें वहाँ ब्रह्मदेव आ गये। अपने ससुरको देख सती अुठ खड़ी हुअी; क्योंकि वे गुरुके गुरु थे। अुन्हें पाँव धोनेके लिअे पानी देकर बहूने ससुरकी पूजा की, और अेक सुन्दर बिस्तर अुनके लिअे लगा दिया। अितनेमें मरीचि जागे। स्त्रीको पास न देख वे गुस्सेमें अपनी पत्नीको शाप दे बैठे—"मुझसे बिना पूछे तू मेरे पैर दबाना छोड़कर चली गअी, अिसलिअे जा, तू पत्थर बन जा!" सतीको सहज ही बात बुरी लगी। वह बोली—"घरमें पिताके आनेपर अुनकी सेवा-पूजा करना आपका कर्त्तव्य था। आपकी धर्म-पत्नीके नाते मैंने वह किया। अिसमें मेरा क्या दोष?" मरीचि मुनिके ध्यानमें अपनी भूल आ गयी। दोनों मिलकर हरिकी शरणमें गये, और अुनसे प्रार्थना की कि हमारी रक्षा करो। अितनेमें ब्रह्मदेव भी निद्रासे जागे। सबने सतीके तपकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की; लेकिन साथ ही यह भी कहा—"तेरे पतिके शापका निवारण करनेकी शक्ति हममेंसे किसीमें नहीं है। अतः तू अैसा कोअी दूसरा वरदान माँग ले, जिससे धर्मकी रक्षा हो।" सतीने वरदान माँगते हुअे कहा—"यदि मेरे पतिके शापका निराकरण करनेकी शक्ति आपमें नहीं है, तो मुझे यह वरदान दीजिये कि नदी, नद, सरोवर, तीर्थ, देव, ऋषि, मुनि, मुख्य-मुख्य देवता, और सभी यज्ञक्षेत्र मुझमें आकर बसें। सारे ब्रह्माण्डकी पावनी शिला मैं बन जाअूँ। मुझे देखते ही सब लोग पातकों और अुप-पातकोंसे मुक्त हो जायँ। शिलापर जो लोग श्राद्ध करें, अुन्हें और अुनके कुलको विष्णु-लोक मिले। और जबतक यह ब्रह्माण्ड रहे, तबतक यह शिला भी रहे।" देवोंने यह वर दे दिया। परन्तु वे फिर पछताये। क्योंकि सभी लोग अुस शिलाको छू-छूकर वैकुण्ठ जाने लगे। यमराज घबराये। अुन्होंने अपना अधिकार और अपना यमदण्ड ब्रह्मदेवको सौंपते हुअे कहा—"अब मेरा कोअी काम रहा ही नहीं।" ब्रह्माने यमराजसे कहा—"अुस शिलाको अुठाकर अपने घरमें रख लो, और निश्चिन्त हो जाओ।" तब यमराज

जिन्ने लोगोंका शासन करने लगे, और धर्मशिलाकी केवल कीर्ति ही रह गओ।

गयासुरके शरीरपर यज्ञ करनेके पश्चात् भी जब गयासुर हिलता रहा, तो ब्रह्मदेवने यमराजसे यही शिला माँगी थी। अस शिलामें सारे तीर्थोंकी अवस्थिति होनेके कारण वह अत्यन्त भारी और अत्यन्त पवित्र हो गओ थी।

* * *

विष्णु जिस गदाको हाथमें लेकर गयासुरकी देहपर खड़े हुओ थे, अस गदाकी भी अेक कथा है। वज्रसे भी दृढ और मजबूत गद नामक असुरसे ब्रह्मदेवने अुसकी हड्डियाँ माँग ली थीं, और विश्वकर्माने अुन हड्डियोंकी अेक वज्रगदा बनवाओ थी। यह गदा हेति नामक अेक महा बलवान राक्षसको मारनेके लिअे श्रीहरिको दी गयी थी। क्योंकि देवोंके अस्त्रास्त्रोंसे अुसका वध नहीं हो सकेगा, अैसा वरदान अुसे स्वयं ब्रह्मदेवने ही दिया था।

* * *

अैसे-अैसे पुण्य प्रसंगोंके लिअे प्रसिद्ध भूमि पर —

लोकानां रक्षणार्थाय जनतां मुक्ति हेतवे।

श्री आदि गदाधर लक्ष्मीके साथ खड़े हैं। वहाँ जो कोओ यात्राके लिअे जाते हैं, अुनकी मनोकामनायें पूरी होती हैं। लेकिन शास्त्रोंमें लिखा है कि वहाँ जानेवालेको ब्रह्मचारी और संयमी रहना चाहिअे; शुद्ध और संतुष्ट रहना चाहिअे; दान न लेना चाहिअे, अहंकारसे निवृत्त रहना चाहिअे; जितेंद्रिय और दानशील होना चाहिअे; तभी अुसे तीर्थफल मिलेगा।

कामं क्रोधं तथा लोभं त्यक्त्वा यः सत्यवाक् शुचिः।
सर्वभूतहितेरतः स तीर्थफलमश्नुते॥
तीर्थान्यनुसरन्धीरः पाखण्डं पूर्वतस्त्यजेत्।
पाखण्डं तच्च विज्ञेयं यद्भवेत्कर्म कामतः॥

धर्मव्रताको शाप देनेवाले मरीचिको महादेवने यह शाप दिया कि — 'जा, तू दुःखी हो।' लेकिन अुसका पश्चात्ताप देखकर अुसे यह उःशाप दिया कि 'गयामें तेरी मुक्ति होगी।' मरीचिने शिलाके पास बैठकर दुष्कर तप आरम्भ किया। अैसा तप बहुतेरे पश्चात्ताप-दग्ध पतियोंको नसीब

होता होगा ! महादेवके शापसे जो मरीचि काला पड़ गया था, तप द्वारा वह शुक्ल हो गया, और हरिके वरदानकी बदौलत स्वर्गलोकको गया ।

'अितिश्री वायुपुराणे श्वेतवाराहकल्पे गयामाहात्म्यं सम्पूर्णम् ।'

जो कोअी यह पुण्य गयाख्यान विचार और मननपूर्वक पढ़ेगा या सुनेगा, अुसे अच्छी गति मिलेगी ।

९

बोधिगया

बोधिगया कोअी अैसा-वैसा तीर्थ नहीं है। बोधिगयाका नाम सुनते ही माथा भक्तिसे झुक जाता है। पुराने ज़मानेमें अिस स्थानको 'अुरुवेला' कहते थे। आजसे ढाअी हज़ार वर्ष पहले नेरंजरा नदीके तीरपर अिस वनमें अेक पीपलके पेड़के नीचे अेक युवक बैठा था। अुसका शरीर सूखकर काँटा हो गया था। दोनों आँखें दो आलोंके समान गहरी हो गअी थीं। परन्तु अुनसे दया, तप और तेजका अमृत टपकता था। छातीकी अेक-अेक पसली गिनी जा सकती थी। दाढ़ी, मूँछ और बाल बढ़े हुअे थे। लम्बे-लम्बे नख दीर्घ अुपवासके कारण सफेद पड़ गये थे। बाहरसे वह युवक बिलकुल शान्त दिखाअी देता था। परन्तु अुसके अभ्यन्तरमें महायुद्ध चल रहा था। भारतीय युद्ध तो दिन डूबते ही बन्द हो जाता था, पर अिसका युद्ध अहोरात्र चलता था। भारतीय युद्ध अठारह दिनमें समाप्त हो गया। अिसका युद्ध तो अठारह दिन बाद रंग लाया। यह युद्ध किसी व्यक्तिके विरुद्ध नहीं, मनुष्यके सनातन शत्रु मार (काम)के विरुद्ध था। अिस युद्धमें मनुष्य-जातिके हितके लिअे लड़नेवाला वह अेकाकी वीर दृढ़ निश्चय करके बैठा था। "मनुष्य-जातिका दुःख अब मुझसे देखा नहीं जाता। क्या मनुष्य अनन्त कालतक अिस तरह दुःख सहनेके लिअे ही पैदा किया गया है? अिस दुःखकी दवा कहीं न कहीं तो होनी ही चाहिये। अगर हो, तो अिस जीवनकी अिससे अधिक सार्थकता और क्या हो सकती है, कि यह अुस औषधिकी शोधमें बिताया जाय?

अौर, अगर अुस औषधिका मिलना ही असम्भव हो, तो फिर अिस जीनेमे ही क्या धरा है ?"

वहाँ वह नौजवान ही नहीं बैठा था, बल्कि भारतकी सनातन श्रद्धा सजीव होकर बैठी थी। नवयुवकोंके कुलगुरु, आस्तिकताके सागर, निर्भयताकी मूर्त्ति, भगवान् नचिकेताका वह अवतार था। अक्षय्य धाम माँगनेवाले राजपुत्र ध्रुवकी परम्पराका वह अनुयायी था; कारण अुसकी निष्ठा भी अुतनी ही ध्रुव थी। युवकने यह प्रण कर लिया था कि चाहे अिसी आसनपर शरीर सूखकर काठ हो जाय, हाड, मांस और चमडी हवामे मिल जायँ, परन्तु जबतक अिस भवरोगकी पीड़ाका नाशक बहुकल्प-दुर्लभ बोधि (ज्ञान) नहीं मिलेगा, तबतक यह शरीर यहाँसे टस-से-मस न होगा।

आजतक अैसा अेक भी अुदाहरण देखनेमे नहीं आया, जिसमें सत्य सकल्प विफल हुआ हो। युवकको सन्तोष हुआ। सिद्धार्थका नाम सार्थक हुआ। राजपुत्र गौतम, गौतमके बदले अब बुद्ध हो गया। अुसी क्षण अेक श्रद्धावान साध्वी थालीमे पायस (खीर) लेकर वहाँ आअी, और अुसने वह वरान्न अुस वनदेवको अर्पण किया।

यही स्थान बोधिगया है। जिस पुरातन अश्वत्थ वृक्षके नीचे भगवान् बुद्धने यह अन्तिम साधना की, अुसके सामने आज अेक भव्य मन्दिर खडा है। बगलमे चक्रमण*का स्थान है। आसपास प्राचीन ऋषियोंके समान बड़े-बडे वृक्ष है। अिन वृक्षोंने कितनी ऋतुअें सही होंगी, कितने प्राणियोंकी सहायता की होगी, और कितने साधकोंकी श्रद्धा-भक्तिके ये साक्षी रहे होंगे!

हम पहले अेक पेडके नीचे बैठे। कुअेंसे पानी निकालकर हाथ-पैर धोये। पानी पिया। फिर प्रसन्न अन्तःकरणसे मन्दिरमें दर्शन करने गये। मन्दिरके भीतर बुद्ध भगवान्की भव्य मूर्त्ति थी। अुन्हे साष्टांग दण्डवत् प्रणाम कर हम मन्दिरपर चढे और गुम्बदके आस-पास घूमे। कारीगरीमे भव्यता है, लेकिन मार्दव या नवीनता नहीं। नीचे अुतरकर मन्दिरकी

* चक्रमण=धर्मचिन्तन करते हुअे चक्कर लगाना।

परिक्रमा की। ज्यों ज्यों मैं परिक्रमा करता था, त्यों त्यों मेरा भाव बदलता था। सारा जीवन दृष्टिके सामने खड़ा हो गया। और तुरन्त दृष्टि शून्य हो गअी। पानीमें तैरनेवाला तैराक डुबकी लगाकर जब गहरा और गहरा पैठता जाता है, तब जिस प्रकार निर्भय होते हुअे भी वह भयभीत-सा हो जाता है, कुछ वैसी ही अिस क्षण मेरी स्थिति हुअी। जीवनके पृष्ठभाग (सतह) पर तो मैंने .खूब विचरण किया था। .खूब तैरा था। परन्तु अिस बार मैं गहराअीमें अुतरा। अैसी स्थिति पहले अेक ही बार ध्यानमें हुअी थी। परन्तु अिसकी तुलनामें वह स्पर्शमात्र थी। मेरी परिक्रमायें पूरी होनेपर मैं पिछवाड़ेके अश्वत्थको वन्दन करने गया। घरका त्यागकर मैं हिमालयकी ओर जा रहा था। भविष्य मेरे सामने अज्ञात था। मैंने अपनी नावकी सारी रस्सियाँ काट डाली थीं। सारी पतवारें चढ़ा दी थीं। मेरी नौका फिरसे अपने पुराने बन्दरगाहमें लौटेगी, यह धारणा अुस समय नहीं थी। अुस समयकी मनोवृत्तिका वर्णन कैसे हो सकता है? मैं बाहरसे शान्त था। लेकिन भीतर मनोज्वालामुखी धधक रहा था। मुझे यह भान था कि मैं कोअी त्याग कर रहा हूँ। मैं जानता था कि यह भान आध्यात्मिक अुन्नतिमें बाधक होता है। परन्तु फिर भी, वह मिटता नहीं था। अितनेमें अन्दरसे अेक आवाज आअी—"त्याग करना सहज है। लेकिन किये हुअे त्यागके योग्य बननेमें ही पुरुषार्थ है।" अहंकारके लिअे अितनी फटकार बस थी। मैं अुठा और पासवाले तालाबके किनारे जा बैठा।

तालाबमें असंख्य कमल खिले थे। लेकिन अुनकी तरफ मेरा चित्त—हमेशाका कला-रसिक चित्त—आकर्षित नहीं हुआ। वहाँसे अुठकर पासकी अेक गद्दी को देखने चल गया। अुसमें कअी साधु रहते थे। वह किसी महन्तके अखाड़े-जैसी दीख पड़ी। लेकिन अुसके विषयमें पूछ-ताछ करनेका मन न हुआ। मैं .खूब घूमा, हिमालयमें रहकर साधना की, और समाधान प्राप्त किया; परन्तु बोधिगयाका अुस दिनका अनुभव कुछ और ही था।

६

बेलुड़ मठ

बोधिगयासे हम बंगालको चले। बंगालमें हम पहले-पहल जा रहे थे। रेलमें रात बिताकर सबेरे जागते ही 'सुजला सुफला मलयज-शीतला' बंगभूमिका दर्शन हुआ। बंगाल, यानी छोटे-बड़े तालाबोंकी भूमि। वहाँके लोग अुन्हें पुकुर कहते हैं। पुकुर यानी पुष्कर। बंगालका मेरा प्रथम परिचय बहुत आनन्ददायक सिद्ध न हुआ। रातको सोते समय दिलमें यही विचार आते थे कि रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्दकी जन्मभूमि देखनेका मौका मिलेगा। विपिन पाल और अरविन्द घोषकी पुण्यभूमिके दर्शन होंगे। खुदीराम बोस और कन्हैयालाल दत्तका 'बांगाल' में सबेरे अुठकर देखूँगा। 'आनन्द मठ' और 'देवी चौधरानी' में वर्णित भूमिका साक्षात्कार होगा।

अिस तरहके मधुर विचारोंमें डूबा हुआ मैं सो गया। बैसाखका महीना था, अिसलिअे बाबाजीने अपने कपड़े अुतारकर डिब्बेके अूपर टाँग दिये, और वे भी सो गये। सबेरे अुठकर देखते हैं, तो कपड़े गायब! बंगालके दारिद्र्यपर दया आअी। दिलमें यह विचार आया कि कपड़े ले जानेवाले व्यक्तिको मैं अुसी वक्त देख पाता, तो अपने कपड़े भी अुतारकर अुसे दे देता। मैंने कलकत्ते जाकर कपड़े अुतारे और हरिद्वार पहुँचकर वहाँके रामकृष्ण सेवाश्रमको अपने सारे कपड़े दे डाले; लेकिन अुसका कारण दूसरा था।

ट्रेन लिलुआ स्टेशनपर ठहरी। हम अुतरे। वहाँ जाकर हमने विवेकानन्दके बेलुड़ मठकी पूछ-ताछ की। लेकिन किसीको बेलुड मठका पता न था। चारों खण्डोंमें विख्यात विवेकानन्दके मठका पता लिलुआ स्टेशनपर कोअी भी न जानता था! कितने अफसोसकी बात है? भटकते-भटकते हम बेलुड़ गाँवमें जा पहुँचे। वहाँ अेक वृद्ध 'भद्र पुरुष' मिले। अुन्होंने सज्जनतापूर्वक कहा—"चलिअे, मैं आपको बेलुड़ मठतक पहुँचा दूँ।" सबेरेसे अबतक मिले जवाबोंके बाद मैंने किसीसे अितनी

सज्जनताकी आशा नहीं की थी। हम अुनके पीछे-पीछे चले। लेकिन वाहरे दुर्दैव! वृद्ध महाशयका वेग चींटीके वेगसे अधिक बढ़ता ही न था। समय नष्ट होनेके दुःखकी अपेक्षा हमारे लिअे अिस वृद्ध मनुष्यको अितनी तकलीफ अुठानी पड़ रही है, अिसीका मुझे ज्यादा दुःख हुआ। मैंने कहा — "महाशय, मैं अपना रास्ता खोज लूँगा। आपको तकलीफ़ नहीं देना चाहता।" अुन्होंने कहा — "नहीं, नहीं; मुझे भी मठमें ही जाना है।" फिर क्या था? अब तो हमें भी चींटीकी चालसे रेंगनेके सिवा चारा ही न था।

बेलुड मठमें रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्दकी समाधियाँ है। मठ ठीक गंगानदीके तटपर है। अेक छोरपर दीपस्तम्भकी तरह लाल दीया भी है। हमने जाकर मठपति स्वामी प्रेमानन्दजीको प्रणाम किया। 'आओ बैठो', कहकर वे अपने काममें मशगूल हो गये। अितनेमें अेक दो ब्रह्मचारी हमारे पास आये। अुनमेंसे अेकने मुझे पूछा — "आप वापस कब जायेंगे? यहाँ कितने दिन रहना चाहते है?" मैं कबूल करता हूँ कि अिस प्रकारके स्वागतके लिअे मैं तैयार न था। मुझे अैसा मालूम हुआ मानो मैं अेक अनचाहा पाहुना हूँ! मैंने कहा — "भाअी, मैं तो कल ही जानेवाला हूँ।" अितना अभयदान देनेके बाद मैं समझा कि अब बात करनेमे हर्ज नहीं है। अेक सज्जनसे मैंने पूछा — "स्वामी विवेकानन्दकी समाधि कहाँ है?" अुन्होंने कहा — "समाधि अभी बन रही है। स्वामीजी महाराजकी संगमरमरकी मूर्ति तैयार है, जो अभी समाधिके कमरेमें रक्खी है। वह मैं आपको दिखा सकता हूँ।"

मैं काशी और गयाकी त्रिस्थलीकी यात्रा करके आया था। किन्तु जिनके धर्मग्रंथोंके कारण मुझमें फिरसे धर्मश्रद्धा स्थापित हुअी, अुन स्वामी विवेकानन्दकी समाधिका दर्शन मेरी दृष्टिमें अेक महायात्रा थी। पग-पगपर मेरे हृदयमें श्रद्धा और भक्तिकी अुमंगें अुठने लगीं। बस, चालीस-पचास कदम चलनेके बाद ही मेरे वर्षोंके चिरसञ्चित मनोरथ पूर्ण होंगे, यात्राका सुफल मिलेगा, संशयवादकी सुषुप्तिमें गाफिल पड़े हुअे भारतवर्षको अमेरिकाकी सर्वधर्मपरिषद्के व्यासपीठपरसे जगानेवाले स्वामी विवेकानन्दके, प्रस्तर मूर्त्तिके रूपमें ही क्यों न हों, दर्शन होंगे, यह मेरे अधीर और व्याकुल

हृदयके लिअे कम महत्त्वकी बात न थी। हम समाधिवाले कमरेमे पहुँचे। मैंने अत्यन्त भक्तिभावसे साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया, और अेक क्षणके लिअे बेसुधा-सा हो गया।

मैं वापस लौटा। नदीके घाट पर नहाया। घाटके पास पानीकी बड़ी-बड़ी कोठियॉ अेक कतारमे रखी हुअी थीं। अुस तरफ ध्यान जानेपर मैंने वहॉके अेक ब्रह्मचारीसे अुनका प्रयोजन पूछा। अुन्होंने कहा — "गंगा यहॉ समुद्रसे बहुत दूर नहीं है; अिसलिअे जब समुद्रमें ज्वार आता है, तब नदीका पानी खारा हो जाता है। और जब भाटा आता है, तो पानी मीठा रहता है। अिस कारण भाटेके वक्त हम पीनेका पानी अिन कोठियोंमें भरकर रखते हैं।"

नहा-धोकर मन्दिरमें प्रवेश किया। वहॉ अूपरकी मजिलमे रामकृष्ण परमहसकी अस्थियॉ तॉबेके अेक डिब्बेमे रखी हुअी है, और अुस डिब्बे-पर रामकृष्ण परमहसका अेक छोटा-सा फोटो रख दिया गया है। अुसकी पूजा होती है। पीछेकी तरफ ध्यानके लिअे छोटी-सी कोठरी है। यह व्यवस्था मुझे खूब पसन्द आयी। ध्यानकी कोठरीमें हमेशा शान्ति रहती है। चाहे जितने लोग ध्यान करें, तो भी अेकके कारण दूसरेके ध्यानमे बाधा नहीं पड़ती। लोग बिना आवाज किये अन्दर आकर बैठते हैं; और अुसी तरह चुपचाप बाहर चले जाते है।

आम तौरपर बंगाली अिस बातका खास ध्यान रखते है कि सभामे अुनके आने-जानेसे दूसरोंको तकलीफ न हो। अगर बहुतसे लोग बैठे हों, और अुनके बीचसे जाना पड़े, तो नीचे झुककर, जिस दिशामे जाना है, अुसकी सूचनाके लिअे हाथ बढ़ाये, हरअेकसे माफी चाहनेका-सा भाव धारण किये, मनुष्य अुस भीड़मेसे निकलकर जाता है।

ध्यान-मन्दिरमे बैठकर हमने ध्यान किया। परमहसकी समाधिके सामने बैठकर गीता और अुपनिषदोंका पाठ किया। मैंने देखा कि मेरे अिस स्वाध्याय और संस्कृतके शुद्ध अुच्चारणके कारण वहॉके ब्रह्मचारियोंमे मेरी प्रतिष्ठा कुछ बढ़ी।

मन्दिरसे वापस मठमे गये। वहॉ दुतल्लेपर स्वामीजी महाराजका कमरा था। अिस कमरेकी जो स्थिति स्वामी विवेकानन्दके वक्त थी,

वही ज्यों की त्यों आजतक क़ायम रक्खी गअी है। स्वामीजी महाराजके सोनेकी गद्दी, अुनका साफा, 'अलखल्ला' (अँगरखेकी-सी कफनी) और कनटोपी तथा अुनका बड़ा भारी कमण्डलु, हुक्का वग़ैरा सारी चीज़ें बड़े जतनसे अेकत्र रक्खी गयी हैं। मेरे-जैसे प्रेक्षकोंको कमरेके अन्दर जानेकी अिजाज़त नहीं मिल सकती। दरवाजेमें ही आड़ा 'खटका' लगा हुआ था; वहाँसे मैंने झाँक-झाँककर देखा और हम लौटे। जब अेक अज्ञात भिखारीकी तरह वे सारे देशमें घूम-घूमकर हिन्दूधर्म और हिन्दू समाजकी आधुनिक स्थितिका निरीक्षण करते थे, अुस वक़्त अुनके साथ जो बड़ा कमण्डलु भी घूमता था, अुसीने मेरा ध्यान अधिक खींचा। मैं विचार करने लगा कि अिस कमण्डलुके पेटमें कितने क़ीमती अनुभव समाये हुअे होंगे!

दोपहरमें भोजनका समय हुआ। मैं जानता था कि बंगाली लोग मछली खाते हैं। अिसलिअे मैंने मठपतिको खास तौरसे सूचित कर दिया कि मैं शाकाहारी हूँ। अुन्होंने कहा — "तुम डरो मत। तुम्हें यहाँ शाकाहार ही मिलेगा।" हम भोजन करने बैठे। बंगाली भोजन चखनेका यह मेरा पहला ही मौक़ा था। बंगालियोंका मुख्य आहार भात और शाक ही है। खाते समय शाक अितने प्रकारके और अितने विपुल देखे कि मेरे मनमें सहज ही यह शंका अुठी कि शाकके लिअे भात है या भातके लिअे शाक! अेक वर्षसे मैंने मिर्च-मसाले छोड़ दिये थे, और यहाँ तो शाकमें मिर्चका अुपयोग अुदारतासे किया गया था। हरअेक निवालेके साथ मुझे पानी पीना पड़ता था। अितनेमें मैंने देखा कि मेरी पत्तलपर, यानी केलेके पत्तेपर, घीके जैसा कुछ जमा है। मैं समझा, अब मिर्चकी दवा मिल गअी। परन्तु दुर्भाग्यसे वह भी भूने हुअे आलुओंका कचूमर निकला, जिसमें हरी मिर्चें पड़ी थीं।

प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः।

भोजनके बाद मैं बग़ीचेमें हाथ धोने लगा। मैंने सोचा, हाथ धोनेका पानी चाहे जहाँ डाल देनेके बदले फलवाले पेड़ोंको मिले, तो अच्छा हो। ज्योंही मैंने हाथ धोना शुरू किया, दो तीन ब्रह्मचारियोंने हाहाकार मचा दिया। वे मुझे अंग्रेज़ीमें ठीक-ठीक समझा न सकते थे, और

मैं अुनकी बँगला समझ नहीं सकता था। निदान मुझे यह पता चला कि अिस पेड़के फूल ठाकुरजीको चढ़ाये जाते हैं, अिसलिअे अुन्हें जूठा पानी नहीं देना चाहिये।

मैं अनजान आदमी था, और मेरा यह पहला ही अपराध था, अिसलिअे अेक भाअीने मुझे क्षमा कर देनेका प्रस्ताव पेश किया। और, मैंने देखा कि अुनमेंसे कुछने तो अुदारतासे, और दूसरोंने सज़ा करनेका कोअी अुपाय न सूझनेके कारण प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

दक्षिणी स्वच्छताका मेरा अभिमान चूर-चूर हो गया। सच ही तो है कि पूजाके फूलके पौधोंको जूठा पानी कैसे दिया जा सकता है? कर्नाटकमें लिंगायत लोग अपनी जातिके लोगोंके हाथोंका ही पानी पीते हैं। यही नहीं, बल्कि चुस्त लिंगायत जिस गायका दूध पीता है, अुस गायके लिअे घास और पानी भी लिंगायतका ही लाया हुआ होना चाहिये! शास्त्रमें लिखा जो है—

आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः!

दोपहरमें ब्रह्मचारियोंको फ़ुरसत थी। अिसलिअे अुनके साथ बातचीत करनेमें समय बिताया। ब्रह्मचारियोंमें अेक मुसल्मान था। वह भी कालिकाका अुपासक बन गया था, और परमहंसके अुपदेशका अनुवाद करनेमें समय व्यतीत करता था। अुसने मुझसे पूछा—'तुमने गुरुमहाराजका अुपदेश पढ़ा है?' मैंने कहा—'जी हाँ।' मेरी परीक्षा लेनेके लिअे अुसने अेक सवाल पूछा—'बतलाओ, कालीका वर्ण श्याम क्यों है?' मैंने कहा—'श्यामवर्ण आकाशका है, आकाश अनन्त है, काली भी अनन्त है, अिसलिअे काली भी श्याम है।' अुसने कहा—'ठीक।' चूँकि मैं पास हुआ था, अिसलिअे अुनके वाद-विवादमें शरीक होनेके लायक माना गया। अुनसे प्रतिप्रश्न पूछनेकी मुझे अिच्छा हुअी। मैंने कहा—'स्वामी विवेकानन्दकी 'काली द मदर' (काली माता) नामक कविताका रहस्य मुझे समझाअिये।' अुन्होंने कहा—'चलो, स्वामी प्रज्ञानन्दके पास चलें; वे समझायेंगे।' मेरी बाज़ी बिगड़ गयी। देरतक परिहास करनेकी मेरी वृत्ति नहीं थी। परन्तु स्वामी प्रज्ञानन्दके पास जानेपर मुझे गम्भीर मुँह बनाकर जिज्ञासु

बनना ही पडा। अुन्होंने मुझसे कहा—'तुम .खुद अुस कविताका क्या रहस्य समझे हो?' मैंने संक्षेपमें कह दिया। अुन्होंने कहा—'ठीक है।' अिस तरह मैंने छुटकारा पाया।

ये स्वामी प्रज्ञानन्द जानने योग्य व्यक्ति थे। अुनका असली नाम था, देवव्रत बोस। वे अेक प्रसिद्ध ब्राह्मो थे। अुनके मित्रोंमें अुनकी बहुत ख्याति थी। वे अलीपुर-बमकेसमें पकड़े गये थे, परन्तु अन्तमें छोड़ दिये गये। अुनका मुक़द्दमा कअी दिनोंतक चलता रहा। अुतने समयके लिअे अुन्हें जेलमें रहना पडा था। कअी लोगोंको जेल ही मे पहली बार अेकान्त मिलता है, और वहाँ आत्म-परीक्षण करके वे अपने जीवनका सारा प्रवाह ही बदल डालते हैं। देवव्रत बोसके साथ अैसा ही हुआ। वे ब्राह्मोसे वेदान्ती हो गये, और सन्यासकी दीक्षा लेकर प्रज्ञानन्द बन गये। बेलुड़ मठमें आनेके बाद अुन्होंने 'अुद्बोधन' नामक बँगला मासिक पत्रिकामें 'भारतेर साधना' शीर्षक अेक सुन्दर लेखमाला लिखी थी, जिसमे अिस बातकी बहुत सुन्दर चर्चा की गअी थी कि हिन्दुस्तानके लिअे अीश्वरने कौनसा काम नियोजित किया है। कुछ दिनों बाद ये स्वामी हिमालयमे मायावती मठके मठपति थे, और 'प्रबुद्ध भारत' मासिक पत्रिकाका सचालन करते थे। कुछ वर्षोंतक यह काम करनेके बाद वे समाधिस्थ हुअे।

मुझे 'गॉस्पेल ऑव् श्री रामकृष्ण' (श्रीरामकृष्ण-कथामृत)के लेखक श्री 'अेम्'से मिलना था। और हो सके तो रामकृष्ण परम्हंसकी धर्मपत्नी और शिष्या श्री शारदा माताका भी दर्शन करना था। 'अेम्'को यहाँ सब लोग मास्टर महाशय कहते थे। मैंने मठपति स्वामी प्रेमानन्दकी अिजाज़त ली। अुन्होंने मेरे साथ अेक ब्रह्मचारी दिया। हम अेक छोटेसे डोंगेमें बैठकर अुस पार गये, और वहाँसे अेक छोटी अगनबोटमे बैठकर कलकत्ते पहुँचे। रास्तेमे ब्रह्मचारीसे .खूब बातचीत हुअी। वे बहुत मिलन-सार थे। बगालके अनेक युवकोंकी तरह वे भी पहले आतंकवादी पक्षमें थे। बादमें धार्मिक वृत्ति बढ़नेपर राजनीतिमें रुचि कम होती गअी, और वे रामकृष्ण मिशनमें शामिल हुअे। मैंने अुनसे पूछा—'आपका आदर्श क्या है?' अुन्होंने जवाब दिया—'हमें जो दीक्षा मिली है, वह यह

है कि 'आत्मनो हिताय' और 'जगतः सुखाय' जीवन विताना चाहिये। स्वामी महाराजने मठके ब्रह्मचारियोंको यह अुपदेश दिया है कि तुम्हारी जिन्दगी सिपाहीके समान कठिन होनी चाहिये। तुम्हारी बुद्धि अितनी तीव्र और तेजस्वी होनी चाहिये कि तुम तत्त्वज्ञानके कूट-से-कूट प्रश्नोंकी चर्चा कर सको। तुममे अितनी सादगी होनी चाहिये कि दिनभर खेतमे काम करके शामको शाकभाजी लेकर तुम बाजारमे वेच सको। तुममे परिश्रमशीलता और व्यवहार-कुशलता होनी चाहिये।' अिस ब्रह्मचारीने दो ही दिनमे .खूब ममता दिखाअी। बंगाली भावनाप्रधान होते है, अिस कथनकी जो कल्पना अिस ब्रह्मचारीने मुझे दी, अुसे मै भुला नहीं सकता।

हम मास्टर महाशय — महेन्द्रनाथ गुप्त — के मकानपर पहुँचे। वे पूजामे वैठे थे, अिसलिअे जरा अिन्तज़ार करना पडा। मैं राह जोहता वैठा था, अितनेमे अुनकी भव्य मूर्त्ति बाहर आअी। वे श्वेत वस्त्र धारण किये हुअे थे। लम्बी दाढी छातीको सुशोभित कर रही थी। गम्भीरता और नम्रता अुनकी मुखाकृतिकी विशेषता थी। वे जमीनपर ही वैठे। मेरे मित्र गुणाजीने 'गॉस्पेल ऑव् श्री रामकृष्ण'का भाषान्तर मराठीमें किया था। अुसमे मेरा हाथ था। अिसलिअे अुसीके विषयमे बातें शुरू हुअीं। मेरा परिचय पानेके बाद सन्तोष दर्शाते हुअे अुन्होंने कहा — 'तो गॉस्पेलका भाषान्तर करनेवाले शुष्क पंडित ही नहीं, साधु भी है।'

मास्टर महाशयके साथ अधिक बातचीत नहीं हुअी। हम 'अुद्-बोधन' कार्यालयमे श्रीश्रीमाका दर्शन करने गये। श्रीश्रीमासे मतलब है, श्री शारदा मातासे। कार्यालयमे दरवाजेके सामने ही अेक कमरा था। अुसमे स्वामी शारदानन्द बैठे थे। स्वामी शारदानन्द सारे रामकृष्ण मिशनके सञ्चालक हैं। सारी दुनियामे जहाँ-जहाँ रामकृष्ण मिशनकी संस्थायें चलती हैं, अुन सबपर अुनकी देखभाल है। अिसलिअे अुनके अूपर कर्मका भारी बोझ है। वे अपने आसनपर पाँव पसारे बैठे रहते हैं, और सारे दिन काम करते हैं। अुनके शरीरपर कोअी वस्त्र न था, और पेट बहुत ही बड़ा था। हमेशा अेक ही जगह बैठकर काम करने और सदा बंगाली आहारके सेवनका यह अेक परिणाम था। **'साधु चलता भला,'** अिस कहावतका रहस्य यहाँ मैंने अेक नये अर्थमे समझा।

'नमो नारायण' कहकर मैंने अुन्हें वन्दन किया। 'नारायण' कहकर अुन्होंने आशीर्वाद दिया। यह हमारी पुरातन प्रथा है। संन्यासीको अिन्हीं शब्दोंमें वन्दन किया जाता है। वन्दन करके हम भीतर गये। थोड़ी देर अिन्तज़ार करनेपर दर्शनकी आज्ञा मिली। रामकृष्ण परमहंसके अनुयायी शारदामाताको दुर्गाका अवतार मानते हैं। वे महत्वका कोअी भी कार्य अुनसे पूछे विना नहीं करते। मैंने शारदामाताका दर्शन अत्यन्त भक्तिपूर्वक किया। पतिको ही गुरु मानकर अीश्वरके समान आजीवन अुनकी शुद्ध सेवा करनेवाली और अुनके समाधिस्थ होनेपर चौबीसों घण्टे रामकृष्ण परमहंसके ध्यान-पूजनमें जीवन व्यतीत करनेवाली अिस तपस्विनी, ब्रह्मचारिणी, और आदर्श पत्नीका दर्शन मैं अपने जीवनका अेक अद्वितीय अहोभाग्य मानता हूँ। मैंने साष्टांग प्रणाम किया। दोनोंके लिअे सामान्य भाषाके अभावमें बातचीत होना तो संभव न था। मैंने भक्ति और आर्जवपूर्वक अुनके चरणोंपर दृष्टिपात किया। अुन्होंने मातृवात्सल्यसे आशीर्वाद दिया, और हम लौटे।

दूसरे दिन वैशाखी पूर्णिमा थी। मठमें बोधि-अुत्सव था, और गंगा नदीके तटपर 'खरडह' नामक अेक गाँवमें चैतन्यका अुत्सव था। अुसमें अुपस्थित होनेके लिअे मठको निमंत्रण था। स्वामी प्रेमानन्दने अुस निमंत्रणमें मुझे भी शामिल कर लिया। दूसरे दिन हम वहाँ गये।

७

भक्तिके धाममें

'खरडह'का नाम बंगालके धार्मिक अितिहासमे प्रसिद्ध है। गौरांग प्रभु श्री चैतन्यके कृपा-प्रसादसे नेड़ानेडी लोग अिसी स्थानमें शुद्ध हुअे थे। ये नेडानेडी लोग असलमे कौन थे, वे अशुद्ध क्यों माने गये, यह कौन कह सकता है? कोअी मानते है कि वे मुसलमान थे, और कोअी कहते है कि मलिक काफूरने जिन बौद्ध लोगोंका नाश किया था, अुनमेसे बचे हुअे ये लोग थे। मुसाफिर अितिहास और दन्तकथायें सुनते हैं, लेकिन वे अुनकी चर्चा करते नहीं बैठते। हॉ, फ़ुरसत मिलनेपर वे कल्पना-तरंगसे काम ले सकते हैं। जिस वक़्त नेड़ानेड़ी लोग शुद्ध किये गये थे, अुस वक्त अुन्हें पता न था कि वे कौन हैं। अुन्हें अिसका भान न था कि वे क्यों बहिष्कृत किये गये थे? वे अितना ही जानते थे कि समाजको अुनका सहवास प्रिय नहीं है। यदि वे तिरस्कारका कारण जानते, तो समयपर सुधरनेका प्रयत्न भी करते। जो अुनका तिरस्कार करते थे, अुन्हें भी तिरस्कारके कारणका पता कहाँ था? परम्परा चली आअी है, अिस लिअे तिरस्कार करना चाहिअे। यदि न करेंगे, तो अधर्म होगा। हमारे ऋषि-मुनियोंने यह सारी परिपाटी बना दी है। वे सर्वज्ञ थे। हम अल्पज्ञ हैं, और अल्पज्ञ ही रहनेवाले हैं। कारणकी छान-बीन करनेमे धृष्टता है, नास्तिकता है, अिसलिअे जो चलता आया है, वही चलाना चाहिअे। यह वृत्ति समाजकी है। और नेड़ानेड़ी लोग? वे तो यही मानते थे कि अीश्वरने अुन्हे अस्पृश्य ही अुत्पन्न किया है। हमारे पूर्वकर्म बुरे होंगे, अिसलिअे हम अिस जातिमें जन्मे हैं। अुच्च वर्णोंने पुण्य किया है, अिसलिअे अुन्हे हमारा तिरस्कार करनेका, तुच्छ समझकर हमें गालियाँ देनेका, अधिकार है।

दोनोंको यह सन्तोष था कि अिस स्थितिमे कोअी अन्याय नहीं है। अिसी समय बंगालमें चैतन्य महाप्रभुकी भक्ति जाग्रत हुअी। अुन्हें यह स्थिति अच्छी न लगी। भक्तिने नेड़ानेडी लोगोंसे कहा—'परमात्माके

यहॉं नसीबका राज नहीं है। अीश्वरका नाम लो। तुम पवित्र हो।’ नेड़ानेड़ी पावन हुअे और वैष्णव बन गये।

यह शुद्धि बिना विरोधके तो होने नहीं पाअी होगी। सनातनधर्मका अभिमान धारण करनेवाले धर्म-संरक्षकोंने अिस अधर्मको रोकनेकी चेष्टा करनेमें कुछ भी अुठा न रक्खा होगा। लेकिन अुनके नाम भी अब हम नहीं जानते। सनातन हिन्दूधर्ममें अपने अन्धभक्तोंके शिकंजोंसे बचनेकी शक्ति है, अिसीलिअे वह आजतक जीवित रह सका है।

नावमें बैठकर नदीके प्रवाहमें यात्रा करनेके समान काव्यका अनुभव और शायद ही कहीं होता हो। हम दोपहरको भोजनके बाद रवाना हुअे, और कोअी तीन बजे खरदह पहुँचे। वैशाख पूर्णिमाका दिन था, अिसलिअे कड़ी धूप पड़ रही थी। परन्तु गंगामैयाके शीतल स्रोतपरसे बहनेवाली हवा धूपकी सख्तीको भी कुछ नरम किये डालती थी। अींट और चूनेके बने हुअे अिस तरफके घाट दर्शनीय होते हैं। देहातकी स्त्रियॉं जब पानी भरने आती हैं, तो अुन्हें देखकर दया अुमड़े बिना नहीं रहती। अुनकी साड़ी बहुत ओछी और अिसीलिअे तंग होती है। मालूम होता है, अुन्हें साडी पहनकर अिधर-अुधर घूमने-फिरनेमें बडी असुविधा होती होगी। लेकिन अुनके मुँहपर दुःखका ज़रा-सा भी चिह्न दिखाअी नहीं देता। खरदहमें मुख्य मन्दिरके प्रांगणमें कअी लोग भजन कर रहे थे। झॉंझ, मंजीरे, करताल, मृदंग, आदि वाद्य बज रहे थे। और हरअेक भक्त भक्तिरसमें अितना मतवाला हो गया था, मानो हरअेकको कोअी जबरदस्त भूत लग गया हो!

महाराष्ट्रमें पंढरपुरमें मैंने लोगोंको भजनमत्त होते देखा है। लेकिन अुसमें कुछ सौम्यता होती है। यहॉं तो अैसा दीख पड़ता था, मानो लोग भक्तिकी मस्तीमें अेक-दूसरेसे प्रतिस्पर्द्धा कर रहे हों। अनेक वाद्योंके स्वर-सम्मिलनसे और बेहोशोंके-से हावभाव व्यक्त करनेसे अेक तरहका भक्तिरस तो अवश्य पैदा होता है, परन्तु मुझे नहीं लगता कि अुससे स्वाभाविक भक्तिको पुष्टि मिलती होगी। अुसे तो अेक तरहका नशा ही समझना चाहिअे।

अिसके बाद हम बेलुड मठके संन्यासियों और ब्रह्मचारियोंको निमंत्रित करनेवाले अपने मेजबानके पास गये। अुन्होंने फलाहारका आग्रह किया।

मैं शक्कर नहीं खाता था, और दिनमें अेक बार ही अन्न ग्रहण करनेका मेरा नियम था, अिसलिअे मैंने लाल तरबूज खाना ही पसन्द किया। खानेके आग्रहकी तो कोअी कमी नहीं थी। जब हमारे साथके सन्यासी अधिक लेनेसे अिनकार करते, तो हमारे मेजबान कहते —'अगर आपको न भाये, तो थालीमें रहने दीजिये। हमें अुतना ज्यादा प्रसाद मिलेगा।' मैंने शिष्टाचारका विचार छोड़कर कहा —'मेरे विचारमें दूसरेका अुच्छिष्ट खानेमें धर्मकी हानि है। मैं स्वीकार करता हूँ कि अुच्छिष्ट खानेमें प्रेमकी अेकता है, परन्तु न खानेमें धार्मिक संयम है।' जिस समय मैं यह आलोचना कर रहा था, अुसी समय बायें हाथमें प्याला लेकर पानी भी पी रहा था। यह देख अेक बंगाली युवकने कहा —'यह क्या ? आप बायें हाथसे पानी पीते हैं?' मैंने जवाब दिया —'दाहिना हाथ जूठा है। जूठे हाथसे बरतन क्यों बिगाड़ा जाय?' वह हँसा। अुसके हँसनेमें तिरस्कार था। वह सोच रहा था कि अिस जंगली मनुष्यको शिष्टाचारका बोध कैसे हो? दाहिने-बायें हाथका भेद यह क्योंकर समझे? बायाँ हाथ तो सबेरे शरीर शुद्धिके लिअे काममें लाया जाता है; अुस हाथसे पानी कैसे पिया जाय? मैं सोचता था कि जब दोनों हाथोंसे आटा गूँधना पड़ता है, तब अिन लोगोंकी बायें हाथकी घृणा कहाँ हवा हो जाती है?

हिन्दुस्तानमें स्वच्छता, पवित्रता, लज्जा, सिद्ध और निषिद्ध, स्वच्छ और अुच्छिष्ट, आदिके विषयमें हरअेक जगहकी कल्पना निश्चित हो गयी है। परन्तु दो प्रान्त अथवा दो जातियोंकी कल्पनामें कोअी मेल नहीं है। काश्मीरमें हाथको जूठा होनेसे बचानेके लिअे कुरतेकी लम्बी आस्तीनमें रोटी पकड़कर खानेवाले लोग मुझे बूट पहनते समय हाथका अुपयोग करते देख हँसते थे, और ख़ुद कसाअीकी दुकानसे फल खरीदकर बिना धोये खा लेते थे! अगर हमारे देशके धर्मध्वजी लोग दूसरे प्रान्तोंमें जाकर दो-दो महीने वहाँवालोंका आतिथ्य स्वीकारनेका व्रत लें, तो मैं समझता हूँ कि हमारी धर्म-विषयक कल्पनायें बहुत-कुछ सुधर जायँ।

फलाहारके बाद संगीत शुरू हुआ। मैंने रविबाबूका 'अयि भुवन मनमोहिनी' सुनानेका अनुरोध किया। वहाँ बहुतसे नवयुवक अेकत्र हुअे थे, लेकिन अुनमें कोअी 'मनमोहिनी' गानेको तैयार न दीख पड़ा। अेकने

कहा —‘हम यहाँ सिर्फ धार्मिक गीत गाते है।’ आखिर दूसरे अेक नवयुवकने आतिथ्यधर्म निवाहनेके लिअे ‘मनमोहिनी’ गाकर सुनाया, और सबने अुसे सहन किया। मुझे शंका है कि युवकोंके अुस समुदायमे कअी क्रान्तिवादी भी अवश्य रहे होंगे। अेकने मुझसे पूछा —‘बंगालियोंके स्वास्थ्यके विषयमे आपकी क्या राय है?’ मैंने कहा —‘आम तौरपर वे निर्बल दीख पड़ते है।’ वह मेरे शरीरपर दृष्टि डालकर तिरस्कारसे हँसा। मैं समझ गया, और मैंने जवाब दिया —‘आप मुझे महाराष्ट्रका प्रतिनिधि तो नहीं न समझते है?’ हम दोनों हँस पडे। अुसने कहा —‘हमें अपनी खुराकमे फेरफार करना चाहिअे। गेहूँके बिना शक्ति न बढ़ेगी।’

बंगालका ग्रामीणजीवन सादा और सुन्दर है। बंगाली झोंपड़ियोंके छप्पर सुडौल और सुन्दर होते है। अुनकी दीवारें अुम्दा मिट्टीसे पुती होती है। जहाँ जाअिये, गायन-वादन सुनाअी देता है। लेकिन मेरा यह खयाल है कि जातिभेदकी सख्तीके कारण गाँवमें अेकताका विकास सुचारु रूपसे नहीं हो सकता। खरडह-जैसे छोटेसे देहातमें भी बड़े-बड़े पण्डित रहते है, और बिना प्रतिष्ठाकी अिच्छा किये विद्याकी अुपासना करते हैं।

लौटते समय सूर्यास्त होनेको था। अब नदीके प्रवाहके साथ जाना था। हम नदीके प्रवाहमें बहने लगे। हमारे साथके ब्रह्मचारी रामप्रसादके भजन गा रहे थे।

रामकी राजधानी

मेरे साथ मरढेकर बाबा थे। वे रामदासी सम्प्रदायके थे। जबसे शंकराचार्यने सन्यासियोंके दस नाम यानी प्रकार निश्चित किये, चार मठ स्थापित किये, और ब्रह्मचारियोंके भी चार प्रकार निश्चित किये, तबसे हिन्दुस्तानके साधुओंके जीवनमें अेक तरहकी सुव्यवस्था आ गयी। धर्म-क्षेत्रमें शंकराचार्य, समुद्रगुप्त या नेपोलियनकी टक्करके विजेता थे; राजा टोडरमल या शिवाजीकी जोड़के व्यवस्थापक थे; तुलसीदास सदृश कवि थे; बुद्ध भगवान्-जैसे आत्मविश्वासी थे और ज्ञानेश्वरके मुकाबलेके साहित्याचार्य थे। अुन्होंने सनातनी हिन्दुओंकी जो व्यवस्था कर दी, अुसके अवशेष आजतक कायम हैं। सचमुच शंकराचार्य हिन्दूधर्म-सम्राट् माने जा सकते हैं।

अुनके निश्चित किये हुअे सन्यासियोंके दस नाम गिरी, पुरी, भारती, तीर्थ, सरस्वती आदि हैं। ब्रह्मचारियोंके चार विभागोंमेंसे स्वरूप सम्प्रदाय भी अेक है। अुसका अेक मठ अयोध्यामें है। अैसा माना जाता है कि महाराष्ट्रमें धार्मिक पुनर्जीवनको सुव्यवस्थित स्वरूप देनेवाले श्री समर्थ रामदास अिसी अयोध्या मठके और स्वरूप सम्प्रदायके थे।

अयोध्या जाते हुअे मरढेकर बाबाके दिलमें आनन्द और भक्तिका अितना अुद्रेक हो रहा था कि अुन्हें देखकर कोअी भी यह समझ सकता था कि अुनकी दृष्टि स्वाभाविक स्थितिमें नहीं थी।

आमुचे कुळीं हनुमन्त
हनुमन्त आमुचे कुळदैवत
स्वरूप सम्प्रदाय अयोध्या मठ

(हनुमान हमारे कुलमें है।
हनुमान हमारे कुलदेवता है।
सम्प्रदाय स्वरूप, और मठ अयोध्या है।)

अैसा अेक संकल्प रामदासी पंथके लोग रोज़ सुबह-शाम पढ़ते हैं। अैसे अयोध्या मठका दर्शन बाबाके लिअे अेक अपूर्व लाभ था।

मेरी यात्रामें तीन तीर्थस्थानोंकी तरफ़ मेरा ध्यान विशेष आकर्षित हुआ है। अयोध्या, हरद्वार और अमृतसर। तीनों जगह, जाने क्यों, मेरा चित्त विशेष प्रसन्न रहा है। तीनों जगह कोअी मेरी जान-पहचानका या मुलाक़ाती न था। तो भी अिन तीनों स्थानोंके दर्शन और वहाँके वातावरणके अनुभवसे मुझे विशेष प्रसन्नता हुअी, आह्लाद हुआ। तीनों भिन्न-भिन्न समयके है, परन्तु है अेक ही जातिके।

काशी जानेसे पहले मनुष्य अपने मनमें अुसका जो कल्पनाचित्र खींच लेता है, अुसकी तुलनामें काशीका प्रत्यक्ष दर्शन कभी निराशाजनक सिद्ध नहीं होता। गंगाके प्रवाहपर, नावमें बैठे-बैठे, घाटके बाद घाट देखनेके पश्चात् मनुष्यके मुँहसे हठात् आश्चर्यके ये अुद्गार निकलते हैं— 'मुझे कल्पना भी न थी कि काशीका दृश्य अितना मनोहर और अितना भव्य होगा!'

अयोध्याकी स्थिति अिससे अुलटी है। अयोध्या तो रामराज्यकी राजधानी है। अयोध्याका नाम सुनते ही कल्पनाके सामने अेक अति-विशाल मनोहर नगरीका दृश्य खड़ा होता है। जब मनुष्य अिस भव्य कल्पनाके साथ अयोध्या जाता है, तो पहले वहाँका स्टेशन देखकर ही निराश हो जाता है। जहाँ हमेशा लाखों यात्रियोंका आवागमन होता है, वहाँ अुनकी सुविधाका कोअी खयाल नहीं रक्खा जाता। यह देखकर यह विश्वास हुअे बिना नहीं रहता कि वर्त्तमान राज्य देशी जनताके लिअे है ही नहीं, और खासकर ग़रीबोंके लिअे तो बिलकुल ही नहीं है।

अयोध्यामें नदीका प्रवाह घाटसे बहुत ही दूर चला गया है। नदी का पाट खूब चौड़ा और रेतीला है। गाड़ियोंको रेतमें चलते समय बड़ी दिक़्क़त होती है। अिसलिअे वहाँके लोगोंने पहियोंके नीचे लकड़ीके दो-दो पटिये बिछानेकी तरकीब अीजाद की है। गाड़ीका रास्ता नदीके पाटमेंसे तिरछा जाता है, अिसलिअे वह खूब लम्बा है। अिस सारे रास्तेकी लीकपर लम्बे-लम्बे पटिये रेलकी पटरियोंकी तरह बिछा दिये गये हैं। गाड़ियाँ अिन पटियोंपर चलती हैं, लेकिन गाड़ियोंकी विडम्बनाओंका अन्त यहीं नहीं होता। आँधी आते ही ये पटिये रेतमें दब जाते हैं। फिर रास्तेको, और पटियोंकी शोधके लिअे अेक पुरातत्त्व-विभाग खोलनेकी

नौबत आ पड़ती है। परन्तु लोगोंने अिसका भी अेक अुपाय खोज लिया है। वे रास्तेके दोनों तरफ कॉटे, कॅटीले पौधे, और घासकी अेक हाथ अूँची बागुड लगा देते है, जिससे ऑधीके साथ आनेवाली रेत वहीं रुक जाती है। रेतके बोझसे बागुड़ भीतरकी तरफ झुक न जाय, अिसके लिअे अन्दरकी तरफ रेतका ढेर लगाकर अुसे सहारा दिया जाता है। नदीमें बाढ़के आने और अुतर जानेपर फिर यह रास्ता बनाना पड़ता है। यदि सहाराके मरुस्थलमे प्रकृतिने अूँटकी सुविधा न की होती, तो वहॉ भी लोगोंको अिसी ढगकी जबरदस्त व्यवस्था करनी पड़ती।

नदीमे नहाकर पीछे मुड़ते ही सहसा अयोध्या नगरीके और अुसके घाटोंके दर्शन होते है। अयोध्यामे सर्वत्र चूनेका ही काम है, अिसलिअे सब मन्दिर सुधाधवल (सुधा–चूना, धवल–सफेद) दिखाअी देते है। जिस समय हम नहाकर नगरमे प्रवेश करते है, अुस समय सामनेवाले मन्दिरोंमे घण्टारव होता है; यात्री भॉति-भॉतिके चमकीले लोटे और घड़े हाथमें लिये आते-जाते हैं; बहुतोंके हाथमे चन्दन, कुकुम् और पुष्पकी थालियॉ होती है, और हरअेक रामराजा, सीतारानी और बजरंगबली हनुमानकी जयके नारे लगाता जाता है। अैसा प्रसग मनुष्यके चित्तपर सदाके लिअे अंकित हुअे बिना कैसे रह सकता है? यदि मनुष्यकी स्मृति पत्थरकी तरह जड हो, तो भी अिस प्रकारकी स्मृति अुसपर अशोकके शिला-लेखोंकी तरह हमेशाके लिअे अकित हो जायगी।

नहा-धोकर हम दर्शन करने निकले। यह कैसे हो सकता है कि अयोध्यामे बन्दर न हों? सुनते हैं कि वानरोंकी ही मददसे रामचन्द्रजीने सीताजीका पता लगाया और लका जीती। अिसके बदले अुन्होंने अपने बाद अयोध्याका राज्य वानरोंको सौंप दिया। आज भी वहॉ वानरोंका निष्कटक राज्य जारी है। अितिहासकार कहते है कि अति प्राचीन कालमें दक्षिण हिन्दुस्तानसे जो माल विदेशोंको जाता था, अुसमे मोर और बन्दरोंका निर्यात होता था। यदि रामचन्द्र भी दक्षिण हिन्दुस्तानसे बन्दरोंका अेकाध दल यहॉ बसानेके लिअे ले आये हों, तो अुसमें आश्चर्य क्या? मानववश-शास्त्रियोंका कथन है कि नयी बस्ती बसानेवालोंकी सख्या बड़े वेगसे बढ़ती

है। अिसी सिद्धान्तके अनुसार मथुरा-वृन्दावनके वानरोंकी वस्ती बढ़ी होगी। आज अयोध्यासे भी मथुरामें अुनकी वस्ती अधिक तरक्कीपर है।

अयोध्यामें मन्दिर और मूर्त्तियाँ तो कअी हैं, परन्तु राजमहलमें गोविन्द या विष्णुका जो मन्दिर है, अुसकी मूर्त्ति असाधारण है। यह मूर्त्ति है तो काले पत्थरकी, लेकिन अुसके काले रंगमें गहरे हरे रंगकी छटा है। अतः अुसकी शोभा और भी बढ़ गयी है। रसिक भक्तोंने श्रीकृष्णको श्यामसुन्दर मानकर कौनसा कला-विधान सिद्ध किया है, अिसकी कल्पना अिस मूर्त्तिके दर्शनसे स्पष्ट हो जाती है।

जब हम मन्दिर देखने गये थे, अुस वक्त दोपहरके कोअी ग्यारह-बारह बज रहे होंगे। मन्दिरके सेवक यानी ब्राह्मण आरतीके लिअे अेकत्र हुअे थे।

सत्यं ज्ञानमनन्तं नित्यमनाकाशं परमाकाशम्।

स्तोत्र बहुत ही मीठे, सुस्वर रागमें और मधुर आलापों सहित गाया जा रहा था। राजमहलके हरअेक विभागपर अुस विभागके नामकी तख्ती लगी हुअी है। ये सारे नाम संस्कृतमें लिखे गये हैं, अिस बातकी तरफ मेरा ध्यान गये बिना न रहा।

अयोध्यामें मुख्य दर्शन तो हनुमानगढ़ीके हनुमानजीका है। वहाँ यात्रियोंकी अधिक-से-अधिक भीड़ होती है। कोअी नारियल लेकर जाते हैं, तो कोअी पेड़े लेकर पहुँचते हैं। कोअी हनुमानजीको पंखेसे हवा करते हैं। बड़े पंखेकी रस्सीका छोर मन्दिरके बाहर रक्खा गया है। जिसे श्रद्धा हो, वह पंखा झले और धन्य हो! मैं अिसी अुधेड़बुनमें पड़ गया कि पवनकुमारके सिरपर पंखा झलना अुचित है या अनुचित? मरढेकर बाबाके साथ चर्चा करना असम्भव था, क्योंकि वे तो भक्तिसे मतवाले हो रहे थे। जब अुनका दिया हुआ भोग हनुमानजीको चढ़ाया गया, तब तो अुनके नेत्रोंसे धन्यताके आँसुओंका प्रवाह बहने लगा। वे तो धन्य हुअे ही, लेकिन अुनकी अुस भक्तिके दर्शनसे मैं भी धन्य हुआ!

गढ़ीसे नीचे अुतरकर हम रामजन्मका स्थान और अिसी प्रकारके अन्य रामायण-प्रसिद्ध स्थान देखने गये। मैंने वहाँ सुना कि ये सारे स्थान मुसलमान भाअियोंकी धर्मान्धताके शिकार हुअे थे। आज वे

स्थान अिस योग्य नहीं रहे कि अपनी प्राचीन दशाकी ज़रा-सी भी झॉकी दर्शकोंको करा सके ।

जिस प्रकार श्री भैरव काशीके कोतवाल है, अुसी प्रकार श्री मत्तगजेन्द्र अयोध्याके कोतवाल हैं। अिनकी कथा या माहात्म्य मुझे वहॉ सुननेको नहीं मिला। दर्शन समाप्त करके हम अेक ब्राह्मणके घर भोजन करने गये। पहले तो अुसके घरकी स्वच्छता देखकर ही हम अघा गये। घरके ऑगनमें अेक बालिश्त लम्बा और अेक बालिश्त चौड़ा अेक पत्थर पड़ा हुआ था। जिस समय हम वहॉ पहुँचे, अुस समय, यानी ठीक मध्याह्नमें, ब्राह्मणकी लड़की अुस पत्थरपर बैठकर दतौन कर रही थी। थोड़ी देरके बाद अेक बालकने पास ही प्रातर्विधि पूरी की। मॉने बच्चेको अुसी पत्थरपर बैठाकर धोया। और अुस पानीके सूखनेसे पहले ही अुस शिलाको धोकर अुसपर कैथेकी चटनी बॉटी। घरमें कपड़े और बरतनोंका चौपट राज था। चूल्हेसे धुऑ निकल रहा था, और ब्राह्मणके मुँहसे गालियॉ। आखिर अुसके यहॉ जितना खाया जा सका, खाया; जितनी अुचित जान पड़ी, अुतनी ही दक्षिणा दी, और हम अयोध्यासे रवाना हुअे।

अयोध्यामें सरकारी कचहरियाँ वग़ैरा कुछ नहीं है। क्योंकि नजदीकका फैजाबाद शहर जिलेका सदर मुक़ाम है। सब प्रतिष्ठित लोग वहीं रहते है। अयोध्याकी बस्ती तो खासकर यात्रियोंकी, और अुनपर गुज़र करनेवाले पण्डों और साधुओंकी बस्ती है। साधु भी विशेषकर नागा बाबा हैं। ये लोग जबरदस्त कर्मकाण्डी और स्वयंपाकी होते हैं। .खुद पकाकर खाते हैं, और सारा दिन चिलम पीते है। कमरमें लँगोटी और गलेमें काठकी बड़ी-बड़ी गुरियोंकी माला पहने रहते हैं। दिनभर रामजीकी बातें करते हैं, तुलसी-रामायणके दोहे और चौपाअियॉ बेसुरे रागमें गाते हैं, और जहॉ बैठते हैं, वहॉ शान्ति अेवं संगीतका तो .खून ही करते हैं। फिर भी अिन लोगोंकी कअी बातें सीखने योग्य हैं। ये बहुत साफ रहते हैं। आम तौरपर तन्दुरुस्त होते हैं। जहॉ जाते हैं, अेक छोटासा, कामचलाअू मन्दिर बना लेते हैं। लोगोंको अुपदेश करते हैं, और सॉझकी आरतीके समय तालबद्ध घण्टा बजाते हैं। साधारणतः ये लोग झगड़ालू नहीं होते, परन्तु जब कभी अिनपर झगड़नेकी धुन सवार हो जाती है, ये वग़ैर .खून

क्रिये नहीं मानते। ये लोग पुलिससे बहुत चिढ़ते हैं। दो पक्ष चाहे जितने लड़-झगड रहे हों, पुलिसके आते ही दोनों फौरन अेक हो जानेका स्वॉग रचते है। यह हिन्दुस्तानकी अेक अैसी पुरानी सस्था है, जिसका न तो हम अुपयोग ही कर सकते है, और न जिसे नअी चमक या 'ओप' ही दे पाते है।

गुजरातमें जो स्वामीनारायण सम्प्रदाय अितना फैला हुआ है, अुसके आद्य गुरु श्री सहजानन्द स्वामी अयोध्यासे ही गुजरात आये थे।

तीन वर्ष बाद मैं फिर अेक बार अयोध्या गया था। अुस बार भी मैंने पहले जितनी ही प्रसन्नताका अनुभव किया। मोक्षदायिका सप्तपुरियोंमे हमारे पूर्वजोंने अयोध्याको प्रथम स्थान दिया है।

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

९

अलमोड़ाकी ओर

रामकृष्ण परमहंसने कहा है—'जिसे मोक्षका रास्ता लेना हो, अुसे छोटी-छोटी फुटकर और निर्दोष वासनाओंकी तृप्ति कर लेनी चाहिअे। और बादमे बडी वासनाओंका सामना करनेके लिअे कमर कसकर तैयार हो जाना चाहिअे।' अेक दृष्टिसे हमने मोक्षके पंथपर पदार्पण किया था। हम दोनोंको सांसारिक प्रवृत्तियों और अुनकी विविध अुपाधियोंके प्रति घृणा अुत्पन्न हो गयी थी। परन्तु मेरे मनमें त्रिस्थलीकी यात्रा और रामकृष्ण-मिशनके पुण्यपुरुषों तथा पवित्र स्थानोंका दर्शन करनेकी लालसा रह गयी थी। मरढेकर बाबाको अयोध्या दर्शनकी साध लगी हुअी थी। अब वह तृप्त हो गयी। अतः हम दोनों बरसातके बाढके बादलोंकी तरह हल्के हो गये, और हिमालयकी तरफ चल पड़े। संकल्पपूर्त्तिसे गयाके श्राद्धके समान ही आनन्द होता है। अुस आनन्दको प्राप्तकर हम दोनोंने अयोध्यामे आखिरी रात मानो योगनिद्राके अनुभवमे बितायी। मनमें न कोअी

वासना अुठती थी, न कोअी विचार आता था, फिर स्वप्नमें भी वे क्यों आने लगे? सवेरे अुठते ही अैसा मालूम होने लगा, मानो हम कोअी बिलकुल नये आदमी बन गये हों! अबतक हम अिस दुनियाके साधारण मनुष्यों-जैसे मनुष्य ही थे। दूसरे तीर्थयात्रियोंकी तरह तीर्थयात्रा करते थे। पर अब हिमालयका चित्र कल्पनाके सामने तैरने लगा था।

ट्रेनमें बैठे। भीड़ गजबकी थी। लोगोंको जगहके लिअे लड़ते देख मैं मनमें कहने लगा — 'जरा सब्र करो भाअी! यह हमारी आखिरी यात्रा है। फिर हम भीड करने नहीं आयेंगे।' लेकिन लोगोंको मेरे मनोगत विचारोंका क्या पता? न जाने कितने लोग हर साल मेरी तरह अिस दुनियासे अिस्तीफा देकर वैराग्य खण्डमें चले जाते होंगे। बहती दुनियाको न तो अुसका कोअी हर्ष-विषाद है, और न अुससे कोअी लाभालाभ। परन्तु जानेवालेकी दृष्टिसे यह कितना गम्भीर काम होता है! जब बूढ़े टॉल्स्टॉय अन्तिम बार घर छोडकर निकले होंगे, तब अुनके मनमें क्या-क्या विचार न आये होंगे?

अुत्तर हिन्दुस्तानमें रेलको शुरू हुअे पौनसौ साल तो आसानीसे हो चुके होंगे। मगर अबतक लोग रेलके आदी नहीं हुअे। अिस डरसे कि कहीं रेलका 'टेम' न चूक जाय, लोग पाँच-पाँच, छह-छह घण्टे पहले स्टेशनपर आकर अुम्मीदवारी करते हैं। टिकटघरकी खिड़कीके पास अपना पहला नम्बर लगानेके लिअे लोग वहाँ सिपाहीको घूस देकर और आसपासके मुसाफिरोंको धक्के मारकर आगे जानेका हक खरीदते हैं। स्टेशनपर गाडी आनेके बाद जबतक अुतरनेवाले मुसाफिर अुतर न जायँ, तबतक तीसरे दरजेके मुसाफिरोंको स्टेशनके चबूतरेपर (प्लैटफॉर्मपर) जाने नहीं दिया जाता, यह बात अबतक अुनके ध्यानमें नहीं आती। तो फिर अुतरनेवाले और बैठने-वाले मुसाफिरोंके लिअे अिसमें कितना सुभीता है, यह खयाल अुन्हें कहाँसे आवे? अिसलिअे फाटक खुलनेसे पहले ही कठहरेपर चढ़कर प्लैटफॉर्मपर कूदनेका प्रयत्न कोअी न कोअी मुसाफिर बरजरूर करेगा। और, ट्रेनमें कुछ जबरदस्त लोग दिन-दहाडे पैर पसारकर बरजरूर सोयेंगे। बैठनेवाले लोग भरसक ज्यादा जगह रोकनेके लिअे पलथी मारे, अधिक-से-अधिक फैलकर बैठनेकी कोशिशमें, पैरोंकी नसोंसे खूब व्यायाम करायेंगे। डिब्बेका

दरवाज़ा अगर अन्दरकी तरफ खुलता हो, तो दरवाजेमें ही सामान रख देंगे, और रेलवे जितना कष्ट देती है, अुसे अपनी तरफसे यथासम्भव बढ़ानेकी कोशिश बड़ी लापरवाहीसे करते रहेंगे।

अैसी गाड़ीमें यात्रा करना अेक भारी तपस्या ही है। गाड़ीमे प्रवेश मिलनेसे पहले ही डार्विनके जीवन-कलहके अेक-अेक सिद्धान्तकी पुनरावृत्ति हो जाती है। परन्तु गाड़ी चलते ही प्रिन्स क्रोपाटकिनका राज्य शुरू हो जाता है। बादमे खड़े होनेवालोंको बैठनेकी जगह मिल जाती है; प्यासेको, अगर जात-पॉत अनुकूल हो, तो पानी भी मिल जाता है। पान-सुपारी, बीड़ी, और दोहोंका लाभ तो होता ही है। स्टेशन दूर हो, तो गपशप चलने लगती है। ज़्यादातर मेघराजकी अकृपा और कहतकी जानमारीकी बातें सुनाअी देती है। प्रसिद्ध डाकुओंके साहस-पराक्रमके किस्सोंमे सभीको मजा आता है। हमारे डिब्बेमें अेक शख्स मुरादाबादकी तरफके किसी डाकूका किस्सा सुना रहा था, और डाकुओंके प्रति समभाव रखते हुअे सब कोअी अुसे सुन रहे थे। डाकू यानी मनुष्य समाजके शत्रु। अुनके नामसे ही मनुष्य-मात्रको नफरत होती है, परन्तु फिर भी लोग डाकुओंके लिअे अितनी सहानुभूति कैसे रख सकते हैं, यही विचार अुस दिन मेरे मनमें आता रहा। ज्यों-ज्यों डाकू-पुराण आगे चलता गया, त्यों-त्यों मुझे अपने प्रश्नका अुत्तर मिलने लगा। डाकुओंमें भी खानदानियतके अंश होते हैं। शरीफ (!) डाकू गरीबोंको तग नहीं करते। स्त्रियोंको नहीं छेड़ते। अँधेरी रातमे कोअी स्त्री अकेली जाती हो, तो वीरोंकी परिपाटीके अनुसार अुसे पहुँचाने जाते हैं। मरीजोंको दवा-पानी देनेमें मदद करते हैं। सत्यनारायणकी कथा करनेवाले ब्राह्मणोंको मुक्त हस्तसे दक्षिणा देते हैं। और प्रजाको तग करनेवाले पुलिसवालोंसे सदा वैर रखते हैं। आम लोगोंका यह खयाल होता है कि डाकू अुन्हीं लोगोंको परेशान करते हैं, जो मुक़द्दमेबाज है, जालसाजी करते है, अकालमें भी रियायत नहीं देते, मनमाना ब्याज लगाकर खेत हड़प कर लेते हैं, और दुकालके समय तेज भावकी आशासे गल्ला बेचनेसे अिनकार करते हैं; अिसलिअे डाकुओंके प्रति लोगोंका कुछ सहानुभूतिशील होना स्वाभाविक है। जनता न्याय, कानून, नागरिकताके अधिकार और कर्त्तव्य आदि कुछ नहीं जानती। खुद

क़िस्मतोंसे कभी-कदास मिलनेवाले सुख और नित्य नसीब होनेवाले दुःखसे ही वह परिचित है।

डाकुओंके क़िस्से खतम होनेपर अेक बाबाने अपने पूर्वजन्मके कर्मका वेदान्त छाँटना शुरू किया। ससार असार है, काया झूठी है, माया झूठी है, अेक रामनाम ही सत्य है (और सत्य है बाबा-बैरागियोंको दी जानेवाली रोटी और लँगोटी।), बाकी सब मायाका जजाल है। जैसा अुस जन्ममें किया होगा, वैसा अिस जन्ममें भुगतना होगा, अुसमे हमारा कोअी वश नहीं चल सकता — यह अुनके वेदान्तका सार था। मैं भी साधु होने जा रहा था। मनमें सोचने लगा — "क्या मैं अिन्हीं लोगोंकी बिरादरीमें मिलने जा रहा हूँ? अिस प्रकारके वेदान्तसे क्या मुझे मोक्ष मिलनेवाला है या हिन्दुस्तानको स्वराज्य मिल सकता है?"

अितनेमें बरेली स्टेशन आया। यहाँ हमें कुछ घण्टोंतक काठगोदामकी गाड़ीका अिन्तज़ार करना था। अिस स्टेशनपर मुसाफिरोंके भोलेपनका अेक अजीब नमूना देखा। अेक बूढ़ा गाजियाबादकी तरफ जाना चाहता था। अुसकी स्त्री और दो लड़के अुसे पहुँचानेके लिअे स्टेशन तक आये थे। हलवाअीके चीथडे-जैसी मैली-कुचैली धोतीका कछ लगाये अेक नौकर भी साथ था। बूढ़ेने स्टेशनपर अपनी अेक चौकोन दोहर बिछादी थी। अुसपर दो-चार धोतियाँ, अेक मिरज़अी, अेक लोटा, बिछाने-ओढ़नेके दो-चार कपड़े, अेक पानदान, आदि कअी चीजोंका ढेर लगा दिया था। बादमें दोहरके आमने-सामनेके छोर मिलाकर गाँठ लगाअी। दूसरे दो छोर किसी तरह हाथमें नहीं आते थे। आखिर नौकरकी मददसे अुन दोनों हठीले छोरोंका किसी तरह गठबन्धन किया और पोटलीको गोल आकार प्राप्त हुआ। अिस प्रकारकी पोटली देखकर ही शायद कुछ पुराणोंमें पृथ्वीको चौकोन कहा गया हो। अिस सर्व-सग्रह पोटलीपर ध्वज या पताकाके तौरपर बूढ़ेने अेक कोनेमें अपना प्रौढ़ हुक्का खोंस दिया। पोटलीमें हुक्का तो मौन लेकर ही बैठा था, लेकिन अुसका रोब देखकर यह स्पष्ट मालूम होता था कि जब वह बोलता होगा, तब अच्छे-अच्छे हुक्का-बहादुरोंके हृदय हिलानेकी वाचासिद्धिका परिचय देता होगा। थोड़ी देरमें बूढ़ेकी गाड़ी आअी। गठड़ी सिरपर रखकर वह अेक डिब्बेकी तरफ दौड़ा। गार्डके

१०

नगाधिराज

विदेशमे रहनेवाले मनुष्य-मात्रमें अपनी जन्मभूमिका स्मरण, जन्मभूमिका विरह और वापस जन्मभूमिमे पहुँच जानेकी अिच्छा हमेशा जाग्रत ही रहती है। बाबरको हिन्दुस्तानकी जबरदस्त शाहशाहत मिली और अमृत-सा मीठा आम खानेको मिला, फिर भी अुसे मध्य अेशियाके अपने तरबूजोंकी याद बार-बार आया करती थी। साथ ही, अुसकी यह अिच्छा भी रही कि चाहे जीते जी अपनी जन्मभूमिके दर्शन करना अुसके भाग्यमें न हो, फिर भी आखिर अुसकी हड्डियाँ तो अुस जन्मभूमिमें ही गिरनी चाहिअे। हिन्दुस्तानमें आकर नवाबी ठाठसे रहनेवाले अंग्रेजको भी तबतक चैन नहीं पड़ता, जबतक छह महीनोंकी छुट्टी लेकर वह स्वदेश नहीं हो आता। कुछ अिसी तरहकी अुत्कण्ठा हिमालयके प्रति हिन्दुओंके मनमें रहती है। अितिहास-लेखक आर्योंके मूलस्थानके रूपमें अुत्तर ध्रुवकी कल्पना चाहे करें, और भाषा-शास्त्री अिसका गौरव मध्य-अेशियाको चाहे दें, और देशाभिमानी लोग चाहे हिन्दुस्तानको ही आर्योंकी आद्यभूमि सिद्ध करें, तो भी अगर राष्ट्रके हृदयमे विराजी हुअी प्रेरणाका अपना कोअी अैतिहासिक महत्त्व है, तो हिमालय ही हम आर्योंका आद्यस्थान है। राजा हो या रंक, बूढ़ा हो या जवान, पुरुष हो या स्त्री, हरअेक यह अनुभव करता है कि जीवनमें अधिक नहीं, तो कम-से-कम अेक बार तो हिमालयके दर्शन अवश्य ही किये जायँ, हिमालयका अमृत-सा जल पिया जाय, और हिमालयकी किसी विशाल शिलापर बैठकर क्षणभर अीश्वरका ध्यान किया जाय। जब जीवनके सभी करने लायक काम किये जा चुकें, अिन्द्रियोंकी सब शक्तियाँ क्षीण हो जायँ, जीर्ण देह और शेष आयुष्य भार-रूप लगने लगे, तब अिस दुनिया-रूपी पराये घरमें पड़े न रहकर अपने घरमे पहुँचकर मरना ही ठीक है। अिस अुद्देश्यसे कअी हिन्दू अन्न-जलका त्याग करके देहपात होनेतक हिमालयसे अीशान्य दिशाकी ओर बराबर बढ़ते ही चले जाते हैं। हमारे

शास्त्रकार यही मार्ग लिख गये हैं। किसी राजाका राज-पाट गया नहीं, कि वह हिमालयमें पहुँचा नहीं। भर्तृहरी-जैसोंको कितना ही वैराग्य क्यों न अुत्पन्न हुआ हो, फिर भी हिमालयके विषयमें अुनका अनुराग अणुमात्र भी कम न होगा। अुल्टे, वह अधिकाधिक बढ़ता ही जायगा। किसी व्यापारीका दिवाला निकलनेकी घडी आ पहुँचे, किसी सौदागरका सब-कुछ समुद्रमें डूब जाय, किसीकी स्त्री कुलटा निकले, किसीको सन्तान या प्रजा गुमराह हो जाय, बागी हो जाय, किसीके सिर कोअी सामाजिक या राजनीतिक संकट आ पडे, किसीको अपने अधःपतनके कारण समाजमें मुँह दिखाना भारी हो जाय, — हालत कैसी भी क्यों न हो — आस्तिक हिन्दू कभी आत्महत्या न करेगा। हिन्दुओंके मनमें परम दयालु महादेवके प्रति जितनी श्रद्धा है, अुतनी ही श्रद्धा हिमालयके प्रति भी है। पशुपतिनाथकी तरह हिमालय भी अशरण-शरण है। चन्द्रगुप्तने राष्ट्रोद्धारका चिन्तन हिमालयमें जाकर ही किया था। समर्थ रामदास स्वामीको भी राष्ट्रोद्धारकी शक्ति हिमालयमें ही बजरंगबली रामदूतसे प्राप्त हुअी थी। यदि पृथ्वीकी सतहपर अैसी कोअी जगह है, जहाँ हिन्दू धर्मका रहस्य अनायास प्रकट होता हो, तो वह हिमालय ही है। श्री वेदव्यासने अपना ग्रंथसागर हिमालयकी ही गोदमें बैठकर रचा था। श्रीमत् शंकराचार्यने अपनी विश्वविख्यात प्रस्थानत्रयी हिमालयमें ही लिखी थी। और स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थने भी हिमालयमें ही अिस बातका विचार किया था कि सनातन धर्मके तत्त्व आधुनिक युगपर किस तरह घटाये जायँ।* हिमालय — आर्योंका यह आद्यस्थान, तपस्वियोंकी यह तपोभूमि — पुरुषार्थी लोगोंके लिअे चिन्तनका अेकान्त स्थान, थके-माँदोंका विश्रामस्थल, निराश बने हुओंका सान्त्वना-धाम, धर्मका पीहर, मुमुक्षुओंकी अन्तिम दिशा, साधकोंका ममियौरा, महादेवका धाम और अवधूतकी शय्या है। मनुष्योंका तो ठीक, पशु-पक्षियोंको भी हिमालयका अपूर्व आधार है। अुसी सागरसे मिलनेवाली अनेक नदियोंका वह पिता है। अुसी सागरसे अुत्पन्न बादलोंका वह तीर्थस्थान है। कविकुल-गुरुने

* यहाँ अिस बातका स्मरण हुअे बिना नहीं रहता कि गांधीजीने गीताका अपना अनुवाद — अनासक्तियोग — भी हिमालयमें ही पूरा किया था।

'देवतात्मा नगाधिराज'को पृथ्वीका मानदण्ड जो कहा है, सो अनेक अर्थोंमें यथार्थ है। हिमालय भूलोकका स्वर्ग और यक्ष-किन्नरकी निवास-भूमि है। वह अितना विशाल है कि अुसमें संसारके सभी दुःख समा सकते हैं; अितना शीतल है कि सब प्रकारकी चिन्ता-रूपी अग्निको वह शान्त कर सकता है; अितना धनाढ्य है कि कुबेरको भी आश्रय दे सकता है; और अितना अूँचा है कि मोक्षकी सीढ़ी बन सकता है। हम ठेठ अपने बचपनसे हिमालयका नाम सुनते रहते हैं। बालकथा, बालगीत, प्रवास या यात्रा-वर्णन, अितिहास या पुराण, कहीं भी क्यों न देखें, सर्वत्र अन्तिम आश्रय तो हिमालयका ही मिलेगा। बचपनसे जो आदर्श, रमणीय स्थान कल्पना-सृष्टिमें प्रत्यक्ष हुआ होगा, अुसकी कल्पना हिमालयसे ही आअी होगी।

अरे, अिस हिमालयने क्या-क्या नहीं देखा? पृथ्वीके असंख्य भूकम्पों और आकाशके हजारों धूमकेतुओंको अुसने अपलक भावसे देखा है। महादेवके विवाह अुसीने करवाये हैं। सतीके विहारका और कुमार-सम्भवका कौतुक अुसीने अपत्यवात्सल्यपूर्वक किया है। भगीरथ तककी रघुकुलकी अनेक पीढ़ियोंकी कठिन तपस्याओंका वह साक्षी है। पाण्डवोंकी महायात्रा अुसीने सफल की है। लेकिन ये पुरानी बातें क्यों दोहराअी जायँ? सन सत्तावनके पराक्रममें पराजित होनेके कारण जो वीर और मुत्सद्दी हताश और निराश हो गये थे, अुन्हें आश्रय देनेवाला हिमालय ही है। यदि भूस्तर-शास्त्रकी दृष्टिसे देखना हो, प्राणिशास्त्रकी दृष्टिसे विचार करना हो, अैतिहासिक दृष्टिसे शोध करनी हो, सभ्यताके दर्शन करने हों, धर्मतत्त्वोंकी गाँठ सुलझानेका प्रयत्न करना हो, तो हिमालय ही वह जगह है, जहाँ सब प्रकारसे आपका समाधान हो सकता है; क्योंकि हिमालय आर्यावर्त्तके अेक-अेक युगके पुरुषार्थोंका साक्षी रहा है—वह यह सब जानता है।

यह कहना कठिन है कि हिमालय जानेकी पहली अिच्छा मेरे हृदयमें कब पैदा हुअी। शायद मेरे जन्मके साथ ही वह भी जन्मी होगी। जैसा कि अूपर कह चुका हूँ, बहुत सम्भव है कि वह वंश-परम्परागत राष्ट्रीय भावना रही हो। जब यात्राका विचार करते हैं, तो

मनमें यह खयाल पैदा होता है कि हम अपना घर छोड़कर परदेश जा रहे हैं। पर जब-जब भी मैंने हिमालय जानेका विचार किया है, तब-तब मेरे मनमें यही भावना प्रबल रूपसे अुठी है कि मैं स्वदेश जानेवाला हूँ, नहीं-नहीं, स्वगृह जानेवाला हूँ, और अिस विचारने मेरे मनको हमेशा गुदगुदाया है। आज भी जब कोअी हिमालयकी बात छेडता है, तो मुझे अुतनाही आनन्द होता है, जितना ससुरालमें रहनेवाली बहूको मायकेकी बात सुनकर हुआ करता है। लडकी जब मायकेसे दूर जा पडती है, तो वह दिन-रात अपने मायकेको और मायकेवालोंको ही विसूरा करती है। अिस विसूरनेका नतीजा यह होता है कि मायकेका प्रत्यक्ष चित्र अेक ओर रह जाता है, और वह अपने मनमें अेक प्रेम-चित्रका निर्माण कर लेती है। अुसके अपने लिअे यह प्रेम-चित्र ही अेक यथार्थ वस्तु बन जाती है। विसूरनेका, चिन्तनका, गुण ही यह है कि दिल जिस चीज़को जैसी देखना चाहता है, दिलकी भावना कुछ अैसी बनती जाती है कि वह चीज वैसी ही मालूम होने लगती है। दुनियामें किसीको यथार्थ—यथातथ—ज्ञान होता हो, तो भले हो; पर जिसे हम अनुभवका प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं, अुसपर भी हमारी अिन्द्रियोंका रंग चढ़ा ही रहता है, वह निरा ज्ञान नहीं होता। प्रेम-चित्रमें रंग अिन्द्रियोंका नहीं, हृदयका होता है, आदर्श भावनाओंका होता है। और, अिसी कारण वह चित्र हमारे जीको विशेष निकटका और विशेष रूपसे सच्चा प्रतीत होता है। तर्कवादी चाहे अिस चित्रको खोटा मानें, पर संसारका अनुभव और संसारका रहस्य सभी कुछ तर्ककी छलनीमें चाला नहीं जा सकता। तर्क सोचता है कि मैंने जो व्यवस्था बाँध दी है, जो क्रम तय कर दिया है, दुनियाको वह मानना ही चाहिअे, जो मेरे गले नहीं अुतरता वह सत्य हो ही नहीं सकता। अस्तु।

आगे हिमालयके जो शब्द-चित्र मैं देनेवाला हूँ, वे प्रेम-चित्र ही होंगे। जिस वस्तुसे प्रेम हो जाता है, अुस वस्तुका प्रेम-रहित विचार हो ही नहीं सकता। अिसलिअे मुझसे प्रेम-चित्र छोड़ दूसरी किसी चीजकी अपेक्षा कोअी रखे ही क्यों?

भीमताल

हिमालयके पाँच विभाग माने गये है। काश्मीर, जालन्धर, गढ़वाल (अुत्तराखण्ड), कूमाअूँ (कूर्माचल), और नेपाल। अुत्तराखण्ड परम पवित्र समझा जाता है। गंगोत्री, जमनोत्री, केदारनाथ, बदरीनारायण, पंचप्रयाग, और पाँच केदारनाथ, अुत्तर काशी, ज्योतिर्मठ तथा तुंगनाथ, अित्यादि प्रख्यात तीर्थस्थान अिसी विभागमें है। सन्त-महन्त अिसी विभागको तपस्याके लिअे पसन्द करते थे। परन्तु कहा जाता है कि यात्राके मार्ग और साधन सुगम हो जानेसे आजकल वहाँ तीर्थयात्री बहुत जाते है। अिसलिअे अच्छे-अच्छे साधु प्रायः अुत्तराखण्डको छोड़कर चले गये हैं। वे ज़्यादातर अप्रकट रूपसे कुमाअूँमे रहते है। कुमाअूँ प्रान्त रमणीय और अुपजाअू है। अिसी प्रान्तमें स्वामी विवेकानन्दका मायावती मठ बना हुआ है।

मायावती अलमोडासे कोअी पचास मील दूर होगा। प्रवृत्तिमें डूबे हुअे हमारे-जैसे लोगोंको चौबीसों घण्टोंकी निवृत्ति मिले, तो अुसे भी हम पचा नहीं सकते। शायद अिसी अुद्देश्यसे स्वामी विवेकानन्दने मायावतीमें अेक छापाखाना चलाया, और वहाँसे हिन्दुस्तानको जगानेके लिअे अथवा जागे हुअे हिन्दुस्तानका सँदेशा दुनियाको सुनानेके लिअे, वे मद्रासमे निकलनेवाली 'प्रबुद्ध भारत' नामक मासिक पत्रिकाको मायावती ले गये। वहाँ वे आध्यात्मिक पाठशाला स्थापित करना चाहते थे। अलमोड़ा जानेके लिअे रेलसे काठगोदाम तक जाना पड़ता है। वहाँसे अलमोड़ा सैंतीस मील है।

बरेली जंक्शन तक खचाखच भीड़ थी। बादमें भीड़ छँटने लगी। हल्द्वानी स्टेशनपर कुछ मुसाफिर अुतर गये। काठगोदाम स्टेशन 'टर्मिनस' है। वहाँ पहुँचते तक तो बहुत ही थोड़े आदमी रह गये थे। अिसलिअे कुछ अुदासी-सी मालूम होती थी। न जाने क्यों मुझे 'बरियल ऑव् सर जॉन मूर' नामक कविताकी सहसा याद आयी। मैंने कहा — "बाबा, स्वर्गारोहणके समय पाण्डवोंके दिलमें भी अिसी तरहके भाव अुठे होंगे। भीड़ तो पीछे

रह गयी; और हम अकेले हिमालयपर चढ़ रहे हैं।" पाण्डव ही क्यों, हरअेक जीवके लिअे यही बात लागू है। स्नेहियोंका समूह और अिन्द्रिय-कलाप अेकके बाद अेक छोड़ते चले जाते हैं, और आखिर धर्म-कर्मको साथ लेकर ही मनुष्य यम-घाट चढ़ता है।

परन्तु यह अुदासी क्षणजीवी थी। हम कोअी मील-डेढ़-मील ही गये होंगे कि हिमालयका असर मालूम होने लगा। पास ही रामगंगा बह रही थी। रामगंगाने कहा — "बच्चा, तू अपने दुनियावी विचारोंसे रुखसत ले ले। यहाँ अनगिनत पेड़ अुगते हैं, सूखते हैं, और सड़ जाते हैं। बहुतसे पत्थर बनते हैं, और फूट जाते हैं। पहाड़ियाँ ढह जाती है, और गाँव घाटियोंमें समा जाते हैं। लेकिन यहाँ न कोअी हँसता है, न रोता है। यहाँ अिफरात है, अुडाअूपन है, बेफिक्री है। यहाँ जो पछतावा या चिन्ता करता है, वह पापी है।"

रामगंगा अैसा अुपदेश न करती, तो भी मेरी अुदासी काफूर हो गअी होती। क्योंकि आस-पासके पेड़ोंपर वनस्पतियोंके असंख्य बालक खिल रहे थे। अुनकी सुगन्ध अुन्मादकारी थी, पर विलास-प्रेरक न थी। हम आगे बढ़े। पहाड़ चढ़ने लगे। ज्यों-ज्यों अूपर जाते, त्यों-त्यों पहाड़की शोभा और प्रकृतिकी भव्यता बढ़ती ही जाती थी। छोटे बच्चे जब समुद्रके किनारे जाते हैं, तो चाँदीकी-सी सीपें देखकर सबकी सब सीपें जेबमें भर लेनेको अुनका जी ललचा अुठता है। लेकिन अेकाध घण्टा घूमनेके बाद असंख्य सीपें देखकर वे अघा जाते हैं, और जेबोंमें भरी हुअी सारी सीपें निकाल कर फेंक देते हैं। बहुत हुआ तो यादगारके लिअे अेकाध सीप रख लेते हैं। पाँच मीलकी चढ़ाअीके बाद अेक बहुत ही सुन्दर पहाड़ आया। अुसके टूटे हुअे अंचलमें रंग-बिरंगे पत्थरोंके अैसे मजेदार स्तर थे, और हमारा रास्ता अितना टेढ़ा-मेढ़ा था (जिससे पहाड़के सभी पहलुओंकी सुन्दरता हम देख सकते थे) कि जी चाहने लगा — कहीं अिस पहाड़को महाराष्ट्रमें ले जा सकता, तो कितना अच्छा होता? दूसरे ही क्षण मनमें विचार आया, क्या कोअी राजा अपने ही महलकी सुन्दर लगनेवाली कोअी चीज अेक कमरेसे दूसरे कमरेमें कभी ले जाता है? सभी कमरे राजाके ही है। और जो चीज़ जहाँ नियोजित है, वहीं यथायोग्य

है। यदि महाराष्ट्रके लोग अिस सुन्दरताका अनुभव करना चाहें, तो अुन्हें यहाँ आना चाहिअे। हम लोग पैसा कमानेके लिअे या अिसी तरहके दूसरे सांसारिक हेतुसे थोड़ा-बहुत स्थलान्तर करते हैं। सृष्टिकी शोभा देखनेके लिअे अथवा देव-दर्शनोंके लिअे बाहर नहीं निकलते। हमें वह स्वच्छन्द-सा मालूम होता है। क्या देव-दर्शन करना हमारा कर्त्तव्य नहीं है? हमारे जिन ऋषि-मुनियोंने चार धामोंकी यात्राको पुण्यकी परिसीमा कहा, वे सच्चे देशभक्त थे। आज हम लोगोंमें देशाभिमान है, पर देशभक्ति बहुत कम है। अुन्मदभावसे मैंने कहा — 'पहाड़ भैया! तुम यहीं सुखसे रहो! मैं तुम्हें खिसकाअूँगा नहीं, बल्कि अपने महाराष्ट्रीय भाअियोंको ही यहाँ भेजूँगा। वे जब आयें, तो तुम अपने अमृत-जलसे और सुगन्धित पवनसे अुनका अिसी तरह सत्कार करना! यह लो, मेरे प्रणाम!"

हिमालयके पहाड़ बहुत ही विचित्र हैं। सामने अेक गगनस्पर्शी पर्वत दिखाअी देता है, और अैसा जान पड़ता है कि अुसके अूपर पहुँचनेके बाद वहाँसे नीचे अुतरना पड़ेगा। लगभग अूपर पहुँचनेतक यही धारणा रहती है। लेकिन अूपर पहुँचते ही क्या देखते हैं? हम अपनेको दूसरे अेक प्रचण्ड पहाड़की तलहटीमें पाते हैं। हरे राम! अब अिस पहाड़पर भी चढ़ना होगा। अगर ज्यादा थक नहीं गये हैं, तो दूसरे ही क्षण विचार आता है कि खैर, अधिक अूँचे जायँगे, तो अधिक दूरतक देख सकेंगे; प्रकृतिकी विशालता दृष्टिगोचर होगी, और अगर आज ही हमारे भाग खुले, तो शायद बर्फके दर्शन भी हो जायँ! माथेपर हिमका किरीट धारण करके वानप्रस्थ दशामें ध्यान करने बैठे हुअे नगाधिराजके दर्शन करनेकी लालसा अब दुर्निवार हो गयी थी। लेकिन अुस दिन बर्फके दर्शन करना हमारे भागमें बदा न था। ज्यों-त्यों अभी दूसरे पहाड़पर चढ़े ही थे कि तीसरा हाजिर! अब तो हमारा धैर्य छूट गया। क्या हरअेक पहाड़ अिस स्वर्गारोहणकी अेक-अेक सीढ़ी बनेगा? धूप तपने लगी; हम भी तप गये, और प्रकृतिने रुद्रावतार धारण किया। आखिर हम भीमताल आ पहुँचे।

मैंने सचमुचके या कल्पनाके सुन्दर-सुन्दर सरोवर देखे ही न हों, सो बात नहीं। सर वॉल्टर स्कॉटकी 'सरोविहारिणी' (लेडी ऑव् दि लेक)ने

तो अेक सुन्दर सरोवरका हृदयस्पर्शी शब्दचित्र भी देखा था। परन्तु भीमतालका प्रत्यक्ष दर्शन कुछ और ही था। अिस प्रदेशका प्राचीन नाम 'षष्टिखात' है; क्योंकि आसपास छोटे-बड़े साठ सरोवर है। अुनमें भीमताल और नैनीताल ये दो ही सुविख्यात हैं। और अिन दोमें भी नैनीतालकी छवि न्यारी ही है। नैनीताल भीमतालसे कोअी बारह-पन्द्रह मील दूर है। अब वह अेक यूरोपियन शहर बन गया है। अुसका वर्णन यथास्थान आयेगा। भीमताल अेक बहुत अूँचे पर्वतकी समतल भूमिपर तीन पहाड़ोंके बीच बने हुअे अेक गड्ढेके कारण बना है। अिसलिअे वह बहुत गहरा है। पानी स्फटिककी तरह निर्मल है। सरोवरका आकार अेक आड़े-टेढ़े त्रिकोणके समान है। और अिस सरोवरके सौन्दर्यकी पूर्ति करनेके लिअे अिसके बीचोंबीच प्रकृतिने अेक छोटा-सा द्वीप बना दिया है। वहाँ पहुँचते ही हमें अितनी ठण्डी हवा लगी कि अेक क्षणमें हमारा सारा ताप और थकान दोनों अुतर गये। सरोवरका किनारा कुछ अूबड़-खाबड़-सा था। किनारेपर जहाँ-तहाँ पत्थर बिछे हुअे थे; और अुसे सीधे पार करके पानीतक पहुँचना आसान न था। फिर भी किसकी हिम्मत थी कि वह अितना सुन्दर पानी छोड़ दे? मैं साहस करके अुतरा और पानीमें जा गिरा! अररर! यह पानी है, या हजारों बिच्छुओंका समूह? मुझे अैसा मालूम हुआ मानो मेरे दुबले-पतले शरीरकी परिधि भी पानीकी ठण्डकसे सिकुड़कर दो-तीन अिंच कम हो गयी हो! जान बचानेके लिअे मैंने जोरसे हाथ-पैर मारे। बादके आनन्दका मैं क्या वर्णन करूँ? किनारेपर बैठे हुअे बाबा झल्लाये न होते, तो मुझे वापस किनारेपर आनेकी बात सूझती भी नहीं। मैं सोचने लगा—'क्या बाणभट्ट द्वारा वर्णित अच्छोद सरोवर अैसा ही रहा होगा? मैं कादम्बरीमय हो गया। सामनेवाले द्वीपके पीछेसे नौकाविहार करती हुअी कादम्बरी या महाश्वेता अभी निकलेगी—अिस तरहकी कल्पना-तरंगमें मैं मग्न ही था कि अितनेमें सचमुच पीछेसे अेक श्वेत नौका आयी। लेकिन हाय रे हाय!—गया; मेरा सारा काव्य काफूर हो गया! बोटमें तो हाथमें मछली पकड़नेकी बन्सी लिये हुअे दो सोल्जर बैठे थे! अगर मैं वाल्मीकि होता, तो अुन झख मारनेवाले (झख=झष=मछली—रामचरित मानस) अरसिक गोरोंको शाप देता।

जब काव्य-गगनसे अुतरा, तो पता चला कि पेटमें चूहे अुछल-कूद मचा रहे हैं। पेटभर खाया; आँखभर सो लिया; हाथ-पैर भरकर थकावट अुतारी, रामसिंहको जगाया, सामान अुसके सिरपर चढ़ाया और रामगढ़के लिअे प्रस्थान किया। अिस प्रकार आधे दिनमें हिमालयकी चौदह मीलकी यात्रा पूरी हुअी।

१२

हिमालयकी पहली सिखावन

भीमतालसे आगे चले। रास्ता समतल था। दूर बायीं तरफ अेक-कतारमें रावटियाँ दिखाअी देती थीं। दरियाफ्त करनेपर मालूम हुआ कि वहाँ बीमार सिपाही रहते हैं। आखिर पहाड़की चोटीपर पहुँचे। अपार आनन्द हुआ; और चिर-परिचित समतल भूमि पाकर हम तेज़ीसे चलने लगे।

परन्तु हिमालयने तो मानो अेक ही दिनमें सारे सबक सिखानेकी ठान ली थी। अुसने फिर हमारे अभिमानपर आघात किया। अरेबियन नाअिट्समें अथवा पंचतंत्रमें जिस प्रकार अेक कहानीमेंसे दूसरी नयी कहानी निकल पड़ती है, अुसी प्रकार अिस पर्वत-शिखरपर चौड़ा होकर बैठा हुआ अेक नया पहाड़ आ धमका। चार मजदूरोंके कन्धोंपर आरामकुर्सीमें बैठे हुअे किसी अमीरके जैसी गम्भीर भव्यतासे और अपनी महत्ताके परिपूर्ण भानका परिचय देनेवाली स्वाभाविकतासे यह पर्वत विराजमान था। अगर यह खड़ा होता तो? तो मेरे खयालमें आकाशका चँदोवा फट ही जाता।

हमें अिस बड़े भारी पहाड़पर चढ़ना था। अिसलिअे हमने अपने पासके सामान-असबाबका सारा बोझ मजदूरोंको दे दिया, अभिमानका बोझ तलहटीमें ही छोड़ दिया, और बादलोंकी तरह बिलकुल हलके होकर हम चढ़ने लगे। चढ़ते-चढ़ते ठेठ साँझतक चढ़ते ही चले गये।

रास्तेमें अेक तरहके फूल खिल रहे थे। अुनका आकार बारहमासीके फूलों जैसा था, और रंग खूब अुबाले हुअे दूधकी मलाअीकी तरह कुछ पीला। सुगन्धकी मधुरताकी तो बात ही क्या? सुगन्ध गुलाबमें मिलनी

जुलती, पर गुलाबके समान अुग्र नहीं। अिन लज्जा-विनय-सम्पन्न फूलोंको देखकर मैं प्रसन्न हुआ। मेरा अध्वखेद नष्ट हो गया। अैसे सुन्दर और आतिथ्यशील फूलोंका नाम जाने बिना मुझसे कैसे रहा जाता? लेकिन रास्तेमें कोअी आदमी ही न मिलता था। मज़दूर तो अपने मजदूर-धर्मसे वफादार रहकर पिछड़ गया था। अुसकी बाट जोहनेके लिअे समय न था। और नाम जाने बिना आगे बढ़नेकी अिच्छा न थी। अितनेमें पहाड़की अेक पगडण्डीपरसे कोअी पहाड़ी अुतरता हुआ दिखाअी दिया। हिमालयकी पगडण्डियाँ अितनी विकट हैं कि आदमी की कमर ही तोड़ दे। अुस पहाड़ीसे मैंने हिन्दीमें — या सच पूछिये तो अुस समय जिसे मैं हिन्दी समझता था, अुस भाषामें — अुन फूलोंके विषयमें कअी प्रश्न पूछे। अुसने पहाड़ी हिन्दीमें जवाब दिया। परन्तु मुझे विश्वास नहीं कि वह मेरे प्रश्नोंको समझ सका होगा। मैं तो अुसके जवाबका अेक ब्रह्माक्षर न समझ सका। किन्तु अिस सम्भाषणसे (मैं नहीं जानता, अिसे सम्भाषण कह सकते हैं या नहीं) फूलका नाम तो मुझे मिल ही गया। असीरियाकी शरशीर्ष लिपिमें लिखे हुअे शिलालेख पढ़कर कोअी विद्वान अुनका अर्थ लगानेके लिअे जितना प्रयास कर सकता है, अुतनेही प्रयाससे मैंने पता लगाया कि फूलका नाम 'कूजा' था। मालूम पड़ता है, पहाड़ी भाषामें यह शब्द बहुत सुललित समझा जाता होगा, लेकिन खुद मुझे अुस नामने बिलकुल मोहित नहीं किया।

दूर, बहुत दूर, अब क्षितिज दिखाअी देने लगा। वहाँ बहुत घने बादल थे। बादलोंपर संगमरमरके पर्वत-शिखर-जैसा कुछ दिखाअी देता था। तलहटीका हिस्सा बादलोंसे ढँक जानेके कारण अैसा जान पड़ता था, मानों मैनाक पर्वतका अेक बच्चा आकाशमें अुड़ रहा हो। दूसरे दिन मुझे पता चला कि वह पवित्र नन्दादेवीका शिखर था।

कुछ अुतरकर हम रामगढ़ आ पहुँचे। वहाँ अेक छोटी-सी धर्मशाला थी। अथवा धर्मशाला कैसी? पाँच फुट अूँचे कमरोंकी वह अेक अैसी क़तार थी, जिनमें अेक-अेक छोटे दरवाजेके सिवा किसी जगह छिद्र नामकी कोअी चीज नजर नहीं आती थी! गधे भी अुनमें लोटनेको राजी न होते। बनियेसे दाल, चावल और आलू खरीद लिये। बनियेने

दौर्बल्यको! मनके अुद्वेगको त्याग दे!" मेरी यह अश्रद्धा कि हिमालयमें भी वैराग्य नहीं है, गायब हो गयी। बाह्यसृष्टि और अन्तःसृष्टिमे तादात्म्य हो गया और मुझे शान्ति मिली। मैं आसानीसे सो गया।

सवेरे अुठकर आगे चले। आज तो अुतरना था। जितना चढ़े थे अुतना ही अुतरना पड़ा। रोमके लोगोंको अपना महासाम्राज्य गँवाते समय भी अितना दुःख न हुआ होगा। कितनी मुश्किलसे चढ़े थे। लेकिन फिर भी आखिर अुतरना पडा। हिमालयमें चलनेका अेक नया अनुभव हुआ। अूपर चढ़ते समय थकावट तो होती है, लेकिन वह क्षणिक होती है। पर सीधे अुतार परसे अुतरते वक़्त जो कष्ट होता है, अुससे आदमीकी हड्डी-पसली नरम हो जाती है। अैसे अुतारका अनुभव होते ही मैं बोल अुठा — "स्वर्गतक चढ़ना पड़े तो वह बेहतर है, लेकिन हे विधाता, अैसे अुतारोंपरसे अुतरनेकी सजा तो कदापि मेरे 'शिरसि मा लिख, मा लिख, मा लिख'!"

यहाँका यह प्रदेश भी बहुत ही रमणीय था। हमारे यहाँके सरोके पेड़ोंके समान चीड़ और देवदारके भव्य वृक्षोंकी झाडियाँ अनुपम छायाका विस्तार करती थीं। लेकिन सच्चा मजा तो तब आता था, जब नीचे गिरकर सूखे हुअे सलाअियों जैसे पत्तोंपरसे पैर फिसलते थे। अुस वक़्त यही समझमें न आता था कि हँसें या रोयें।

अिस प्रदेशमे थोडी-सी खेती भी होती हुअी मालूम पड़ी। क्योंकि रास्तेमे अेक छोटा-सा पहाडी गाँव आया। वहाँ दो-चार किसान नया अनाज पछोर रहे थे। हवाका नाम भी न था, अिसलिअे दो आदमी अेक चादरसे हवा झल रहे थे।

रास्तेमे चीड़के बडे-बडे फूल बिखरे हुअे दिखाअी दिये। अिन फूलोंका वर्णन करना असम्भव है। ये फूल नारियलसे भी बड़े होते हैं। अिनकी पँखुड़ियाँ बबूलकी लकड़ीसे भी सख्त होती हैं। फिर भी यह फूल आकारमे बहुत ही सुन्दर होता है। अैसा लगता है, मानो हरअेक डण्ठलके माथेमेंसे अँगुलीके बराबर असंख्य पँखुडियोंका अेक फव्वारा ही फूट पड़ा हो। लेकिन रंग या सुगन्धका तो नाम ही न लीजिये। लकडीका ही रंग और लकड़ीकी ही

वास । देवदार और चीड़-जैसे वृक्ष हिमालयको ही शोभा देते हैं। प्रकृतिका विशाल वैभव देखकर मैं दिङ्मूढ़ हो गया, और गाने लगा—

रामा दयाघना, क्षमा करुनि मज पाहीं,
रामा दयाघना०
कोठिल कोण मी, न जाणिला हा पत्ता
आजवरि अज्ञानें, मिरविली विद्वत्ता,
देहात्मत्वाची स्थिति झाली अुन्मत्ता.
येअुनि जन्मा रे! व्यर्थ शिणविली आओ,
हैंचि मनिं खाओ—
रामा दयाघना०

अर्थात्—हे दयाघन राम, मुझे क्षमा करके मेरी रक्षा करो! मैं कहाँका कौन हूँ, यह न जानते हुअे आजतक अज्ञानसे विद्वत्ता बघारता रहा। देहात्मत्वकी स्थिति अुन्मत्त हो गयी। मैंने पैदा होकर माँको व्यर्थ ही कष्ट दिया। यही बात दिलको चुभती है।

सचमुच ही निकम्मा जीवन बिताकर मैंने अपनी माताको अपने भारसे मार ही डाला था। केवल जननीको ही नहीं, जन्मभूमिको भी। मुझे अपने अतीत जीवनसे मन-ही-मन घृणा हुअी। अज्ञानवश मैं विद्वत्ताकी शेखी बघारता था; ख़ुद अन्धकारमें रहकर लोगोंके सामने प्रकाशकी बातें करता था।

मैं अपना भजन आगे गाने लगा—

करुणासागरा! राघवा रघुराजा!
विषयीं पांगळा नका करू जीव माझा
. . . .
भुलुनि प्रपंचा रे, भ्रमुनि भ्रमुनि ठायीं ठायीं,
हरुनि वय जाअी—
रामा दयाघना०

अर्थात्—हे करुणासागर राघव रघुराज, विषयोंसे मेरे प्राण अपंग न बनाअिये! . . . अरे अिस प्रपंचमें फँसकर जगह-जगह भ्रमित और भ्रमित होकर आयु क्षीण होती जाती है। हे दयाघन राम . . . ।

भजनकी धुन सवार हो गअी। मैं अुच्च स्वरसे ललकार रहा था। आगे यह चरण आया—

सच्चित्सुख तो तूं परब्रह्म केवळ,
सच्चित्सुख तो तूं पर वस केवळ.

सामनेवाले पहाड़ने अेकाअेक गर्जना की—

सच्चित्सुख तो तू परब्रह्म केवळ.

हिमालयकी वह मेघ-गम्भीर गर्जना मुझे तो अशरीरिणी वाणी प्रतीत हुअी। सचमुच ही मैं सच्चित्सुखात्मक परब्रह्म हूँ। मैं अिसे भूलता हूँ, अिसीलिअे पामर बन जाता हूँ। जरा देखो तो यह धीर-गम्भीर हिमालय किस प्रकार सच्चित्सुखकी समाधिका अुपभोग कर रहा है! अिस बर्फको देखो। गरमी और जाड़ा दोनों अिसके लिअे बराबर हैं! देखो, अिस विशाल आकाशको देखो! कितना शान्त और अलिप्त है! क्या मैं अिससे भिन्न हूँ?

मुझपर अद्वैतकी मस्ती सवार हो गअी। अिसलिअे पीअुड़ा कब आ गया, अिसका मुझे भान भी न रहा। पीअुडाके पानीकी बड़ी तारीफ सुनी जाती है। क्षयरोगी यहाँका पानी खास तौरपर मँगाकर पीते है। पीअुड़ामें हमने भोजन बनाकर खाया, थोड़ा आराम किया, और आगे बढ़े। फिर अुतार। मेरे घुटनोंमें चमकें आने लगीं और दर्द होने लगा। अिसलिअे फिर यह वृत्ति जाग्रत हुअी कि मैं देहधारी हूँ। धीरे-धीरे मैं फिर आसपासकी सुन्दरता निहारने लगा।

हिमालयकी खेती देखने लायक होती है। जहाँ बैठी और चौडी पहाड़ी होती है, वहाँ चोटीसे तलहटीतक दो-दो, चार-चार हाथ चौड़ी सीढ़ियोंके समान क्यारियाँ बनाते और अुनमें हाथसे खोदकर अनाज बोते हैं। अिन खेतोंका दृश्य नदीके पक्के घाटके समान दीख पड़ता है।

जहाँ अुतार खत्म हुआ, वहीं अेक झूलता पुल आया। अुस पुलको लोधियाका पुल कहते हैं। पुलके नीचेके पत्थर देखने लायक हैं। नदीके प्रवाहसे घिसे हुअे पत्थरोंका आकार बहुत सुहावना दिखाअी देता था। जहाँ पानीके भँवर पड़ते हैं वहाँ तलके खुले पत्थर भी गोल-गोल चक्कर काटकर तलेके पत्थरोंमें जो गहरे-गहरे गड्ढे बनाते हैं, अुनका दृश्य मनोवेधक होता है।

अिस पुलके नीचे मैंने अेक सॉप देखा। यहॉ अिसका अुल्लेख अिसलिअे कर रहा हूँ कि हिमालयके घने जंगलोंमे और दूसरे भिन्न-भिन्न प्रदेशोंमें मैंने जो दो-तीन हज़ार मीलकी यात्रा की, अुसमे सिर्फ दो सॉप देखनेमे आये। अेक यहॉ, दूसरा गंगोत्रीके पास। अब फिर चढ़ाअी शुरु हुअी। दूरपर अेक पहाडी शहर दिखाअी देने लगा। यह अलमोड़ा था या मुक्तेसर, मैं अिसका निश्चय न कर सका। सॉझ होने लगी। और आखिर हम अल्मोडाके पास पहुँचने लगे। वहॉ अेक चुंगीघर था। वहीं हमने अेक बैलगाडीकी लीक देखी। हिमालयमें बैलगाडीकी लीक सभ्यताकी परिसीमा समझी जाती है। हमारे यहॉकी किसी राजधानीमें संगमरमरका कोअी रास्ता हो, तो अुसके विषयमें लोग जिस अुमंग और अदबके साथ बोलते हैं, अुसी अुमंग और अदबसे पहाडी लोग अिस 'कार्ट रोड' के विषयमे बोलते हैं। बगल ही में मुसलमानोंका कब्रस्तान था। पर्वतकी वन्य शोभामें ये सफेद-सफेद कब्रें भोंडी नहीं लगती थीं। अक्सर मुसलमान कुदरतकी शोभाको बिगाड़ते नहीं। सॉझके समय ये क़ब्रें अैसी लगती थीं, मानो चरागाहसे लौटी हुअी गायें आरामसे बैठी-बैठी जुगाली कर रही हों। ३७ मीलकी यात्रा कुशलपूर्वक की; लेकिन आखिर हम रास्ता भूल गये। हमने अलमोड़ाकी आधी परिक्रमा की। रास्ता छोड़कर लोगोंके आंगनोंमेंसे होते हुअे, और अनेक घूरे खूँदते हुअे, अन्तमे हम सात बजे बाजारमे पहुँचे। बाज़ारका रास्ता पत्थरोंसे पटा हुआ है। वहॉ 'हिल-बॉअिज़ स्कूल' का रास्ता पूछते-पूछते हम मेरे अेक मित्रके मकानपर पहुँचे। वे घरमे न थे। कहीं टहलने गये होंगे। हरखदेव नामका अेक लड़का अन्दरसे बाहर आया। अुसने हमारा स्वागत किया और कहा—'आअिये, भीतर आअिये, अिस खटियापर विराजिये। मैं स्वामीजीका शिष्य हूँ। वे बाहर गये हैं। अभी आते ही होंगे। कह रहे थे कि काकाजी आनेवाले हैं। आप दोनोंमेंसे काकाजी कौन हैं?" थोडी देरके बाद स्वामी आये। बडौदेमें स्वामीको जैसा देखा था वैसे अब वे न थे। लम्बी-लम्बी दाढी, लम्बी-सी चोटी, अुसपर अेक फीके गेरुअे रंगका मफलर और लम्बी सफेद कफनीवाली मूर्त्ति, अेक लम्बी नोकदार लकड़ी हाथमे लिये मेरे सामने आकर खडी

हुअी। प्रेमवश हम अेक-दूसरेसे लिपट गये। बाबा प्रेमके अुद्रेकसे रोने लगे। मैंने देखा कि स्वामी मराठीमें आसानीसे बोल नहीं सकते थे। हरअेक वाक्यके साथ बरबस आनेवाले हिन्दी शब्दोंको हटानेकी अुन्हें कोशिश करनी पड़ती थी।

रातको हमने क्या खाया, कितनी रात तक बातचीत करते बैठे रहे, और कब आँख झपकी, अिसका मुझे बिलकुल स्मरण नहीं है। सिर्फ अितना याद है कि अुस वक़्त स्वामी पुरश्चरण करते थे, अिसलिअे दूधपर ही रहते थे। कुछ खाते नहीं थे। यहाँतक कि पानी भी नहीं पीते थे। नींद अैसी आयी, मानो निर्विकल्प समाधि हो!

१३

अलमोड़ा

अलमोड़ा हिमालयकी अेक शाखापर बनाया हुआ मनुष्योंका घोंसला है। अलमोड़ाकी हवा खास तौरपर मशहूर है। दूर-दूरके क्षयरोगी अप्रैलसे अक्तूबरके बीच यहाँ आकर रहते हैं। यहाँ वे चीड़के शानदार और अूँचे-अूँचे पेड़ोंकी राह सन्-सन्-सन् बहनेवाली हवाका सेवन करते हैं, और रानी नौला नामके अेक झरनेका पानी पीते हैं। अिस मौसिममें चाहे जिस रास्तेसे टहलने निकलिये, अिन मरीजोंका अेकाध समूह जीनेकी अिच्छासे बड़ी मेहनतके साथ हाँफता हुआ और फेफड़ोंमें प्राण भरता हुआ ज़रूर नज़र आयेगा। राजयक्ष्माकी अिस निस्तेज प्रजा और आस-पासकी लावण्यवती प्रकृतिके बीचका अन्तर तो स्वतंत्रता और परतंत्रताके भेद-सा जान पड़ता था। यह शहर ज़िलेका और कुमाऊँ परगनेका सदर मुक़ाम है। यहाँ ब्रिटिश अदालत है, छावनी है, पादरियों द्वारा चलाया जानेवाला अेक कॉलेज भी है। ये लोग यहाँ अपना अेक खासा अुप-निवेश-सा बनाकर रहते हैं। यहाँसे ३७ मीलपर नैनीताल नामकी अेक गन्धर्वनगरी है। अिसलिअे अलमोड़ा गोरोंके आक्रमणसे बच गया है।

दूसरे दिन सबेरे अुठकर हम घूमने गये। गरमियोंके दिन थे, फिर भी हमारे यहाँके शीतकालसे भी वहाँकी ठण्ड अधिक थी। आसपास

हरअेक घाटीमें सफेद-सफेद बादल आलसियोंकी तरह सोये हुअे थे। अूपर आकाश निरभ्र था। अुत्तरकी तरफ नन्दादेवीका शिखर सूर्यकी तरुण किरणोंमें सुवर्ण-मन्दिरकी तरह जगमगा रहा था। जहाँ अबतक सूर्य किरणें नहीं पहुँच पायी थीं, वहाँकी अरुण सदृश रक्तिमा अुषाको भी लजाती थी। हिमालयके घरमें शिखरोंका दारिद्र्य नहीं है। तो भी नन्दा-देवीकी सुन्दरता अितनी अधिक है कि अैसा मालूम होता है, मानो हिमालयको भी अुसपर गर्व हो। और अिसीलिअे अिस शिखरकी प्रतिष्ठाकी रक्षाके लिअे अेक अनुचरकी तरह नन्दाकोटाका शिखर अुसकी सेवामें अुपस्थित है। नन्दादेवीका वर्णन मैं क्या करूँ? पूर्वमन्वन्तरके ऋषि मार्कण्डेयने अिस देवीका जो वर्णन किया है अुसीको यहाँ दे दूँ, तो क्या वह बस न होगा?

कनकोत्तमकान्तिस्सा सुकान्तिकनकाम्बरा।
देवी कनकवर्णाभा कनकोत्तमभूषणा॥

अिस देवीकी अुपासनामें ऋषिको अितनी श्रद्धा है कि वह कहता है —

नन्दा भगवती नाम या भविष्यति नन्दजा।
सा स्तुता पूजिता ध्याता वशीकुर्याज्जगत्त्रयम्॥

हमने नन्दादेवीकी दिशामें ही टहलने जाना 'दुरुस्त' समझा। हिमालयमें जगह-जगह देवियोंके निवासस्थान हैं। शाअीदेवी, धूरादेवी, सीतोलीदेवी और पातालदेवी, ये चार अलमोड़ाकी चार दिशाओंकी रक्षा करती हैं। हिन्दू समाज-नेताओंकी दृष्टि कुछ अद्भुत है। जीवनके हरअेक अंगके साथ वे किसी-न-किसी तरह धर्मका सम्बन्ध जोड़ देते हैं! अगर अलमोड़ा शहरको स्वतंत्र रखना हो, तो आसपासके ये चार स्थान अलमोड़ा-वासियोंके हाथमें रहने चाहिअें। यह बात फौजी दृष्टिसे देखनेवालेके ध्यानमें आसानीसे आ सकती है। अब यही बात अिन धर्मकारोंने लोगोंके सामने किस प्रकार पेश की है, सो देखिये। भक्ति और मुक्ति-दायिनी ये चार देवियाँ चार कोनोंमें विराजमान हैं। अिनके मन्दिरोंकी रक्षा करो, और अिन स्थानोंको पवित्र रखो, तो —

सैषा प्रसन्नवरदा नृणां भवति मुक्तये।

मुक्ति यानी आज़ादी।

और अिस ऋषि-वचनका अनुभव लोगोंको हर ज़मानेमें हुआ है। शत्रुकी चढ़ाअी होते ही सब मर्द जवान घरसे बाहर निकलकर अिन चार मन्दिरोंमे अिकट्ठा होते थे। और जबतक ये चार स्थान अुनके हाथमें हों, तबतक शत्रुकी क्या ताब कि वह अल्मोड़ेके चीड़ या देवदारके सींकरूपी बालको भी बाँका कर सके?

हम अस्कोटके रास्ते चीड़का जगल देखने गये। बीचमें अेक छोटी-सी पहाड़ीपर जेल दिखाअी दिया। स्वामीने मुझसे कहा — 'बगालके सुप्रसिद्ध नेता अश्विनीकुमार दत्त अिसी जेलमें रक्खे गये थे। चीड़का जंगल पार करके आखिर हम बलटौटी नामक पर्वतपर पहुँचे। किसी समय अंग्रेज सरकारने अिसी जगहको शिमला बनानेका विचार किया था। जब स्वामी विवेकानन्द अमेरिकासे लौटे, तो अुन्होंने अिस जगह अद्वैताश्रमकी स्थापना करनेका निश्चय किया था। लेकिन सुनते हैं कि जिस दिन अुन्होंने सरकारसे अुस जगहकी माँग की; अुसी दिन वहाँके कमिश्नरने वह स्थान पादरियोंको दे दिया। यहाँ अीसाअी बने हुअे पहाड़ी लोगोंकी बस्ती है। हरखदेवने कहा — "काकाजी, देखिये अिन पादरियोंकी चालाकी! ये जब यहाँके लोगोंको अीसाअी बना लेते हैं, तो अुन्हें दूसरे प्रान्तोंमें ले जाते हैं, और दूसरे प्रान्तोंके अीसाअी बनाये हुअे लोगोंको यहाँ लाकर रखते हैं, ताकि समाजके साथ अुनका सम्बन्ध टूट जाय, और लोगोंमे भी अिन पादरियोंके ख़िलाफ द्वेष पैदा न हो। हमारे प्रान्तके कितने लोग अिस तरह अीसाअी बना लिये गये हैं, अिसका कोअी पता नहीं। दूसरे प्रान्तके अनेक लोगोंको अीसाअी बनते देखकर अुस प्रान्तके लिअे भी हमारे दिलमें नफरत पैदा होती है।" हरखदेवकी यह मार्मिक आलोचना सुनकर मुझे बहुत मजा आया। वहाँसे हम नीचे पातालदेवीकी तरफ अुतरे। साढ़े सातका वक़्त था। और, जब हम अुतर रहे थे, तो घाटीमें अूँघते हुअे बादल स्कूली लड़केकी तरह आँखे मलते हुअे अुत्तरके हिम-प्रदेशकी पाठशालाकी ओर जाने लगे थे। पातालदेवीका स्थान साधुओंके रहनेके लिअे विशेषरूपसे अनुकूल है। वहाँ ख़ूब अेकान्त है। पानीका सुन्दर झरना है, और कलेजेको ठिठुरा देनेवाले पहाड़ी अंझावातसे यह स्थान सुरक्षित है। यहीं

पहाड़के अिस तरफ अेक अेकाकी वृक्ष है, और वह अितना बड़ा है कि दूर-दूरके पहाड़ोंपरसे दिखाअी देता है। सिंहगढ़पर तानाजीकी घाटीका जो महत्त्व है, वही यहाँ पातालदेवीके अिस स्थानका है। पातालदेवीसे आगे चढ़ते-चढ़ाते हम अपने डेरेपर लौटे। मुझे भूख तो अैसी कड़ाकेकी लगी थी कि अगर मैं नुलायम कंकर बीनकर खाता, तो वे भी हजम हो जाते, अिसमें मुझे कोअी शक नहीं।

घरपर नेपाली भिक्षुनीने पानी तैयार रखा था। अुससे हम नहाये। सारी थकान अुतर गयी, और शरीरमें फिर दस मील चल सकने लायक अुत्साह आ गया। हमने अपना नित्यपाठ समाप्त किया। अितनेमें हरखदेव खाना ले आया। अुसमें 'ओगल' नामके अेक जंगली बीजके आटेका हलुवा भी था। दोपहरको हम हिल-नॉअिज स्कूलके संचालक श्री हरिराम पाण्डे वकीलसे मिलने गये। हरिराम पाण्डे अेक सात्त्विक और सत्कारी सज्जन हैं। साधारण शिष्टाचारी प्रश्नोत्तरोंके बाद अुन्होंने मुझसे यह सलाह पूछी कि 'हिल-स्कूल' सरकारी ग्राण्ट ले या न ले। मैंने कहा— "ग्राण्ट बिलकुल न लेनेमें ही बुद्धिमानी है। थोड़ीसी मददके लिअे हम अपनी स्वतंत्रता गँवा देते हैं, और जब अिन्स्पेक्टरको .खुश करनेकी वृत्ति अेकबार हममें पैदा हो जाती है, तो फिर जन-हित किस बातमें है अिसका विचार हमें नहीं रहता। सरकारकी नीति तो स्पष्ट है—'युवर मनी, अवर कण्ट्रोल' (धन तुम्हारा, सत्ता हमारी)।" पाण्डे साहबको यह अन्तिम सूत्र बहुत ही पसन्द आया। और अुन्होंने ग्राण्ट न लेनेका निश्चय किया। फिर अुन्होंने अत्यन्त विनयपूर्वक मुझसे पूछा—"आप लोग साधु बनकर घूमते फिरते हैं, अिसके बदले समाज-सेवा करें तो क्या हर्ज है? साधु लोग नाहक यहाँसे वहाँ भटककर समाजके लिअे भाररूप क्यों हों?" अुन्हें क्या पता कि समाज-सेवाका भूत अुनकी बनिस्बत मुझपर ज्यादा सवार था? और अुससे छुटकारा पानेके लिअे ही मैं यहाँ हिमालयमें आया था।

समाज-सेवा करनेके लिअे भी अधिकार चाहिअे। आज अनधिकारी लोग सेवा-कार्यकी ज़िम्मेदारी लेकर समाजमें जो गड़बड़ी पैदा करते हैं, अुससे वे मुँह मोड़ लें, तो भी बड़ी-से-बड़ी समाज-सेवा हो सकती है।

डर यह है कि कहीं युरोपकी तरह यहाँ भी समाज-सेवा अेक पेशा न बन जाय। विलायतमें किसी समय बैरिस्टर अेक बहुत निरपेक्ष समाज-सेवक था। वही आज जोंककी तरह अपने मवक्किलोंका .खून चूसनेवाला बन गया है। मैंने वकील साहबसे पूछा — "आप जो समाज-सेवा कर रहे हैं, क्या अुसके सिलसिलेमें आपको यह अनुभव नहीं हुआ कि कुछ निकम्मे लोग बीचमें नाहक़ टाँग न अड़ायें, तो आपका काम थोड़ी मेहनतसे ज़्यादा अच्छा हो?" अुन्होंने अुत्तर दिया — "अजी साहब, यह अनुभव तो पग-पगपर होता है। सारी शक्ति अिन नालायकोंके विरोधका सामना करनेमें ही खर्च हो जाती है। और आखिर आदमी निराशावादी बन जाता है।" मैंने कहा — "तब अिस बारेमें हम लोग आपको अभयदान दे रहे है, यह क्या कम है? आत्मोन्नति और समाज-सेवामें विरोध नहीं है। फिर भी अिस काल्पनिक विरोधको स्वीकार कर मैं कहता हूँ कि आत्मोन्नतिकी साधना करना हरअेकका कर्त्तव्य है। समाज-सेवाके लिअे यह नहीं कहा जा सकता। समाज-सेवाके लिअे बहुत बड़ी कुशलताकी जरूरत है। वह अेक तरहकी कसरत है। हमारा अपना पतन न हो, और समाज भी परावलम्बी तथा निष्प्राण न बने, अिस आदर्शको सँभालते हुअे ही समाज-सेवा करना अुचित है। नहीं तो धर्म करनेमें अधर्मको पोषण मिलेगा।" पाण्डेजी कुछ बोले नहीं। कदाचित् अुन्हें सन्तोष हो गया होगा। अलमोड़ाकी हवाके बारेमें अुन्होंने कहा — "आप अपने मैदानवाले लोगोंसे कहिये कि तपेदिकके अिलाजके लिअे यहाँ आना हो, तो बीमारीके शुरू होते ही यहाँ आनेमें फायदा है। बहुतेरे लोग बिलकुल आखिरमें यहाँ आते हैं, और यहाँकी तीक्ष्ण हवा बरदाश्त न कर सकनेके कारण नाहक मौतके शिकार होते हैं। मेरा यह सँदेसा आप 'देश' के लोगोंतक ज़रूर पहुँचाअियेगा।" पुस्तकोंसे मैं अूब गया था, फिर भी अुनके यहाँ 'शब्दकल्पद्रुम' की मोटी-मोटी जिल्दें देखकर मेरी लालची नजर अुनपर पड़े बिना न रही।

लौटते समय हम आशाबाबू नामक अेक बंगालीके घर गये। वे ब्राह्मो थे। अुनके साथ वेदान्त, तंत्र, शक्तिपूजा और ब्राह्मधर्मपर .खूब चर्चा हुअी, और साँझ होते ही हम ग्रेनाअिट पहाड़ीपर पहुँचे। वहाँसे

चारों ओरका दृश्य भव्य और मनोहर लगता था। नन्दादेवीने सन्ध्याका पीत वस्त्र परिधान किया था, और सन्ध्याको आशीर्वाद देकर वह अुसे विदा कर रही थी। तारे चमकने लगे थे, आकाशगंगामें हंस नहा रहा था। बहुतसे देवता भी जल-विहार कर रहे थे। अुनके दर्शनसे पावन होकर हम धीरे-धीरे घर आये।

घरपर भिश्ती भक्तिभाव पूर्वक स्वामीसे गीता सीखनेकी राह देखता बैठा था। सुबहके नौकरको शामके वक्त प्रिय शिष्य बना हुआ देखकर मेरा हृदय हर्षसे अुमड़ अुठा। थोड़ी देरके बाद श्रद्धाधन दरजी साअींजी भी आया। अिस आदमीने अपनी जिन्दगी जुअेमें तबाह कर दी थी। स्वामीके सम्पर्कसे अुसके दिलमें अुपरति अुदय होने लगी थी। मैंने स्वामीसे कहा — "आज 'अपि चेत्सुदुराचारो' पर प्रवचन कीजिये।"

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥

जब स्वामीने अिस श्लोकका रहस्य हिन्दीमें समझाया, तो साअींजीका कण्ठ भर आया। अुसने कहा — "नहीं सामीजी, हम अभी शुद्ध नहीं हुअे। हमको अब भी कभी-कभी मोह होता है। पाप हमारे दिलमें घुस आता है।" मेरे दिलमें विचार आया — "हमारे धर्मोपदेशक दक्षिणाके पीछे मरते हैं। अिन गरीब लोगोंको धर्मका प्रसाद कौन बाँटेगा? कौन अिन्हें आश्वासनके वचन सुनायेगा? पतितोंको अस्पृश्य मानकर हमारे धर्मगुरु स्वयं अस्पृश्य बन गये हैं, और हिन्दू धर्मका पतित-पावनत्व खो बैठे हैं। गुहक और शबरीको अपने आत्मीय माननेवाले रामचन्द्रकी अब यह भरतभूमि नहीं रही।" अिस प्रकार विचार करता हुआ मैं बिस्तरपर लेटा। बाहर सन्-सन् करता हुआ पवन मेरे विचारोंके साथ ताल दे रहा था।

१४

खाकीबाबा

हिमालयसे लौटकर आये हुअे मनुष्यसे सब कोअी अेक ही सवाल पूछते है — 'वहाँ आपको कोअी साधु-महात्मा मिले?' लोगोंका क्या खयाल है, सो मैं जानता नहीं। क्या लोग यह समझते है कि हिमालयमें पेडोंके बदले साधुओंका ही बन अुगता है? जिस तरह मैं हिमालय गया था अुसी तरह बहुतसे साधु हिमालय जाते है। जैसे वह होटलवाला विशारद वहाँ जा बसा है वैसे ही कअी साधु भी हिमालयमें रहते है। लेकिन लोगोंको अैसे साधुओंकी तलाश नहीं। अैसे साधु तो अुनके घर भी भीख माँगने आते है। अुन्हें तो चाहिअे त्रिकालज्ञानी, चमत्कारपटु और बिना कुछ खाये जी सकनेवाले महात्मा! जिनके चरणभर छूनेसे मोक्ष प्राप्त हो जाय, या कोअी अजीब कीमिया मिल जाय, अथवा और कुछ नहीं, तो कम-से-कम किसी बीमारीकी अद्‌भुत जडी-बूटी ही अनायास हाथ लग जाय! राजनीतिमें दिलचस्पी रखनेवाले लोग पूछते है — 'हिन्दुस्तानके भविष्यके विषयमें आपको हिमालयके साधुओंसे कुछ मालूम हुआ है?'

अिन सब प्रश्नोंका जवाब मैं अेक ही वाक्यमें दे डालता हूँ। मैं साधुओंकी तलाशमें गया ही न था। अुपदेशके रूपमें मुझे जो कुछ मिला था, वह मेरे लिअे काफी था। मुझे तो अपनी साधना स्वतः ही करनी थी। जिस प्रकार परान्नजीवी रहकर दूसरेका आश्रित बनना लज्जास्पद है अुसी प्रकार किसी साधुकी तपश्चर्यामेंसे भीखका टुकड़ा पानेकी और अुसके भरोसे सुखी होनेकी अिच्छा भी आध्यात्मिक दरिद्रताकी द्योतक है। साधुओंके दर्शनसे हमारा हृदय पवित्र हो, अुनका वैराग्य हमारे अन्दर अुद्‌भूत हो, अुनकी अीश्वरनिष्ठा हममें पैदा हो, और अुन्हींकि जैसी तपस्या करनेकी निश्चय शक्ति हमें भी प्राप्त हो, यह अिच्छा अुचित है। लेकिन अुनके प्रसादके रूपमें हमें कुछ मिले और हम अनायास, सेंतमेंतमें, सुखी बन जायँ, अैसी अिच्छामें तो पामरता ही भरी हुअी

है। बाजारसे साग-तरकारी खरीदते वक्त पूरा तुलवानेके बाद भी दो-चार आलू या मिर्च और मॅांगनेवाला ग्राहक; देश-सेवामे अेक सामान्य सैनिककी योग्यता रखते हुअे भी अपनी सेवासे ही राष्ट्रको स्वातंत्र्य मिलता हो, तो अुसी अेक शर्त्तपर अपनी बलि देनेकी अिच्छा रखनेवाला देश-सेवक; अंग्रेज लोगोंसे मॉग-मॉगकर और अुन्हें तग कर-करके स्वराज्य प्राप्त करनेकी अुम्मीद रखनेवाले; और महात्माओंके चरण-स्पर्श या वस्त्र-स्पर्शसे या अुनकी जूठन खाकर यह आशा रखनेवाले कि उनकी तपस्याका कुछ अंश बिजलीकी तरह हमारे अन्दर भी सहज ही दाखिल हो जायगा — ये सभी रंक हैं। बिना मेहनतके मोक्ष भी मिले, तो अुस मोक्षका मूल्य ही क्या? और अिस पिशाचबाधाको मोक्ष कहा भी कैसे जाय?

साधुओंके विषयमें हम लोगोंमें बहुत ही अजीब खयाल पाये जाते हैं। कुछ लोग तो साधुको अेक जीती-जागती जड़ी-बूटी या मंत्र ही समझते हैं। कुछ लोगोंका खयाल है कि वे ससारको ठगनेवाले, ढोंग-धतूरा चलानेवाले और मुफ्तका माल अुड़ाकर मस्जिदमें सोनेवाले आलसी ठग हैं, क्योंकि वे न तो कोअी समाज-सेवा करते हैं, और न द्रव्योपार्जन ही। अेक राष्ट्र-भक्तने मुझपर अपनी यह अिच्छा प्रकट की थी कि अिन सारे साधुओंको पकड़कर अुनकी अेक फौज बनायी जाय और अुसे कवायद सिखाकर अंग्रेज सरकारसे लड़नेके लिअे भेज दिया जाय। आज सब कोअी जानते हैं कि हिन्दुस्तानमें साधुओंकी संख्या बावन लाख है; और अर्थशास्त्र जाननेवाले हमारे विद्वान लोग राष्ट्रकी शक्तिका अितना अपव्यय भला कैसे सह सकते हैं? अिसलिअे अिन बावन लाख साधुओंके साथ क्या किया जाय, अिसी चिन्तासे कितने ही देश-चिन्तक सूखकर कॉटा हो रहे हैं! ससार असार है, अुसमे अेक रोटी और दो लॅंगोटीकी जरूरत रखकर निर्लेप रहो, और हरिनाम लो अथवा आत्म-चिन्तन करो — यों कहनेवाले साधुओंको खाकी पोशाक पहनाकर हाथमें बन्दूक और संगीन देकर और कमरबन्दमें प्राणघातक बारूदके कारतूस बॅंधवाकर 'लेफ्ट, राअिट, लेफ्ट' करानेका दृश्य क्या हिन्दू-धर्मकी विजयका सूचक होगा!

यह कोअी नहीं कहता कि आजके साधु आदर्श साधु है। खाकीबाबा हमेशा कहा करते — 'जैसा जुग वैसा जोगी।' जोगी न तो आसमानसे टपकते है, और न ज़मीनमेंसे पैदा होते है बल्कि वे तो अपने जमानेके समाजमेंसे ही अुत्पन्न होते है। अपने ही दोषोंको साधुओंमें अुतरा हुआ देखकर सांसारिक लोगोंको अितना अचरज क्यों होता है? यदि साधु वर्गको सुधारना है, तो समाजको ही सुधारना पड़ेगा। अर्थात् हरअेक अपने-आपको ही सुधारे। हमने तो सभी साधुओंको अेकसा ही माना है। साधुओंमें घुलमिलकर अुन्हें परखा किसने है? कुछ साधुओंमें आपके संसारी लोगोंकी अपेक्षा अधिक कुलीनता, अधिक भूतदया और अधिक अुद्यमशीलता होती है। अुन्हें दुनियाका जो ज्ञान होता है, अुतना प्राप्त करनेके लिअे आप अपनी सारी लायब्रेरियाँ अुलट डालें, तो भी वह पर्याप्त न होगा।

अेक दिन सबेरे हम जल्दी अुठकर 'ग्रेनाअिट' पहाड़ीपर टहलने गये थे, और वहाँ अेक देवदार वृक्षके नीचे बैठकर अिमर्सनके 'सर्कल्स' पर बातचीत कर रहे थे। अितनेमें दाहिनी तरफ़ दूर बादलोंसे ढँका हुआ अेक छोटा-सा किला दिखाअी दिया। मैंने स्वामीसे पूछा — "यह अेक छोटे टापू जैसा क्या दिखाअी देता है? कोअी मन्दिर या साधुओंका अखाड़ा तो नहीं है?" स्वामीने कहा — "यही तो खाकीबाबाका खगमरा कोट है। हम दोपहरमें वहाँ चलेंगे। खाकीबाबा अेक दिव्य पुरुष हैं। मैं अक्सर अुनके पास जाया करता हूँ। अेकादशीके दिन अुनके यहाँ सारी रात भजन होता है। वहाँ अेक बंगाली साधु भी आता है। वह जितना भक्त है, अुतना ही अप्रतिम गायक भी है।'

अपने निश्चयके अनुसार हम दोपहरमें खाकीबाबाके दर्शनोंको गये। अलमोड़ेकी गोदसे अुतरकर हम अेक नौअे (झरने) के पास पहुँचे। वहाँ मिसरी-सा मीठा पानी पिया और खगमरा पहाड़ी चढ़कर 'थानक' में पहुँचे। बाबा लोगोंका 'टाअुन-प्लैनिंग' देखने-लायक होता है। वे अेक-दूसरेकी फ़ैशनका अनुकरण करनेवाले शहरियोंके समान भेड़-चाल चलनेवाले नहीं होते। अुनके अखाड़ोंकी रचनामें प्रयोजन होता है। अुनका हरअेक भाग साभिप्राय बना होता है। सारी रचना अुपयुक्त,

प्रमाणबद्ध और काव्यमय होती है। अैश-आरामकी सुविधाके बिना मकानोंमें कितनी सुन्दरता पैदा की जा सकती है, अिसका अेक प्रदर्शन ही वहाँ मौजूद रहता है। .खुद खाकीबाबा जिस झोपड़ीमें रहते थे, वह अेक अठकोनी झोंपड़ी थी। अूपर लकड़ीके लम्बे-लम्बे तख्तोंका छप्पर था, जो अूपरकी तरफ बरसातसे और भीतर धूनीके धुअेंसे विवर्ण हो गया था। बीचमें अेक बड़ी धूनी जल रही थी। धूनीमें लोहेके दो-चार चिमटे और अेक दो त्रिशूल खोंसे हुअे थे। पास ही लकड़ीका अेक लम्बा, चौडा और मोटा तख्ता था, और अुसपर खाकीबाबाकी भव्यमूर्त्ति विराजमान थी। आसपास पहाडी शिष्यवृन्द बैठा था। धूनीके पास अेक लुटियामें पानी गरम हो रहा था। हम अन्दर गये। झुककर बाबाको प्रणाम किया और बैठे।

बाबाने बडे प्रेमसे हमारा स्वागत किया। स्वामीने अुन्हें हम दोनोंका परिचय कराया। यह सुनते ही कि मैं बेलगामसे आया हूँ, वे बोल अुठे — "आप बेलगामके है या शाहपुरके?" मैं दंग रह गया। बेलगाम और शाहपुर पास-पास बसे हैं। अुनके बीच पूरा अेक मीलका भी फासला नहीं है। अच्छा, तो हिमालयके अिस साधुको बेलगाम और शाहपुरके भेदका भी पता है! "मैं शाहपुरका हूँ।" खाकीबाबा बोले — "आपका शाहपुर तो साँगलीकी हदमें है। वह ब्रिटिश राजमें नहीं। आपके यहाँ मारवाडी लोगोंने बालाजीका जो मन्दिर बनवाना शुरू किया था, वह पूरा हुआ?" मैंने वहाँका सारा हाल सुनाया। बादमें, मैंने क्या क्या किया, कहाँ-कहाँ घूमा, सो सब अुन्होंने मुझसे पूछ लिया। मैं कुछ कम घूमा न था। फिर भी मैं जिस गाँव या शहरका नाम लेता, वहाँकी सारी तफसील सुनाकर वे अिस तरह सवाल पूछने लगते, मानो वे वहींके बाशिन्दा हों।

अुसके बाद मरढेकर बाबाकी बारी आयी। बाबा रामदासी सम्प्रदायके थे। अिसलिअे अुनके मठ, अुनके सम्प्रदाय आदि सभी चीजोंके बारेमें पूछ-ताछ की। घड़ीभरमें ही हमने देख लिया कि हिन्दुस्तानके भूगोल और धार्मिक अितिहासके बारेमें खाकीबाबाका ज्ञान 'अिम्पीरियल गैजे-टियर्स' से बढ़कर था; और यह सब स्कूल या कॉलेजमें बिना गये,

और बिना 'रॉयल अेशियाटिक सोसायटी' के सदस्य बने प्राप्त किया गया था! .खुद हमारे ज्ञानको लगभग समाप्त होते देख अुन्होंने हमें ज़्यादा सवाल पूछकर लज्जित नहीं किया।

बादमें हमने कहा — 'हम गंगोत्री, जमनोत्री, केदार, बदरी आदि तीर्थस्थानोंकी यात्रा करना चाहते हैं। और स्वामीको तो कैलाश भी जाना है।" फिर क्या था। अुन्होंने हिमालयके सभी तीर्थोंका वर्णन करना शुरू कर दिया! हमें परेशान-सा देखकर अुन्होंने अपनी बगलमें पड़ी हुअी लकड़ीकी अेक तख्ती अुठायी और सफेद मिट्टीकी अेक डली लेकर चटसे अेक काम चलाअू नक्शा बना दिया। अुसमें बदरीनारायण जानेके चार रास्ते दिखाये गये थे। वे कहने लगे — "ज्यादा-से-ज्यादा रेलकी यात्रा करके कम-से-कम पैदल चलना हो, तो यह रास्ता है; खाने-पीनेका सुभीता चाहते हो, तो यह रास्ता है; जल्दी पहुँचना हो, तो यह तीसरा रास्ता है। लेकिन अिस रास्तेके लिअे आपको अपने साथ काफी .खुरदा (चिल्लर) रखना होगा। आपके 'नोट' वहाँ नहीं चलेंगे, और गरीब लोगोंके पास काफी चिल्लर भी नहीं मिलेगी।" चौथा रास्ता अुन्होंने अपने रास्तेके नामसे बतलाया। अुसमें जंगल और सृष्टि-शोभा अधिकसे अधिक थी। यह रास्ता बिलकुल निर्जन था, और दो बस्तियोंके बीच कम-से-कम चालीस मीलका फासला रहता था।

मैंने पूछा — "महाराज, आप बदरीनारायण कब पधारे थे?" अुन्होंने कहा — "कुल मिलाकर सत्रह बार गया हूँ!" स्वामीको कैलाश जाना था, अिसलिअे मैंने बाबाजीसे पूछा — "आप कैलाश भी गये होंगे?" अुन्होंने कहा — "आठ बार!" और, वे अिस तरह वहाँका वर्णन करने लगे मानो सारे रास्तेका चित्र ही अुनकी आँखोंके सामने मौजूद हो! अिसके बाद कैलाशके रास्तेपर रहनेवाले मोरपंखीबाबा नामक अेक साधुका वर्णन शुरू हुआ, जो हरसाल कैलाश-यात्रा करते थे। बादमें हमने आसपासके प्रदेशमें रहनेवाले सोमवार गिरिबाबा जैसे दूसरे सत्पुरुषोंके विषयमें पूछ-ताछ की। हिन्दुस्तानके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंकी आबहवा, खान-पान, रहन-सहन, और स्वभावका अपना अनुभव अुन्होंने सुनाया। गुजरातकी धर्मश्रद्धाकी अुन्होंने बड़ी तारीफ की। महाराष्ट्रका आदरातिथ्य अुन्हें बहुत

अच्छा लगा था। बंगालकी गन्दगी और जलाशयोंकी स्वच्छताके विषयमें वहाँवालोंकी लापरवाहीकी अुन्होंने शिकायत की। रामेश्वरकी तरफके मन्दिरोंकी व्यवस्थामें क्या-क्या त्रुटियाँ हैं, सो भी अुन्होंने बताया।

अिसके बाद अुन्होंने हमसे चाय पीनेका आग्रह किया। हिमालयकी चाय लिप्टनकी चाय नहीं होती; वहींकी पैदावार होती है। और वहाँ अुसे बनानेका तरीका भी और ही होता है। वहाँवाले कहते हैं कि हिमालयकी सख्त ठण्डमें यह चाय बड़ी अुपयोगी होती है। हमने चाय पीनेसे अिन्कार किया। अिसपर अुन्होंने बगलमें रखी हुअी अेक टोकरीमेंसे पेड़े देनेके लिअे अपने अेक सेवकसे कहा। मैंने कहा - "मैं खाँड नहीं खाता।" अुन्होंने कहा — "यह खाँड तो देशी होती है। मैं हर साल कानपुरसे खास अपने लिअे मँगाता हूँ।" (बादमें मुझे मालूम हुआ कि खाकीबाबाके यहाँ जो शकर बरती जाती थी, वह हर साल पीलीभीतके राजा ललिताप्रसादकी तरफसे भेजी जाती थी, जो गुमाश्तेकी देख-रेखमें खास तौरसे कानपुरके कारखानेमें बनवायी जाती थी; और बादमें बोरोंमें भरकर अेक ही खेपमें पहाड़पर पहुँचा दी जाती थी। मैंने कहा — "मुझे माफ कीजिये। छह सालतक शकर बिलकुल ही न खानेका मेरा व्रत है।" लेकिन बाबा यों सहज ही छोड़नेवाले न थे। तुरन्त ही मुझे बादाम और छुहारे दिये गये, और फिर बातोंका सिलसिला चल पड़ा।

बाबाने पीनेके लिअे लोटेमेंसे गरम पानी लिया, लेकिन पीनेसे पहले अुसकी दो-चार बूँदें अग्निको अर्पण कीं। मुझे अिसपर कुछ आश्चर्य हुआ। यह देख स्वामीने मुझसे कहा —"खाकीबाबा जो भी कुछ खाते या पीते हैं, अुसे पहले अग्निको अवश्य अर्पण करते हैं।" खाकीबाबा बोले —"अपने राम तो दिनमें अेक ही बार अेक 'बाटी' बनाकर 'पा' लेते हैं। आज दोपहरको जो खाया सो फिर कल दोपहरमें पायेंगे।" मैंने मन-ही-मन कहा — "तो फिर क्या ये पेड़े और बादाम और छुहारे हम-जैसे अतिथियोंके लिअे ही हैं? धन्य है अिस साधुको!" खाकीबाबाकी कमरमें मुंजकी अेक मोटी रस्सी पड़ी थी, और अुसपर अेक बित्ताभर चौड़ी कौपीन; सारा शरीर भस्म-चर्चित था। दाढ़ी और मूँछके लम्बे-लम्बे बाल तप तपकर लाल पड़ गये थे।

बादमें आजकलके साधुओंके धर्मोपदेशोंके बारेमें बात चली। कुछ अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग साधु हो जाते हैं। वे अंग्रेजीमें पुस्तकें लिखते हैं, व्याख्यान देते फिरते हैं, और समाज-सेवाके पाठ सिखाते हैं — यह सब देखकर खाकीबाबाकी हँसी रोके न रुकती थी।

वे बोल अुठे — "आप अंग्रेजी पढ़े-लिखे साधु गरीबोंकी क्या सेवा करते हो? दुखियोंको कौनसा दिलासा देते हो?" और फिर अचानक शून्य दृष्टिसे सामनेवाली धर्मशालाकी तरफ टकटकी बाँधकर देखते हुअे अुद्वेगपूर्वक वे स्वगत-सी कहने लगे —

"साले-ससुरे लेक्चरबाजी करते हैं! अुसमें भी और कोअी विवेकानन्द बननेकी तो ताकत नहीं; खाली ट्रान्सलेशन करते हैं! भगवानका नाम लो, कुछ तप करो। बन सके तो भूखेको अन्नदान दो; और अपना काम करो। ये क्या खाली बकबक लगाअी है?"

स्वामीने पूछा — "क्या आप अिस साल बदरीनारायण जानेवाले हैं?" बड़ी-बड़ी दरारोंवाले अपने तलवे दिखाते हुअे अुन्होंने कहा — "अीश्वरने मुझे यह सजा दी है। यह बच्चा यात्राका बेहद शौकीन बन गया है, अिसलिअे अिसे अेक जगह जकड़कर रखना ज़रूरी है, यह सोचकर अीश्वरने ही मेरे पैरोंकी यह हालत कर डाली है। अब अगर मुझे जाना हो, तो टाटके जूते पहनने होंगे।"

खगमरेमें रहकर खाकीबाबा जो मूक समाजसेवा करते थे, अुसका हिसाब कौन लगा सकता है? वे बीमारोंको दवा देते थे; व्यवहार-कुशल और निस्पृह तो थे ही; अिसलिअे दुविधामें पड़े हुअे संसारी लोगोंको सलाह-मशविरा देते थे; भूखे-प्यासे सब खगमरेमें आकर अघा जाते थे; भाअी-भाअीके जिन टण्टोंका निपटारा अदालतोंमें नहीं हो सकता था, अुनका तस्फिया खाकीबाबाके अुपदेशसे हो जाता था। वे स्वयं योगमार्गी थे, और आखिरी घड़ीमें पद्मासन लगाकर प्राणोंको ब्रह्माण्डमें ले जानेकी अुनकी अभिलाषा थी। संसारके द्वन्द्वोंसे वे निवृत्त हो गये थे, फिर भी अुस निवृत्तिमेंसे अुन्होंने सात्विक प्रवृत्तिका निर्माण किया था, और अुस सात्विक प्रवृत्तिमें भी कमलपत्रकी तरह अलिप्त रहनेका अद्भुत योग अुन्होंने साध लिया था।

धर्मकी चर्चा करनेवाले हमारे आधुनिक विद्वानों, नीति-निपुणों, समाज-सेवकों और अर्थशास्त्रियोंको साधुओंकी टीका करनेसे पहले पूर्वग्रह-रहित, निर्मल वृत्तिसे अुनके जीवनका अध्ययन करना चाहिअे। और कुछ नहीं तो कम-से-कम अितना तो हम साधुओंके जीवनसे सीखे ही सकते हैं कि अिस देशमें किस तरहकी रहन-सहनसे स्वास्थ्य-रक्षा भली-भाँति हो सकती है। अिस विषयमें अुनकी सेवा देशके लिअे अितनी आदर्श-रूप है कि अुस हदतक साधुओंपर खर्च होनेवाला पैसा सार्थ माना जा सकता है। क्या घर-गिरस्तीमें रहकर व लोगोंकी अधम वृत्तियोंका पोषण करके धन कमानेवाले और मरते समय बे-जान और बे-शअूर बाल-बच्चोंकी फ़ौज अपने पीछे छोड जानेवाले लोग समाजके हितकारी हैं, और ये साधु 'मुफ्तका खानेवाले' हैं? वाह रे न्याय!

जरा अपनी समाज-सेवाकी संस्थाओंपर दृष्टि डालिये। वे कितनी खर्चीली होती हैं! अुनके व्यवस्थापकोंको कितनी बडी तनख्वाह देनी पडती है। अुनकी रिपोर्टें छपवानेके लिअे भी पैसोंका और सत्यका कितना व्यय करना पडता है। और तिसपर भी बहुत सारे मामलोंमें पैसोंकी जो घालमेल और गडबडी होती है, सो तो देखते ही बनती है। दूसरी तरफ़, साधुओं द्वारा चलनेवाली संस्थायें अज्ञात होती हैं, अुनके विवरण कभी नहीं छपते। न कोअी 'लाअिफ मेम्बर' होते हैं, न 'पैट्रन'। लेकिन फिर भी सारा खर्च बहुत हदतक बडी किफायतसे किया जाता है, और पाअी-पाअी काम आती है।

हिन्दुस्तानका अप्रतिम लोक-साहित्य अिन साधुओंकी ही कृपासे अब-तक ज़िन्दा है, और भविष्यमें भी ज़िन्दा रहेगा। धार्मिक संस्कृतिकी रक्षा, अभिवृद्धि, विस्तार और सुधारके लिअे दुनियामें अितनी अुन्नत, सस्ती और विश्वासपात्र व्यवस्था और कहीं न मिलेगी।

अैतिहासिक अेवं भौगोलिक प्रमाण अुपस्थित करके पुस्तकें लिखने-वाले विद्वानोंने हिन्दुस्तानकी राष्ट्रीय अेकता भले ही साबित की हो, लेकिन अुस राष्ट्रीय अेकताके निर्माणका श्रेय तो साधुओंको ही है। पुराने ज़मानेमें हरअेक प्रजाहित-दक्ष राजा, अपनी राजधानीमें किसी साधुके पधारते ही अुसके दर्शनोंको जाता था, और दूर-दूरके प्रदेशोंका क्या हाल है, लोगोंकी

कैसी स्थिति है, वगैरा बातोंकी पूरी-पूरी जानकारी अुससे प्राप्त करता था। और वह साधु भी राजधानीसे विदा होते समय राजाको आशीर्वाद देने जाता था, और अुसके राज्यमें जो कुछ देखा-भाला हो, सो सब साफ़-साफ़ कह देता था। अिस प्रकार दीन-रंक प्रजाकी पुकार और फरियाद भी अैसे निःस्वार्थ-से-निःस्वार्थ वकीलकी मारफत राजाके कानोंतक पहुँच जाती थी; राजाके अहलकारोंपर यह अेक ज़बरदस्त अंकुश रहता था; और कीर्त्तिका अभिलाषी हरअेक राजा भी साधुकी धर्मबुद्धिको जँचने और सन्तोष देनेवाली राज्य-व्यवस्था बनाये रखनेकी चिन्तामें रहता था।

साधु जब गाँवोंमें विचरण करता, तो ग्राम-देवताके मन्दिरमें या किसी पेड़ तले अपनी धूनी रमाता। वहाँ अुससे गाँवके लड़के क़िस्से-कहानियों द्वारा लोक-जीवन और भूगोलका ज्ञान हासिल करते थे; व्यापारियोंको व्यापारकी जानकारी मिलती थी; शूरवीरोंको मालूम हो जाता था कि अुनकी बहादुरीकी क़द्र कहाँ हो सकती है; गाँवकी पुरखिनोंके दवा-दारू-सम्बन्धी ज्ञानमें वृद्धि होती थी; दुखियोंकी बीमारी दूर होती थी; और कअी दफा गाँवके पुराने मन्दिर या धर्मशालाका जीर्णोद्धार भी हो जाता था। तितली जिस तरह अेक फूलसे दूसरे फूलपर फुदककर सारे पौधोंको सुफलित करती है, अुसी तरह साधु भी अेक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशमें भ्रमण करके संस्कृतिका लेन-देन करनेवाले बनजारे बनते हैं, और देश-देशमें संस्कृतिकी मण्डियाँ खोल देते हैं। समाजके अुच्च और संस्कारी वर्गके लोग गृह-लोलुप बन गये, अुनमें संयमका स्वाद न रहा, और अुसके फल-स्वरूप साधुओंमें भी अच्छे लोगोंकी संख्या कम होने लगी। समाज निठल्ला, विषयासक्त और लालची बन गया; साधुओंका पालन सिर्फ़ अिसी ग़रज़से होने लगा कि अुनकी क़द्र किये बिना धर्मका पुण्य पल्ले पड़ता रहे; फलतः समाजके साथ-साथ वह वर्ग भी गिर गया। अब हम दूसरोंकी टीका-टिप्पणीसे प्रभावित होकर अुस वर्गका नाश करनेपर अुतारू हो गये हैं।

अिस तरह हमने अपनी संस्कृतिकी प्रत्येक अुच्च और अुदात्त संस्थाको प्राणोंके अभावमें सड़ने-गलने दिया है, और आज अुसे सुधारनेके बदले अुसे नष्ट करके हम असंस्कारी और असंगठित स्थितिसे ही चिपटे रहना चाहते हैं। यूनान, रोम, मिस्र आदि राष्ट्र मिट चुके हैं; अकेला

हिन्दुस्तान जिन्दा है; अिस बातपर गर्व करनेवाले हम लोगोंको याद रहे कि हिन्दुस्तानके जिन्दा होनेका अर्थ यह है कि अबतक हिन्दुस्तान अपनी पुरानी मगर ताजी संस्कृतिसे पैदा हुआी संस्थाओंको टिकाये हुअे है, और अुन्हें सुधार रहा है। जहाँ ये संस्थायें टूटीं, तहीं यह समझिये कि हिन्दुस्ताननें कब्रस्तानमें प्रवेश किया!

मेरे मनमे अिसी तरहके विचारोंकी धमाचौकड़ी मच गयी। फलतः हम खगमरा पहाडीसे वापस कब आये, रास्तेमें लाला बदरीशा ने क्या पूछा, पोस्ट मास्टरके साथ और कौन-कौन थे, वगैरा बातोंकी तरफ मेरा ध्यान बिलकुल ही न गया। हिमालयकी हवा ध्यानके लिअे अनुकूल है, लेकिन अुस ध्यानका भंग करनेवाली दो बडी जबरदस्त चीजें वहाँ है — अेक टण्ड और दूसरी भूख। दोनोंने मुझपर अेक-सा हमला किया था, अिसलिअे अुन दोनोंसे अेक साथ अपनी रक्षा करनेके लिअे हम दौड़ते-दौड़ते अपने रसोअीघरमे दाखिल हुअे।

१५

पदमबोरी

साधुओंमे भी जीवनके दो आदर्श होते है। लेक्चरबाज़ोंके लिअे हमें फटकार सुनानेवाले खाकी बाबा गरीबोंको अन्न-दान करके, बीमारोंको दवा-पानी देकर और दूसरे कअी प्रकारोंसे समाज-सेवा करते थे। कुछ साधु अिन दोनों कामोंको भी अुपाधि-रूप मानते हैं। अुनके विचारमें साधुओंको तो केवल आत्मनिष्ठ रहना चाहिअे। परोपकारके लिअे भी किसी तरहका परिग्रह न करना चाहिअे। अुनका सूत्र है —

धर्मार्थं यस्य वित्तेहा वरं तस्य निरीहता।
प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम्॥

दान करनेके लिअे वित्तकी अिच्छा रखनेकी अपेक्षा बेहतर यह है कि अुसका नाम ही छोड़ दें। कीचड़मे हाथ डालकर फिर अुसे धोनेकी अपेक्षा कीचड़से दूर रहना क्या बुरा है?

यह नहीं कि अैसे लोग समाजके प्रति अुदासीन होते हैं, या अुनमें दयाका अभाव होता है। वे कहते हैं—'तुम प्रवृत्तिको भली-भाँति पहचान नहीं पाये हो। प्रवृत्तिमात्र बन्धनकारी है। और वह जितनी सात्विक, अुतनी ही अधिक बन्धनकारी होती है। क्योंकि अुसका बन्धन बन्धनके रूपमें प्रतीत ही नहीं होता, और जल्दी छूटता भी नहीं। प्रवृत्तिके ही साधनों द्वारा तुम दुनियाका भला किस तरह कर सकोगे? केवल अुपदेश करनेके लिअे न जानेमें भी दयाका अभाव नहीं। प्रवृत्तिमें फँसे रहनेके कारण आप अिस बातको देख नहीं पाते कि आपका अुपदेश अधिकतर निष्फल होता है। जिस आदमीको आपके अुपदेशकी ज़रूरत होगी, वह ख़ुद आपके पास चला आवेगा। यह अीश्वरी योजना है। आपके अुपदेश देते फिरनेमें अथवा समाज-सेवाका पेशा लेकर बैठ जानेमें अनादि कालसे विश्वकी यथातथ्य रचना करनेवाले प्रभुके विषयमें कितनी अश्रद्धा है, सो आपकी समझमें क्यों नहीं आती? प्रसंगवश जो अुपदेश करना पड़ जाय या किसीकी जो सेवा करनी पड़ जाय, अुसे सुचारु-रूपसे करके छुट्टी पानी चाहिअे। लेकिन जबतक आप त्रिगुणोंमें फँसे हैं, तबतक स्नेह, दया आदि सात्विक गुणोंके विकासके लिअे चाहे थोड़े दिन समाज-सेवा करें, लेकिन यह साधन है, चित्त-शुद्धिका अुपाय है। याद रहे कि अिसके द्वारा हमें मोहसे मुक्ति नहीं मिल सकती। अपने सौभाग्यसे अैसी वृत्तिवाले अेक साधुके दर्शन हमें हुअे। यहाँ वह प्रसंग देता हूँ।

अलमोड़ेमें हम लगभग पन्द्रह दिन रहे। पन्द्रह दिनोंमें हमने ख़ूब देखा, कअी अच्छे-अच्छे आदमियोंसे मिले और क़ुदरतसे भी बातचीत की। स्वामी विवेकानन्द यहाँ जिनके पास रहते थे, अुनसे मिलकर स्वामीजीके विषयमें बहुतसी बातें जानीं। लेकिन वह सब यहाँ नहीं लिखा जा सकता।

'साधु चलता भला'; अिसी तरह यात्रा-वर्णन भी झट-झट आगे-आगे न बढ़े, तो तबियत अुकता जाती है। हमें भी अुत्तराखण्डकी यात्रा करनेकी जल्दी थी, अिसीलिअे अनुकूल समय देखकर हम अलमोड़ेसे रवाना हुअे। अलमोड़ेसे वापस काठगोदाम जाकर वहाँसे रेल द्वारा हरद्वार और हरद्वारसे अुत्तराखण्डकी यात्रा; यह क्रम हमने अपने लिअे निश्चित किया

था। लौटते हुअे मुक्तेसर होकर जानेका हमारा विचार था। क्योंकि मुक्तेसरके पास सोमवारगिरि बाबा नामक अेक साधु रहते थे। अुनके दर्शन करनेकी मनीषा थी।

सोमवारगिरि जहाँ रहते थे, अुस स्थानको पदमखोरी कहते हैं। जगह सब तरहसे काव्यमय है। तीनों तरफ बड़े-बड़े पहाड और बीचमें बहती हुअी अेक नन्हीं-सी नदी। ये तीनों पहाड़ अितने अूँचे और अितने सटे हुअे है कि नदीके किनारे बैठकर अूपर देखिये, तो आकाशकी विशालता नष्ट होकर वह अेक त्रिकोणाकृति छत-सा प्रतीत होता है।

साँझ होते-होते हम पदमखोरी पहुँचे। रास्तेमें हम अुस घुमक्कड़ लडके हरखदेव, गीता सीखनेवाले भिश्नी, भले वकील हरिराम पाँडे, बूढ़े बदरीशा, गद्गद कण्ठवाले साअींजी दरजी, और बुढ़ापेमें पुत्र-प्राप्तिके आनन्दमें दीवाने बने हुअे पोस्ट मास्टर आदिके विषयमें बातें करते गये। अितनेमें हमारे घोडेवालेने (हमारा सामान-असबाब अिस घोड़े पर लदा था) कहा — "यह जो सामने नदीके अुस पार छोटासा मन्दिर दिखाअी देता है, वहीं महाराज रहते हैं।" हम पहले तो धर्मशालामें गये। वहाँ सारा सामान तरतीबसे जमा दिया, और फिर बाबाजीके दर्शनोंको निकले।

बाबाजीका नियम था कि दर्शनार्थीको हाथ-पैर धोकर व शुद्ध होकर दर्शनोंको जाना चाहिअे। लेकिन चूँकि वे नदीके अुस पार रहते थे, अिसलिअे अिस नियमका पालन अनायास ही हो जाता था। हम हाथ-पैर धोकर नदीके प्रवाहमें ही अेक बड़ी-सी चट्टानपर बैठ गये। सध्या-वन्दन थोडेमें निपटा लिया और आगे बढ़े। सामनेवाला किनारा चढ़कर बाबाजीके दर्शन करने गये। बाबाजी तो प्रकृतिकी ही मूर्ति थे। अुनके शरीरपर अेक लँगोटीके सिवा कुछ भी न था। सिरके बालोंकी जटायें बन गयी थीं, और अुनकी छोटी-छोटी लटें आँखों और माथेपर खेल रही थीं। हाथमें अेक चिलम थी।

हमने जाते ही भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। बाबाने भी अुतनी ही नम्रतासे प्रतिप्रणाम किया और मन्दिरके आहातेकी दीवारपर जाकर बैठ गये, और हम लोगोंको भी अपने पास आकर बैठनेको कहा। हम अुनके साथ समान आसन पर कैसे बैठते? नीचे अेक सीढ़ी थी, अुसी-

पर जाकर हम लोग बैठ गये। यह अुच्चनीच-भाव बाबाजीसे सहा न गया। वे तुरन्त सीढ़ीपर आकर बैठ गये। अिसपर हम लोग नीचे पड़ी हुअी अेक चटाअीपर जाकर बैठे। मगर बाबाजी यों हार माननेवाले न थे! वे बिलकुल खाली जमीन पर जाकर बैठे गये। अब क्या किया जाय? हमने भी चटाअी हटा दी। अिस पर बाबाजी बोले—"हे प्रभु, मैं तो तुममें अीश्वर देख रहा हूँ। मैं सवेरेसे बाट जोह रहा हूँ। ब्रह्मा-विष्णु-महेश—तुम मुझे दर्शन देने आये हो!"

सोमवारगिरिबाबासे हमारी जान-पहचान तो थी ही नहीं। हमारे आनेकी खबर भी अुन्हें किसीने नहीं दी थी। तिसपर भी अुस दिन सवेरेसे ही वे अपने पास बैठे हुअे लोगोंसे कह रहे थे—"आज कुछ लोग मुझसे मिलने आनेवाले हैं। मैं अुनकी बाट जोह रहा हूँ।" हमसे वहाँके अेक किसानने कहा कि अुस दिन दोपहरसे ही वे अपनी जगहसे अुठ-अुठकर दूरतक देखते और निराश होकर अपनी जगह आकर बैठ जाते। निराश होनेपर भी कहते—"नहीं, अैसा नहीं हो सकता। आज तो अुनको आना ही चाहिअे।" हमने कहा—"महाराज, हमारा घोड़ेवाला देरसे आया, वरना हम यहाँ कबके पहुँच गये होते।" बादमें यात्राकी बातें चलीं। सोमवारगिरिबाबाने कअी यात्रायें की थीं। अिसलिअे खाकीबाबाकी तरह वे भी जीते-जागते विश्वकोष थे। चाहे जिस प्रान्तका जिक्र कीजिये, वे वहाँका ब्यौरेवार वर्णन सुना देते थे। भाषा शुद्ध हिन्दी ही होती थी, अिसलिअे वे साधु कहाँके निवासी थे, अिसका अन्दाजा कोअी लगा न पाता था।

फिर भी खाकीबाबा और सोमवारगिरिबाबामें अुत्तर ध्रुव और दक्षिण ध्रुवका-सा अन्तर था। दोनों अेक ही जून खाते, दोनोंको लँगोटीके अलावा दूसरे कपड़ेकी जरूरत ही न पड़ती थी। लेकिन दोनोंके जीवन और जीवनके आदर्शोंमें बहुत फर्क था। खाकीबाबा अपना अेक मठ बनाकर रहते थे; अिधर सोमवारगिरिबाबा किसी जगह ज्यादा दिनतक रहते ही न थे। वे कहते—"अेक जगह रहनेसे अुस स्थानके प्रति और वहाँकी परिस्थितिके प्रति अेक तरहकी आसक्ति पैदा हो जाती है। खाकीबाबा तरह-तरहकी जड़ी-बूटियाँ अपने पास रखते थे। अतिथि, अभ्यागत और पथिकोंको

खिलाते-पिलाते थे; लेकिन सोमवारगिरिबाबा पूरे अपरिग्रही थे। न तो कुछ लेते थे, न देते थे। वे मानते थे कि यह प्रवृत्ति अुनके-जैसे विरक्तोंके लिअे है ही नहीं। जब हम खाकीबाबाके पास गये थे, तो अुन्होंने पहले हमें मिठाअी दी थी, और मेरे यह कहनेपर कि मैं चीनी नहीं खाता, अुन्होंने मेवा दिया था। यहाँ सोमवारगिरिबाबाने अपनी बाटीका अेक-अेक टुकड़ा हमें दे दिया। अितना पवित्र अन्न खानेका भाग्य हमेशा थोड़े ही प्राप्त होता है! अुसका स्वाद कुछ और ही था। सचमुच अितनी स्वादिष्ट रोटी मैंने और कहीं खायी नहीं। सोमवारगिरिबाबा अुसी दिन सबेरे आसपासके दो-चार गाँवके निष्पाप किसानोंसे भिक्षा माँगकर ताजा आटा लाये थे। अुसमें शुद्ध घी और शुद्ध पानी मिलाकर जंगलकी लकड़ियों पर बाबाजीने .खुद अपने हाथों वे बाटियाँ बनायी थीं। अुस बाटीकी पवित्रता और अुसकी मिठासका बखान कौन कर सकता है? अपने ही आहारमेंसे अतिथिको हिस्सा देनेकी वृत्ति सोमवारगिरिबाबामें थी, जब कि खाकीबाबामें अतिथिके अनुकूल साधन रखनेकी वृत्ति थी। खाकीबाबा देशी शक्करके बोरे खास कारखानेसे मँगाते थे; और अिधर जिस वक़्त हम सोमवारगिरिबाबाके पास पहुँचे थे, अुस वक़्त वे चोरीसे विदेशी शक्करका अुपयोग करनेके अपराधके लिअे अेक हलवाअीको .खूब खरी-खोटी सुना रहे थे।

जब हमने खाकीबाबाका अुल्लेख किया, तो अुनका नाम सुनते ही सोमवारगिरिबाबाने अुनके नामको श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया, और कहा — "वे तो श्रेष्ठ साधु हैं। तपस्वी हैं। .खूब लोक-कल्याण करते हैं।" बादमें फिर कहा — "हाँ! वे राजयोगी हैं। .खूब प्रवृत्तिमें पड़ते हैं। यहाँ तो निःसंगी आदमी ठहरे। यह अेक व्याघ्रचर्म और यह कमण्डलु — बस, यही मेरा परिग्रह है। अगर यहाँ मिलने-जुलनेवाले ज्यादा आने लगेंगे, तो यहाँसे भी गायब हो जाअूँगा। जी चाहता है कि अिस परिग्रहको भी फेंक दूँ।" अिसके बाद अुन्होंने अपनी पहचानके अनेक साधुओंकी चर्चा की। अुनके कार्योंका परिचय कराया, और अप्रत्यक्षरूपसे यह भी बता दिया कि साधुओंमें भी जुदे-जुदे आदर्श होते हैं।

मैंने अुनसे कहा — "आप लोगोंको धर्मोपदेश देते हैं; मैं भी जब पाठशालामें काम करता हूँ, तो लड़कोंको धार्मिक शिक्षा देता हूँ। फर्क

अितना ही है कि मैं पढ़ी हुअी बातें कहता हूँ, और आप अनुभवकी। मुझे भी कुछ सूचनायें दीजिये!"

अुन्होंने कहा—"मैं जानता हूँ कि तुम लड़कोंको भगवद्गीता सिखाते हो, और अुसका अर्थ समझा देते हो। लेकिन अिसमें श्रेय नहीं है। भगवद्गीता जो निवृत्तिधर्म सिखाती है, अुसके लायक़ तो बड़े-बूढ़े भी नहीं होते, तो फिर भला लड़के कहाँसे हों? 'कर्मण्यकर्म यः पश्येद्-कर्मणि च कर्म यः' जैसे अथवा

कर्मणोह्यपि बोद्धव्यं, बोद्धव्यंच विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः॥

अैसे श्लोक लड़कोंको तुम किस तरह समझा सकते हो? लड़कोंके सामने निष्काम कर्मकी बातें करनेसे पहले अुन्हे सकाम कर्त्तव्य कर्मकी अच्छी शिक्षा दो। तुम्हारे वेदान्तसे लड़के निकम्मे हो जाते है। अुनकी संकल्प-शक्ति नष्ट हो जाती है। जिस बातका अिरादा करते है, अुसे अंजाम नहीं दे पाते, और नाहक़ सारा दिन बकझक ही किया करते हैं। गीताजीका अुपदेश तो योग्य व्यक्तियोंको ही करो।"

यह तो मुझे अेक नयी दिशाका दर्शन हुआ। मैं विचारमें डूब गया। मैंने पूछा—"तो क्या लड़कोंको गीता पढ़ाये ही नहीं?" अुन्होंने कहा—"नहीं, मैं अैसा नहीं कहता। लड़के गीताजीके श्लोक कण्ठ जरूर करे। मै सिर्फ यह कहता हूँ कि अुन्हे निवृत्तिधर्मकी दीक्षा न दो।"

अिसके बाद अुत्तराखण्डकी यात्राके विषयमें हमने अुनसे ख़ूब पूछ लिया। जैसे-जैसे बातें होने लगीं, वैसे-वैसे हमें प्रतीति होती गयी कि बाबाजी कितने अधिकारी पुरुष है। बड़ी राततक हम वहाँ बैठे, और आखिर वन्दन करके धर्मशालाको लौटे। धर्मशालामें अितनी भीड़ हो गयी थी कि अगर हम पहलेसे ही अपने बिस्तर लगाकर न गये होते, तो हमें सोनेकी जगह भी न मिलती।

सवेरे जल्दी अुठकर फिरसे महाराजके दर्शन करके अुनकी आज्ञा लेने गये। बाबाजी ध्यान-विसर्जन करके अुठ रहे थे कि हम लोग पहुँचे। बातचीत शुरू करने ही वाले थे कि अितनेमें वहाँ अेक नेवला आया। बाबाजीने कहा—"यह भगवद्-दर्शन है।" फिर बाबाजीने हमें चाय

दी। मैंने कहा — "मैं तो चाय नहीं पीता।" जवाब मिला — "यह कोअी तुम्हारे मुल्ककी चाय नहीं है। यह हिमालयकी चाय है। अिसमें न शक्कर है, न दूध। यह थोड़ी-सी पी लो, यात्रामें फायदा करेगी।' चायके साथ अुन्होंने अेक बादामके तीन टुकड़े करके प्रसादके रूपमें हरअेकको अेक-अेक टुकड़ा दिया। दूसरी भी अेक विचित्र बूटी (भंग नहीं!) चायमें डाली। हमने श्रद्धा-पूर्वक प्रसाद मानकर चाय ली; महाराजको प्रणाम किया और आज्ञा माँगी। अुन्होंने प्रेमसे हमारे कन्धोंपर हाथ रखा और कहा — "सर्वत्र परमात्मा है!"

१६

गोहत्या

पदमबोरीसे मुक्तेसर। कितना अन्तर है! अुन्नति और अवनति! जैसा कि पहले कह चुके हैं, पदमबोरी तीन पहाड़ोंके बीच अेक पहाड़ी नदीके किनारे बसा हुआ महादेवजीका स्थान है। वहाँसे हमें मुक्तेसर जाना था। मुक्तेसर कम-से-कम सात हज़ार फुटकी अूँचाअीपर है। अुसे मुक्तेसर क्यों कहते हैं, अिसकी हमने चर्चा की। मैंने कहा — "मुक्तीश्वर अथवा मुक्तकेश्वरपरसे यह नाम पड़ा होगा।" बाबाजीने कहा — "वहाँ मोतीके समान कोअी तालाब होगा; अुसपरसे मोतीसर नाम पड़ गया होगा। या मौक्तिकेश्वर भी हो सकता है।" हमारे साथ अल्मोड़ाके भट्टजी थे। अुन्होंने कहा — "अक्सर नाम तो सादे ही होते हैं। बादमें आप-जैसे भाषाकोविद अुसी नामको कोअि-न-कोअी सुन्दर रूप दे देते हैं।" मूल नाम क्या रहा होगा, हम नहीं जानते। यहाँ तालाब तो नहीं है, सिर्फ मुक्तेश्वर महादेव हैं। ठेठ पर्वतकी चोटीपर बिराजे है। वह भैरव घाटी भी है। मुक्तेसरके प्राकृतिक दृश्यको 'स्वर्गीय' कहनेमें कोअी अत्युक्ति तो है ही नहीं, अुल्टे अल्पोक्ति हो सकती है। लेकिन — आजकल हिमालयमें भी 'लेकिन' कहनेका प्रसङ्ग आता है —

आज यह स्थान नरकसे भी अधिक बुरा हो गया है ! नीचे स्वर्ग और अूपर नरक — अलङ्कारशास्त्री अिसे कौनसा अलङ्कार कहेंगे ?

मुक्तेसरमें सरकारी बैक्टेरिओलॉजिकल डिपार्टमेण्ट (जन्तुशास्त्र-विभाग) है। अिस विभागके अन्तर्गत भयानक गोहत्या होती है। अिसका क्या कारण है? गोरी फौजकी गोमांसकी मॉग पूरी करना? नहीं। हिन्दुस्तानकी गरीब गायों और बैलोंपर क्रूर मानवका आहार बननेके अलावा तरह-तरहकी बीमारियोंकी दवा करनेकी जिम्मेदारी आ पडी है। यूरोपियन् लोगोंने देखा कि अुनके बहुतसे घोड़े 'रिण्डर पेस्ट' नामकी बीमारीसे मरते है। अुसका अुपाय अुन्हें यह मिला कि बैलके बदनसे अुसका खून लेकर अुसका 'सीरम' बनाया जाय और वह घोडेके बदनमें दाखिल किया जाय। अैसे फालतू पशु तो हिन्दुस्तानमें ही मिल सकते हैं! वहॉ मैंने अेक व्यक्तिसे सुना कि शुरूके सोलह वर्षोंमें 'रिण्डर पेस्ट'के टीकेकी सारी दुनियाकी मॉग पूरी करनेके लिअे ४० हज़ार बैलोंका .खून निकाला गया था। .खून निकालनेकी यह क्रिया बहुत ही क्रूर होती है। पहले बैलको .खूब खिला-पिलाकर पुष्ट करते हैं। फिर अुसकी अेक नस काटकर अेक-दो डोल .खून निकाल लेते हैं। बादमें मरहमपट्टी करके जानवरको दुरुस्त करते हैं। थोड़े दिन बाद फिर पहलेकी तरह .खून निकाल लेते हैं। तीसरी बार सारा .खून निकाल लिया जाता है, क्योंकि अुस वक्ततक जानवर अितना नि.सत्त्व हो जाता है कि चौथी बारके लिअे अुसके शरीरमें .खून ही नहीं रह जाता!

हम सॉझके समय मुक्तेसर पहुँचे। वहॉ अेक सज्जनके घर रातको आराम किया। भोजनका प्रबन्ध अुन्होंने बहुत भक्तिपूर्वक और अच्छे ढंगसे किया था, परन्तु भात बिल्कुल पका न था। बातचीतमें मालूम हुआ कि पहाड़ी लोग अैसा ही भात पसन्द करते हैं। अगर हमें पहाड़ी भूख न लगी होती, तो अितना चावल चबानेकी मेहनत करनेसे दॉतोंने अिनकार ही कर दिया होता। भुजी (भाजी) बड़ी मजेदार बनी थी। अुन सज्जनके दीवानखानेकी चारों दीवारोंका निचला हिस्सा काठका था। सो भी तकियेकी तरह तिरछा। अगर अिस ठण्डे प्रदेशमें दीवारसे टिककर बैठना हो, तो अैसी कोअी-न-कोअी तरकीब आवश्यक है।

दूसरे दिन सवेरे हम पहले जन्तुशास्त्रका महकमा देखने गये। हमारे यजमान हमें वहाँकी सारी बातें समझाते थे। मैं शून्यमनस्क होकर सुन रहा था। मेरी दृष्टिके सामने तो गोहत्याका कल्पना-चित्र ही खड़ा होता था। अेक पहाड़ीपर अेक बुर्ज था। अुसपर अेक बड़ा भारी घण्टा टँगा हुआ था। मैंने पूछा — "यह किस लिअे है?" अुन्होंने कहा — "यदि जंगलमें आग लग जाय, कोअी दुर्घटना हो जाय या दूसरा कोअी सङ्कट आ पड़े, तो यह घण्टा बजानेसे सब लोग अिकट्ठा होते हैं।" जहाँ चालीस हजार गोकुलका संहार होता है, वहाँ दूसरे किसी सङ्कटकी जरूरत ही क्या है? जी चाहा कि अुस बुर्जपर चढ़कर और अुस घण्टेको बजाकर मैं बाअीस करोड़ हिन्दुओंको वहाँ जमा करूँ, और यदि वे न सुनें तो हिमालयमें अदृश्य रूपसे विचारनेवाले तैंतीस करोड़ देवताओंको गोमाताका आर्तनाद सुनाअूँ।

मनमें यह विचार चल रहा था, अितनेमें हम मुक्तेश्वर महादेवके पास जा पहुँचे। वहाँ मनको कुछ आराम अवश्य मिला। मुक्तेश्वर महादेवके पास भैरव घाटीवाला स्थान है। पहाड़पर जहाँ अूँचे-से-अूँचा शिखर हो और पास ही नीचे अेकदम सीधा कगार हो, अुस स्थानको भैरवघाटी कहते हैं। प्राचीन कालमें और आज भी भैरव सम्प्रदायके लोग प्रायः अैसे स्थानपर भैरवजीका जप करते-करते अूपरसे नीचे कूद पड़ते हैं। माना यह जाता है कि अिस तरह आत्महत्या करनेमें पाप नहीं, अपितु पुण्य है। यह मान्यता आजके कानूनके अनुसार गलत भले ही हो, परन्तु मानसशास्त्री अुसके आधारभूत तत्त्वको सहज ही समझ सकते हैं। दुनियासे सब तरह निराश होकर कायरतावश किसी मनुष्यका आत्महत्या करना, और प्रकृतिके विशाल, अुच्च, अुदात्त तथा रमणीय सौंदर्यको देख, तदाकार होकर प्रकृतिके साथ अेक-रूप होनेकी अिच्छाका प्रबल हो अुठना, किसी तरह प्रकृतिका वियोग सहा ही न जाना, और अैसेमें किसी मनुष्यका अिस क्षुद्र देहके बन्धनको भूलकर सात्म्य प्राप्त करनेके लिअे अनन्तमें कूद पड़ना — ये दो बातें नितान्त भिन्न हैं। दोनोंका परिणाम चाहे अेक ही हो। हर तरहके विनाशको हम मृत्युके अेक ही नामसे पुकारते हैं; परन्तु वस्तु अेक ही नहीं होती। कअी बार मरण जीवन-रूपी नाटकका

विष्कम्भक होता है, और कभी बार वह अुस नाटकका भरत-वाक्य— जीवन-साफल्य—होता है।

मनुष्यकी आशा दुरन्त कहलाती है। सचमुच मनुष्यकी आशाका पार नहीं है। मनुष्यकी हरअेक आशाको सफल बनानेकी शक्ति जीवनमें नहीं है। जीवनकी समृद्धिकी भी मर्यादा होती है। मनुष्यकी आशाके सामने जीवन दरिद्री है। लेकिन मरणकी समृद्धि आशाको तृप्त करनेमें समर्थ होती है। जहाँ जीवन हार जाता है, वहाँ मरणकी जीत होती है। जीवन असख्य बार मनुष्यको निराश करता है। मरणके पास निराशा ही नहीं।

हम भैरव घाटीपर चढ़े। वहाँ भी गोहत्यावाली बात मनको व्यग्र कर रही थी। बेचारे बैल नाहक मारे जाते हैं। अेक दृष्टिसे देखनेपर अिन बैलोंका आत्मयज्ञ स्वात्मार्पणकी पराकाष्ठा सूचित कर रहा था। हिन्दुस्तानके जानवर मरें और दुनियाके—सारी दुनियाके—घोड़े, खच्चर, आदि अनेक प्रकारके प्राणी भयङ्कर रोगोंसे बचें, यह कोअी साधारण पुण्य नहीं कहा जायगा। परन्तु यह कौन स्वेच्छापूर्वक किया गया बलिदान है? आज मेरा भारत भी अमर्याद आत्माहुति दे रहा है। भारतके भरोसे ब्रिटिश साम्राज्य टिका हुआ है। भारत स्वयं मरकर असंख्य लोगोंको जिलाता है। परन्तु अिसका पुण्य भारतके पल्ले नहीं पड़ता। दुर्बलता और अज्ञानवश किया गया त्याग किस कामका? 'न च तत् प्रेत्य नो अिह'।

बाबाजीने भैरवके छोटे-से मन्दिरका घण्टा बजाया और लौटनेकी सूचना दी।

१७

धर्मशालामें ऋषिकुल

मुक्तेश्वरसे हम काठगोदामके अपने पुराने रास्ते पर आये। भीमतालके फिर दर्शन किये, और हिमालयके पहाड़से अुतरकर मानवी सृष्टिमें प्रवेश किया। रास्तेमें पूर्व परिचित स्थान देखकर मनमें कुछ और ही भाव अुत्पन्न होने थे। अल्मोड़ा जाते समय हिमालयका प्रथम दर्शन हुआ था। अितनी विशालता और अुत्तुंगता पहली बार ही देखी थी। लौटते वक्त यह सब परिचित-सा लगता था। फिर भी अुसका रस कुछ कम नहीं हुआ था। पहलेका रस अपूर्वताका था, अबका रस परिचयका था। जाते समय जिन-जिन झरनों और वृक्षोंने हमारा सत्कार किया था, अुनसे फिर मिलते समय हृदयमें कृतज्ञताकी अुमंग अुठे बिना कैसे रहती? मैं परिचित वृक्षोंसे मिला। परिचित झरनोंका, स्वाभाविक तृष्णासे नहीं, किन्तु प्रेमतृष्णासे, पान किया। जाते वक्त जिन पुलोंपर बैठकर हमने थकावट दूर की थी, अुन पुलोंके फिर आनेपर अुनपर अेक-दो मिनट न बैठते, तो अपनेको कृतघ्नता दोषके पात्र समझते।

रास्तेमें स्वामीके साथ संस्कृत साहित्यकी चर्चा शुरू हुअी। मैंने कहा — "गगनचुम्बी पेड़ोंके झुण्डोंकी यह घनी झाड़ी देखकर मुझे बाणभट्टकी साहित्य शैलीका स्मरण हो आता है। हर स्थानमें अपूर्वता और अुदारता भरी हुअी है। परन्तु वह अतिशयताके कारण अपना सौन्दर्य छिपानेमें ही खप जाती है।" अिसके बाद संस्कृत कवि और राजाश्रय का सवाल छिड़ा। कालिदास राजाश्रयी कवि था, परन्तु भवभूति लोकाश्रयी कवि हुआ। कालिदास पुष्पक विमानमें बैठकर अथवा मेघका वाहन बनाकर विहगम दृष्टिसे भारतवर्षका अवलोकन करता है। लेकिन भवभूति वल्कलधारी राम, लक्ष्मण और जनक-तनयाके साथ दण्डकारण्य और पंचवटीके अरण्योंमेंसे रास्ता निकालता हुआ धीरे-धीरे पैदल चलता है। दोनोंकी शैलीमें यही भेद है। भवभूतिकी शैली राजकुमारकी तरह

'धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम्' है, जब कि कालिदासकी वर्णनशैली शकुन्तलाके भावकी नाअीं 'न विवृतो मदनो न च संवृतः'-जैसी है। वनश्रीको देखकर संस्कृत कवियोंकी याद आयी। और अुस प्रसंगसे लोकाश्रयका विचार करते हुअे राजाश्रयकी-निन्द्य रीतिसे निन्दा करनेवाले त्रिल्हणकी याद आयी। परन्तु अुसी क्षण स्मरण हुआ कि संसारमें विरक्त साधकोंको संस्कृतका अैसा काव्य-रस शोभा नहीं देता। दोपहर हो गयी थी। सूर्यनारायणने और अेक आँख खोल दी थी। बाबाजीने कहा —"पिपासितैः काव्यरसो न पीयते।" नीचे घाटीमें रामगंगा प्रचण्ड गड़गड़ाहट करती हुअी दौड़ रही थी। परन्तु अुसका पानी हमारे लिअे तो शरत्कालके मेघके समान दुष्प्राप्त ही था। स्वामी बोले—"अिस जंगलकी शोभा देखकर मुझे बाणभट्टकी कादम्बरीका स्मरण नहीं होता, बल्कि मुझे तो रामगंगाकी यह गर्जना सुनकर कुलाबा स्टेशनके दस-बीस अेंजिनोंका कोलाहल याद आता है।"

अेंजिनका नाम निकालते ही तुरन्त स्मरण हुआ कि प्राकृतिक सृष्टि छोड़कर हम मानवी सृष्टिकी तरफ अग्रसर हो रहे हैं। यदि वहाँ अग्निरथके समयका ध्यान न रखा, तो काम न चलेगा। मैंने अण्टीसे घड़ी निकालकर देखी और बाबाजीसे कहा—"बाबाजी दौड़ लगाओ, नहीं तो हम समयपर काठगोदाम नहीं पहुँच पायेंगे।" तीनों दौड़े, और मुश्किलसे स्टेशन पहुँचे ही थे कि अितनेमें रेलगाड़ीने सीटी दी और वह हमारे देखते हँसती-हँसती निकल गयी। जरासेके लिअे हम गाड़ी चूक गये। हमें रेलगाड़ीके निकल जानेका कुछ भी बुरा न लगा। लेकिन हमें परेशानीसे बचानेके विचारसे हमारा जो कुली आगे दौड़ता आया था अुसका मुँह अुतरा देखकर हमें दुःख हुआ। फिर भी हम हँस पड़े, और अुससे कहा—"चलो भाअी, अभी तो काफी दिन है। यहाँ पड़े रहनेसे तो बेहतर है कि हल्द्वानी चलकर रात वहीं बितायें।" हल्द्वानी काठगोदामसे पहला स्टेशन है। व्यापारकी अेक छोटी-सी मण्डी है। वहाँ पैदल जा पहुँचे। 'खाया-पिया और (स्वप्न-सृष्टिपर) राज किया।'

स्वप्न-सृष्टिमें जानेसे पहले कल्पना-सृष्टिमें जानेका अेक प्रसङ्ग आया। हम धर्मशालामें जगह प्राप्त करके रसोअी बना रहे थे। धर्मशाला यानी

विविधजन-समाज। वहाँ तीनों लोकोंकी चर्चा चलती है। धर्मशालामें वैरागी आते हैं, व्यापारी आते हैं, सरकारी अफ़सर आते हैं; वे पुराने ज़मींदार घोड़ेपर पुराना जीन कसकर तीर्थयात्रा करने आते हैं, जिन्हें यह सुध नहीं कि पुराना ज़माना बीत चुका है; अैसे नवजवान भी आते हैं, जो जानतेतक नहीं कि पुराने ज़माने-जैसी कोअी चीज़ थी भी या नहीं; भिखारी भी आते हैं, और भिखारियोंसे भी गये-बीते पुलिसवाले आते हैं। मुसाफ़िर आपसमें अथवा अपने कुलियोंसे, ग्राहक दुकानदारोंसे, दुकानदारकी स्त्री अपने लड़कोंसे, पुलिसके जवान भिखारियोंसे, और कुत्ते अेक-दूसरेसे आठ बजेतक लड़ लेते हैं। आठ बजनेपर पहले क्षुधा शान्त होती है, बादमें चूल्हे शान्त होते हैं; अधिकांश दीये भी शान्त होते हैं; (क्योंकि अेक पैसेमें दीया, बत्ती और तेल देनेवाले दूकानदारके पास आठ बजेतकका ही बजट होता है।) और अिसके पश्चात् विरोध शान्त होकर वार्तालाप शुरू होता है। धर्मशालाका यह अन्तरराष्ट्रीय क़ानून है कि आठ बजेके बाद अेक बार सुलह हो जानेपर कोअी किसीके साथ न लड़े।

तुरन्त ही मुसाफ़िर-मुसाफिरमे वार्तालाप शुरू हो जाता है। बावा लोग देश-देशान्तरका हाल और अुसके साथ अपनी टीका-टिप्पणियाँ पेश करते हैं। जहाँ लड़के हों, वहाँ बादशाह और बीरबल तो जरूर होंगे ही। स्त्रियाँ हमेशा यात्राकी ही बातें करेंगी, और अगर अेक ही गाँव की हों, तो सास-बहूके सनातन संग्रामकी बातें करेंगी। हिन्दुस्तानके किसी भी प्रान्तकी स्त्रियाँ दूसरे किसी भी प्रान्तकी स्त्रियोंसे धर्मशालामें बातचीत कर सकती हैं। भाषाकी अड़चन तो सुशिक्षित लोगोंके लिअे होती है। स्त्रियाँ यानी पुरानी दुनिया। यहाँ विचार, भावनायें, वहम, रीति-रिवाज और आदर्श सब अेक ही होते हैं। फिर बातचीतमें कौनसी बाधा हो सकती है? जब दो अंग्रेज़ मिलते हैं, तो वे अुस दिनकी हवाके बारेमें चर्चा करने लगते हैं; अिसी प्रकार जब दो स्त्रियाँ मिलती हैं, तो तुम्हारे बाल-बच्चे कितने हैं, लड़कियाँ कहाँ-कहाँ ब्याही हैं, अुन्हें ससुरालमे सुख है या दुःख, घरकी पुरखिनने तीर्थयात्रा की है या नहीं, आदि बातें होने लगती हैं। दुकानदारकी स्त्री अिस चर्चामें शामिल होकर अपने दुःखकी कहानी पाँच हज़ार छः सौ बारहवीं बार सजल आँखोंसे सविस्तर, ज्योंकी त्यों,

सुनाती है। और अधिकतर अुसका यह वर्णन अकारथ नहीं जाता। प्रेमल यात्री — दुष्ट दुकानदार द्वारा ठगे गये यात्री — दुकानदारकी स्त्रीका दुःख देखकर और मनमें अिस बातका सन्तोष मानकर कि वह भी अुन्हींकी तरह दुकानदारसे द्वेष करती है, विदा होते समय अुसे कुछ-न-कुछ दे जाते हैं। दुकानदारोंकी भी हरअेक प्रान्तके विषयमें अपनी राय बनी होती है, और वे भी अुसे ठीक बावा-बैरागियोंकी तरह ही स्पष्टतासे प्रकट कर देते हैं, क्योंकि पिनलकोडकी कोअी भी धारा बावा-बैरागियों तथा दुकानदारोंके लिअे नहीं है।

जब देशी रियासतोंके रअीस धर्मशालामें टिकते हैं, तो रियासतोंके तारतम्यकी चर्चा छिड़ती है, और दरबारके भीतरी षड्यंत्रों तथा प्रपंचोंका भेद वे 'सिर्फ आपसे' कहते हैं। वे अितने बेवफा नहीं होते कि चाहे जिससे अपने दरबारकी किम्वदन्तियाँ कहते फिरें, लेकिन 'आप' तो खानदानी आदमी ठहरे। 'आपसे' अैसी बातें कहनेमें भला क्या हर्ज हो सकता है?

हमें अेक देशाभिमानी और सनातनधर्माभिमानी व्यापारीसे पाला पड़ा। हस्तिनापुरकी तरफ अुनका अपना अेक 'गुरुकुल' था — नहीं, नहीं, 'गुरुकुल' नहीं, 'ऋषिकुल'। 'गुरुकुल' तो आर्यसमाजियोंके होते हैं। अतअेव सनातनियोंके तो ऋषिकुल ही हो सकते हैं, और वैष्णवोंके आचार्यकुल। बावा-बैरागी हों, तो अुनके 'मुनिमण्डल' या 'साधु-आश्रम' होते हैं। और गंगा-पुत्रोंकी संस्था हो, तो वह होगी 'पण्डाकुमार महाविद्यालय'। परन्तु यह सब ज्ञान मुझे हरद्वार जानेपर हुआ। हस्तिनापुरके व्यापारीने कहा — "पारसाल ही हमारा ऋषिकुल स्थापित हुआ था। पर अबतक हमें कोअी अध्यापक नहीं मिला है। अेक ब्राह्मण फिलहाल काम चला रहे हैं; परन्तु लड़के अैसे हैं कि अुनके कान काट लें। आपके-जैसा कोअी अंग्रेजी पढ़ा-लिखा — ग्रेज्युअेट — साधु वहाँ आवे, तो लोगोंपर असर पड़े और प्रचारके लिअे जानेपर फण्ड भी अच्छा अिकट्ठा हो। आप आ जायें तो, हमें रोज़ आपके दर्शनोंका लाभ हो, 'भव बन्ध' कट जायँ, और सिड़ी आर्यसमाजी अदरक खाये हुअे चूहेकी तरह चुप हो जायें। हमने ऋषिकुल अिसीलिअे स्थापित किया है।

हमारे यहाँ दो आर्यसमाजी प्रचारक आये थे। अुन्होंने सनातन धर्मकी निन्दा करना शुरू किया। हमारे ऋषिकुलमें अैसा कोअी पण्डित न था, जो अुन्हें जवाब देता। अिसलिअे हमने अर्जेण्ट तार देकर हरद्वारसे तीन सनातनी अुपदेशक बुलवाये और अुन्हे अिस क़दर लड़ाया कि कुछ न पूछिये! तीन दिनतक शास्त्रार्थ हुआ!" मैंने बीचमें पूछा—"किस खास विषयको लेकर?" अुन्होंने कहा—"अजी साहब, आपके शास्त्रकी बातें हम क्या जानें? हम थोडे ही संस्कृत पढ़े हैं? लेकिन आखिर आर्यसमाजियोंको ही चुप होना पड़ा और हमारी जीत हुअी। विपक्षी तो नाहक कहते रहे कि जीत तो हमारी ही हुअी; लेकिन आप ही बताअिये कि अगर अुनकी जीत हुअी होती, तो भला अुनके पंडित चुप बैठते?"

अिस महायुद्धका वर्णन मैंने अुदासीनतासे सुना, यह देख अुनका मजा कुछ किरकिरा हुआ। अुन्होंने पूछा—"आप आर्यसमाजी तो नहीं हैं?" मैंने कहा—"जी नहीं, मैं तो कट्टर सनातनी हूँ।" अुन्होंने कहा—"तब तो आप जरूर हस्तिनापुर आअिये। हम आपके लिअे बढ़िया कुटी बनवा देंगे, अलग रसोअिया रख देंगे, और अंग्रेजी समाचार-पत्र मँगवा देंगे। आपके व्याख्यानोंका लाभ हमें मिलेगा।" मैंने कहा—"दूसरा कोअी संकल्प न होता, तो शायद मैं आ जाता; परन्तु मुझे तो अुत्तराखण्डकी यात्रा करनी है और तदुपरान्त पुरश्चरण करना है।"

अपने सारे विचार अुनपर प्रकट करनेकी हिम्मत मुझे कहाँसे होती? और अगर प्रकट करता भी, तो वे कौन अुन्हें समझनेवाले थे?

दूसरे दिन हम रेलमें बैठे और चले। हिमालयकी यात्राके बाद रेलकी यात्रा केवल नीरस ही नहीं, असह्य भी हो जाती है। अेक-अेक खेतके अन्तरसे चलनेवाले हम तीनों आधी बेंचपर सिकुड़कर बैठे थे। जंगलके वृक्षोंकी खरखराहटके बदले डब्बेके भीतर मुसाफिरोंका शोर सुनाअी दे रहा था! बरेली होकर हम लुकसर गये, और वहाँ गाड़ी बदलकर आधी रात बीते हरद्वार पहुँचे।

रामकृष्ण-सेवाश्रम

तीर्थ-यात्रासे पुण्य होता है, लेकिन चाहे जिस ढंगसे यात्रा करनेसे नहीं। जो पैदल चलकर जाता है अुसे पूरा सौ फीसदी पुण्य मिलता है। जो आदमीके कन्धेपर या पालकीमें बैठकर जाता है, अुसे आधा पुण्य मिलता है। जो पशुकी सवारीपर 'तीरथ' करता है, अुसका पुण्य लगभग नहीं के बराबर होता है; और (आजकी स्थितिमें अितना और जोड़ देना चाहिअे कि) रेल या मोटरमें बैठकर जो तीर्थ करे अुसे पुण्यके बदले पाप ही लगेगा। रेलकी यात्रामें किसी तरहकी अुच्च या धार्मिक भावनाका परिपोष नहीं होता। और आज तो रेलकी यात्राका अर्थ है, स्वाभिमानका नाश। हम पैसे देकर अेक 'चिट्' खरीदते हैं, और अुसे लगाकर पारसलकी तरह डब्बेमें दाखिल हो जाते हैं। फर्क अितना ही है कि दूसरे पारसल मुकाम आनेपर बाहर फेंक दिये जाते हैं और हम अपने आप बाहर निकल आते हैं। गाड़ीमें बैठे-बैठे हम भविष्यकालकी तरफ नहीं जाते, बल्कि बाहरकी दुनिया ठण्डी साँसें भरती हुअी भूतकालकी तरफ़ दौड़ती जाती है। जहाँ संयोगवशात् दो आदमियोंके निकट आनेपर भी अुनमें प्रेमभाव पैदा नहीं होता, अुस स्थानको नरक ही कहना चाहिअे। तीर्थस्थान तक रेलगाड़ी ले जाना असुरोंका काम है। रेलमें बैठकर यात्राका पुण्य अर्जन करना गयासुरके दिये हुअे मोक्षके समान है। गुजरातने डाकोर और सिद्धपुरको तो भ्रष्ट किया ही, अब पश्चिमी धाम श्री द्वारकाजीको भ्रष्ट करनेका प्रयास शुरू हुआ है। कलियुग जो ठहरा! रवीन्द्रनाथ कहते हैं—"कलियुग यानी कल-(यंत्र) युग।"

हरद्वार अर्थात् गंगाद्वार। भागीरथी गंगा गंगोत्रीसे निकलकर महादेवकी जटामें अर्थात् हिमालयके अरण्योंमें फँस गयी। फिर दो पहाड़ों या पहाड़ियोंके बीचसे ज्यों-त्यों रास्ता निकालकर आगे बढ़ी है। जब टिकट लेनेके लिअे लोग सँकरे रास्तेसे निकलते हैं, तब जैसी भीड़ और अड़चन होती है, अुसी तरहकी अड़चन पहाड़ोंमें गंगाजीको होती

है। जब कोअी बड़ा भारी जुलूस तंग गलीसे निकलकर विशाल मैदानमें प्रवेश करता है तो लोग छुटकारेकी साँस लेते हुअे स्वतंत्रतासे दसों दिशाओंमे बिखर जाते हैं। वही दशा हरद्वारके पास श्री गगाजीकी हुअी है। जिस तरह गोशालासे छूटे हुअे बछडे केवल स्वतंत्रताका अनुभव करनेके लिअे ही अिधर-अुधर चौकडी भरते हैं, अुसी तरह यहाँ गगा अनेक धाराओंमे दौड़ती है। अुसके प्रत्येक प्रवाहका अुल्लास भी बालवृत्ति ही प्रकट करता है। नीलधारा कुछ गम्भीर ज़रूर है, लेकिन जिस तरह छोटे-छोटे लडके अपने दादाकी पगडी बाँधकर, हाथमें लकड़ी लिये, गम्भीरतासे चलते हैं, कुछ अुसी तरहकी यह कृत्रिम गम्भीरता है। नीलधारा अपनी गम्भीरताको निबाह भी नहीं सकती। हरद्वार जिस प्रकार गगाजीके लिअे पहाड़ छोड़कर मैदानमे प्रवेश करनेका प्रथम द्वार है, अुसी प्रकार यात्रियोंके लिअे हिमालयकी यात्राके आरम्भमे तराअी छोड़कर पहाड़मे प्रवेश करनेका भी द्वार है। अुत्तराखण्डकी यात्रा यहींसे आरम्भ हुअी मानी जाती है। हरद्वारतक रेल है, फिर भी यह तीर्थ-स्थान अपेक्षाकृत बहुत स्वच्छ है। भले अिसका अेक कारण यहाँकी म्युनिसिपैलिटीकी स्थायी आमदनी हो, परन्तु मुख्य कारण तो यह है कि हरद्वार साधुओंका स्थान है। बावा और सन्यासियोंमे दूसरी तरहकी गन्दगी चाहे जितनी हो, लेकिन अिसमे शक नहीं कि वे शारीरिक स्वच्छता ख़ूब रखते हैं।

हम रातके दो बजे हरद्वार पहुँचे। वहाँ हम किसीको जानते न थे, और न किसी पण्डेके मेहमान ही बनना चाहते थे। अिसलिअे हमने पहलेसे ही पत्र लिखकर हरद्वारके पास कनखलके रामकृष्ण-सेवाश्रममें ठहरनेका प्रबन्ध कर लिया था। रातके दो बजे हमें स्टेशनसे आश्रम तकका रास्ता कौन बताये? हमने अेक क़ुली लिया, अुसे चार आने देना क़बूल किया, और अँधेरेमे चल पड़े। हमें आपसकी बातचीतमे अंग्रेजी शब्दोंका प्रयोग करते सुनकर वह कुली बोला—"Oh, Sir, you are gentleman I knows English, Sir. I am gentleman coolie, Sir. I have ten years live in Dehradun, Sir." हम हँस पड़े। अुसका अंग्रेजी वाक्-प्रवाह बराबर

चलता रहा। फिर भी हमने अुससे हिन्दीमें ही बोलनेकी अरसिकता या असभ्यता दिखाअी। पर यह बात तो अब कैसे छिप सकती थी कि हम अंग्रेज़ी जानते हैं? वह हमसे अंग्रेज़ीमें ही बोलता था।

जब सेवाश्रमके पास पहुँचे, तो हमारा 'जण्टलमन कुली' बोला— 'Give me four anna bit, Sir. Copper is very heavy Sir.' स्वामीके मुँहसे जवाब निकल पड़ा—'Oh! I see. But certainly it is not heavier than the luggage you brought!'

रातके ढाअी बजे किसे जगाते? आश्रमके रुग्णालयके अेक चबूतरे-पर हम सो गये। सबेरे किसीके अुठनेसे पहले ही चोरोंकी तरह अिधर-अुधर घूम-घामकर शौच हो आये, मुँह धोया, और मठपति स्वामी कृष्णा-नन्दजीसे मिलने गये। अुन्होंने प्रेमसे हमारा स्वागत किया, और हमें अपना सामान रखनेके लिअे अेक कमरा दिखाया।

जब स्वामी विवेकानन्द सारे भारतवर्षकी और बादमें सारी दुनियाकी यात्रा करके लौटे, तो अुन्हें यह बात सूझी कि अिस नये युगमें साधुओंके लिअे नयी अुपासनाकी ज़रूरत है। जीते-जागते परन्तु भूखे-प्यासे, दीन, अपंग या रोगी-नारायणकी सेवा करना ही आज मोक्षका अुत्तम मार्ग है—दयाभावसे नहीं, किन्तु सेवाभावसे; किसीपर अुपकार करनेके लिअे नहीं, किन्तु सेवा करनेके सुयोगके लिअे निहोरा मानकर। स्वामीजीके गुरु-भाअियोंने और शिष्योंने काशी, प्रयाग, पुरी, हरद्वार, मायावती, वृन्दावन, आदि तीर्थस्थानोंमें रुग्णालय अथवा सेवाश्रम स्थापित किये हैं।

हरद्वारका सेवाश्रम ब्रह्मदेवकी सृष्टिकी तरह शून्यमेंसे अुत्पन्न हुआ है। मायावतीवाले स्वामी स्वरूपानन्दजीने कहींसे दो सौ रुपये जमा किये थे। अुन्हें लेकर स्वामी कल्याणानन्द हरद्वार आये। वे न तो हिन्दी जानते थे और न वैद्यक। सरस्वतीका भी अुनपर कृपा-प्रसाद नहीं था। अिसलिअे आज भी वे 'मुखदुर्बल' ही हैं। लेकिन अुनकी श्रद्धा अडिग थी। देवदारके अेक सन्दूकचेमें कुछ 'होमियोपैथिक' दवाअियाँ रखकर अेक झोंपड़ीमें अुन्होंने अपना धन्धा शुरु कर दिया। धीरे-धीरे धन्धेमें बरक़त हुअी। किसी मारवाडीने दस हज़ारका अेक मकान बनवा दिया। कल्याणानन्दजीने

वैद्यकका अध्ययन किया। अुनके हाथको जस मिला, और काम भी धड़ल्लेके साथ चल निकला। निश्चयानन्द नामके अेक महाराष्ट्रीय संन्यासी अुनके सहायक हैं। ये स्वामी विवेकानन्दके शिष्य हैं। स्वय मराठी ठीक-ठीक बोल नहीं पाते। लेकिन अुन्हें बँगला अच्छी आती है। ये सज्जन भी मितभाषी ही है। सुबहसे लेकर शामतक काम ही काम करते रहते हैं। थकान-जैसी कोअी चीज़ वे जानते ही नहीं। अलबत्ता, दस-पाँच सवालोंका जवाब देना पड़ जाय, तो थक जाते हैं। अुनके गुरुजीने अुनके लिअे नाम भी यथार्थ ढूँढ निकाला है।

सेवाश्रममें सैकड़ों रोगी — क्या साधु और क्या गृहस्थ — रोज आते हैं। अुनमें जो ज़्यादा बीमार होते हैं अुन्हें रुग्णालयमे रखा जाता है। तपेदिकके लिअे अलग मकान है। धनवान लोग कितनी ही फीस क्यों न दें, पर कल्याणानन्दजी गरीबोंको छोड पहले धनवानोंके यहाँ कभी नहीं जाते। जिस समय हम सेवाश्रममें गये, अुस समय रामकृष्ण-मिशनके अध्यक्ष और श्री रामकृष्ण परमहंसके प्रिय शिष्य स्वामी ब्रह्मानन्द वहाँ आये हुअे थे। अुन्हे 'राखल राजा' अथवा 'राजा महाराज' भी कहते हैं। हमे अुनके दर्शनोंका अपूर्व लाभ हुआ। दूसरे साधु काशीके अद्वैताश्रमके मठपति शिवानन्दजी थे। स्वामी विवेकानन्दने अिनका नाम 'महापुरुष' रख दिया था। अुनसे श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द और अुनके संघ (मिशन)के विषयमें बहुत-सी तफसीलें सुननेको मिलीं। कॉलेजमें स्वामी विवेकानन्दके लेख पढ़कर ही नास्तिकताका मेरा ज्वर और संशयवादका गर्व अुतर गया था। रामकृष्ण परमहंसको मैं अिस युगके अवतारी पुरुषके रूपमें पूज्य मानने लगा था। अैसी स्थितिमे जो रामकृष्ण परमहंसके प्रत्यक्ष सहवासमे रह चुके थे, अुन पुरुषोंका दर्शन मेरे लिअे बहुत प्रभावोत्पादक हुआ हो तो अुसमे आश्चर्य क्या? मैंने स्वामी ब्रह्मानन्दसे अेकान्तका समय माँग लिया। अुनसे मुझे बहुत आश्वासन मिला। मैं रामकृष्ण-मिशनमें शामिल नहीं हुआ, फिर भी वे मुझे अपना ही मानने लगे। मुझ घुमक्कड़को भी मानो घर मिल गया। हिमालयकी यात्रा करनेका अपना संकल्प मैंने स्वामी ब्रह्मानन्दको बतलाया। अुन्होंने आशीर्वाद दिया और हमने यात्राकी तैयारी शुरू की।

1388

१९

तैयारी

हमें बदरीनारायणकी यात्रा करनी थी। हरद्वारसे बदरीनारायण कितनी दूर है, किस रास्तेसे जाना पड़ता है, बीचमें कितने 'पड़ाव' आते हैं, साथमें क्या-क्या रखना चाहिअे, सामान अुठानेके लिअे कुली कहाँ मिलेंगे, वे कितनी मज़दूरी लेंगे, रास्तेमें देखने लायक़ क्या-क्या है, यह सब हमें जान लेना था। कनखलके पास सरकारने अेक बाँध बनवाकर गंगा नदीका प्रवाह रोका है। यहींसे गंगाजीकी प्रख्यात नहर कानपुर तक जाती है। रुड़कीके पास सोलाना नामकी अेक नदी अिस नहरके रास्तेमें आती है। परन्तु अिंजीनियर लोगोंने सोलाना नदी पर अेक बड़ा भारी पुल बनाकर यह सारी नहर अिस पुल परसे निकाल दी है। अिस भगीरथ कार्यका वर्णन मैं अन्यत्र कर चुका हूँ।*

कनखलके पासवाले बाँधके परे अेक टापूपर 'दाम्पार' नामका आश्रम है। वहाँके स्वामी केशवानन्दसे कुछ सहायता मिलनेकी सम्भावना थी, अिसलिअे हम वहाँ गये। वहाँ केशवानन्द तो नहीं मिले, पर झाड़ीमें, पीपलके चबूतरेपर बैठे हुअे, दूसरे अेक सन्यासी मिले। अुनके शरीरकी गठन और अंग-कान्तिसे साफ़ मालूम होता था कि वे 'खुशहाल' यानी खा-पीकर सुखी रहनेवालोंमें हैं। वे चबूतरेपर आरामसे बैठे थे। अपनी लम्बी चादर घुटनों और कमरके चारों ओर लपेटकर अुन्होंने अपने शरीरकी 'रॉकिंग अीजी चेअर' (झूलती आराम कुरसी) बना रखी थी। अुनकी फलश्रुति यह है कि अिस आसनसे बैठकर मनुष्य घण्टों बातें करता रहे, तो भी वह थकता नहीं। अुनसे हमें कोअी खास जानकारी नहीं मिली। अुल्टे रास्ता विकट है, जाना मुश्किल है, जानेवालोंमेंसे बहुतसे वापस आते ही नहीं, अिस तरह अुन्होंने हमें खूब डराया और यात्राका विचार छोड़ देनेकी बुद्धिमानी पूर्ण सलाह दी। तिसपर भी जब अुन्होंने हमारा

---

* (अपनी 'लोकमाता' नामक पुस्तकमें।)

अटल निश्चय देखा, तो अेक अुर्दू शेर सुनाया, जिसका अर्थ यह था कि जब कमर कसकर कोअी काम अुठा लो, तो फिर अुसे कभी न छोड़ो — चाहे मौत ही क्यों न आ जाय।

अिस कीमती सलाहके लिअे अुनका आभार मानकर हम लौटे, और हरद्वारके बाजारकी ओर मुड़े। अुस समय कोट, कुरता आदि कपड़े पहनना मैं छोड़ चुका था। सिला हुआ कपड़ा मेरे काम नहीं आ सकता था, और ओढ़नेके लिअे मेरे पास काफी न था। अिसलिअे अेक कानपुरी शाल और दो मफलर खरीद लिये। अेक पतला-सा तवा, अेल्युमीनियमकी अेक पतीली, अेक ढक्कन, अेक रकाबी, पीतलकी अेक मोटी लुटिया और अेक छोटी-सी थाली, अितनी चीज़ें और खरीद लीं। (यात्रासे लौटते वक्त अिसी बाजारमें नमदेकी दो बढ़िया 'घुग्घी' मिल गयीं। हमने वे घुग्घियाँ लीं। 'घुग्घी' यानी माथे से कमरके नीचेतक शरीर ढँकनेवाली नमदेकी लम्बी टोपी। यह सिली हुअी नहीं होती।) अितनेमें मनमें विचार आया कि चौमासेके दिन हैं, अपने पास मोमकप्पड़ हो तो अच्छा। मेरा यह विचार बहुत ही अुपकारक साबित हुआ। कपड़े, बिस्तर सब बाँध लेनेके बाद हम अुसपर मोमकप्पड़ लपेट लेते थे। फिर चाहे जितनी बारिश हो, और हम चाहे जितने भीगे हों, तो भी रातको हमें बिलकुल सूखा बिछौना मिलता था। कुनैनकी शीशी तो मेरे पास थी ही। मोमबत्तियाँ, दीयासलाअी, साबुन, कामके लायक चिल्लर और बाबाजीके लिअे ठोस बाँसकी लम्बी लाठी, ये चीज़ें हमने रख लीं और यात्राके लिअे सज्ज हो गये।

सुना कि हरद्वारके बाहर भीमगोड़के पास कुलियोंका अड्डा है। वहाँ जाकर कुलियोंका भी अिन्तजाम कर लिया। अेक दिन और हरद्वार तथा कनखल देखनेमें बिताकर यात्राके लिअे प्रस्थान किया। हमें यात्रापर जानेकी जल्दी थी, पर पाठकोंको तो अुसका वर्णन सुननेकी अुतावली हो ही नहीं सकती। वे हरद्वार और कनखलका सविस्तर वर्णन सुने बिना मुझे छोड़ेंगे नहीं, अिसलिअे पहले शान्तिपूर्वक अिनका वर्णन करना ठीक होगा।

गंगाद्वार

हरद्वार, कनखल, और ज्वालापुर तीनोंकी अपनी अेक समष्टि है। हरद्वार तीर्थ-यात्रियोंका नगर है, ज्वालापुर पण्डोंका धाम है, और कनखलको संन्यासियोंका स्थायी शिविर कह सकते है। तीनो पास-पास होनेपर भी अलग-अलग हैं। तीनों स्थानोंमें मिश्र वस्ती है। तीनों जगह बड़ी-बड़ी धर्मशालायें हैं, सदावर्त है, और विद्यालय भी है। तीनोंमे कनखल और हरद्वार दो पुराने हैं। और, पुराणोंमें दोनोंका माहात्म्य बहुत वर्णित है। कनखलसे थोडी दूर नदीके अुस पार आर्यसमाजियोंका गुरुकुल है। (अेक बहुत बडी बाढ़में यह गुरुकुल बह गया था। अिसलिअे अब यह सस्था गगाजीके अिस पार कनखलमें आ गयी है।) हरद्वार और ज्वालापुरके बीच सनातनियोंका ऋषिकुल है, और खास ज्वालापुरमें ऋषिकुलके समान सनातनी ढगका, परन्तु आर्य-समाजी मतका, 'ज्वालापुर महाविद्यालय' है। तीनों संस्थाओंका अुद्देश्य अपने-अपने मतके अनुसार, स्वधर्मका अुद्धार करनेवाले, कट्टर धर्मप्रेमी और धर्मोपदेशक तैयार करना है। तीनों संस्थाओंको प्रभावोत्पादक धर्मोपदेश करनेके लिअे अंग्रेजी भाषा और लौकिक विद्याके ठोस ज्ञानकी आवश्यकता जान पडती है। जब मैं पहले-पहल तीनों संस्थायें देखकर लौटा, तो मेरे मनपर यह छाप पड़ी कि तीनों संस्थाओंमें संस्थापकों या अध्यापकोंकी अपेक्षा विद्यार्थियोंमें धार्मिक आग्रह (धर्मोन्माद) कम था। अुनमें मताग्रहकी अपेक्षा स्वदेश-प्रेम अधिक था। आर्यधर्म या हिन्दूधर्मकी अपेक्षा राष्ट्र-धर्मका प्रभाव अुनपर कहीं अधिक पड़ा था। अेक यात्रीके नाते मैं केवल अपने दिलपर पड़ी हुअी पहली छाप ही यहाँ बतला रहा हूँ। अुसके बाद, अर्थात् यात्रा समाप्त होनेपर, अिन तीनों संस्थाओंसे मेरा परिचय बढ़ा। अुनके विषयमें बहुत-कुछ कहा जा सकता है। परन्तु यात्रा-वर्णनमें अुसका समावेश नहीं हो सकता।

अेक संस्थाने मेरा ध्यान विशेष रूपसे आकर्षित किया। वह है, 'मुनि-मण्डल-आश्रम'। यह संस्था हरद्वार स्टेशन और ऋषिकुलके बीचमें है। 'मुनि-मण्डल-आश्रम' विद्यालय नहीं है। वह अेक प्रकारका धर्म-तत्व-संशोधन-मन्दिर है। वहाँका ग्रंथ-भण्डार सुन्दर है। अेकान्तमें बैठकर धर्म-चिन्तन और अध्ययन करनेवालोंके लिअे बहुत अुपयोगी हो सकता है। अिस संस्थामें हरिवंशकी अेक बड़ी पोथी है। पोथीके हरअेक पन्नेपर अेक या अधिक सुन्दर चित्र और अुसके आस-पास तरह-तरहकी सुनहरी बेल-बूटी है। अक्षर बिलकुल मोतीके दाने-जैसे हैं। चित्रकारी जयपुरी पद्धतिकी अत्यन्त मनोहारी है। प्रत्येक चित्रके नीचे अुसका परिचय दिया है। ग्रंथ मराठी भाषामें होते हुअे भी अुसकी लिखावट मराठी ढंगकी नहीं है। अिसलिअे मैं समझता हूँ कि यह अपूर्व ग्रंथ किसी मराठा सरदारने जयपुरी कारीगरोंसे लिखवाया होगा। मैंने बड़ौदा, जयपुर और बाँकीपुरकी खुदाबख्श लायब्रेरीके चित्र-संग्रह देखे हैं। काशी-नरेशके महलके भीतरकी दीवारोंपर 'रामचरितमानस'के अनेक प्रसंगोंके जो चित्र बने हैं, वे भी देखे हैं। परन्तु फिर भी हरिवंशमें दिये गये चित्र और विविध प्रसंग देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुअी।

कौन जाने भारतीय कारीगरीकी 'आला दरजेकी चीज़ें' कहाँ-कहाँ पड़ी होंगी, कहाँ-कहाँ सड़ रही होंगी, और अुनमेंसे कितनी देशसे निर्वासित हो चुकी होंगी! मन अिस विचारसे अुद्विग्न हो अुठा। कितने ही ग्रंथ लन्दन म्यूजियममें या बर्लिनके म्यूजियममें पहुँच गये हैं। कितने ही चित्र और मूर्त्तियाँ आज बोस्टन-म्यूजियमकी शोभा बढ़ा रही हैं। अपनी अैसी विडम्बना होती देख भारतकी कला फूट-फूटकर रोती होगी! मनमें अिस विचारके आते ही मुँहसे सहसा सुविख्यात मराठी कवि केशवसुतकी यह पंक्ति निकल पड़ी —

'देवारे!' मग ती स्फुन्दे
'अेवढा तरी लाभू दे।*

* अर्थात् फिर वह सिसकती हुअी कहती है—"हे भगवान! कम-से-कम अितना तो नसीब होने दे!"

वहाँके साधु लायब्रेरियन मुझसे पूछने लगे — "आपने क्या कहा?" मैंने जवाब दिया — "कुछ नहीं, स्वामीजी! मैं यही चाहता हूँ कि असे रत्न देशके देशमें ही रहें। जैसे यशोदा मैया श्रीकृष्णका जतन करती थीं, वैसे ही आज अिस हरिवंशका जतन होना चाहिये!"

ये हुआी थोडी-बहुत आधुनिक पद्धतिकी संस्थायें। पुरानी पद्धतिके अखाडे, गुफायें और साधुओंकी कोठियाँ तो यहाँ चाहे जितनी हैं। सिक्खोंकी धर्मशालायें, अुदासीपंथके मकान, और शांकरमतके दशनामी अखाड़े तो असे क्षेत्रोंमे होते ही हैं। अन्नसत्र देखनेके लिअे मैं खास तौरपर गया। अहल्याबाअी, अर्थात् महाराष्ट्रकी धर्मश्रद्धा, महाराष्ट्रका दान-नैपुण्य! अहल्याबाअी, अर्थात् महाराष्ट्रकी नारी-प्रतिष्ठा! अिस पुण्य-श्लोक रानीने अपनी प्रजाका मातृवत् पालन किया। वैराग्य-साधनामें जीवन व्यतीत किया, कुशलतासे राज्यकी रक्षा की, और आसेतु-हिमाचल तीर्थ-तीर्थमें अन्नसत्र खोलकर अपनी कीर्त्तिको अजरामर बनाया। आज भी अहल्याबाअीके नामसे काशीसे गंगाजलकी अेक काँवड़ भरकर प्रति दिन रामेश्वर जाती है। परन्तु अहल्याबाअीनें अिनमेंसे अेक भी काम अपने नामके लिअे नहीं किया। अेक ब्राह्मणने अहल्याबाअी की स्तुतिमें अेक सरस ग्रंथ लिखा, और वह अुन्हें दिखाने गया। अुस साध्वीने ब्राह्मणको दक्षिणा दी, और वह ग्रंथ लेकर पानीमे डुबा दिया।

बाबाजीने मुझसे पूछा — "तुमसे किसने कहा कि हरद्वारमें अहल्याबाअीका अन्नसत्र है?" मैंने कहा — "किसीके कहनेकी जरूरत ही नहीं है। मुझे अपने आप लगा कि यहाँ अहल्याबाअीका अन्नसत्र जरूर होगा।" मुझे छुटपनकी अेक बात याद आ गयी। बाबाजीसे मैंने कहा — "जब मैं छोटा था, तो अेकबार गोकर्ण-महाबलेश्वर गया था। वहाँ भी अहल्याबाअीका अेक अन्नसत्र था। हम अुसके पास ही ठहरे थे। दोपहरको बारह बाजे अेक भूखा यात्री अन्नसत्रमें आया। वहाँका व्यवस्थापक अितना श्रद्धालु न था कि यह अुतरा हुआ मुटका फिर पहनकर अुस अतिथिको भोजन कराता। अिसलिअे अुसने मेरी मारफत अतिथिको भोजन करानेकी युक्ति निकाली। मैं मुश्किलसे आठ बरसका रहा हूँगा। तब मेरा जनेअू भी नहीं हुआ था। अिसलिअे मैं

तो आठों पहर पवित्र ही था। मैंने तुरन्त कपड़े फेंक दिये और अन्नसत्रकी रसोअीमेंसे अेक पत्तल परोस लाया। पत्तल अतिथिके सामने रख दी, और फिर कपड़े पहनकर माँके पास आ गया। मैंने माँसे पूछा — "यह मन्दिर किसका है?" जवाबमें माँने अहल्याबाअीके विषयमें अेक लम्बा गीत गाया। अुस दिनसे मैं अहल्याबाअीको पूज्य भावसे देखता आया हूँ। अहल्याबाअी घनगर (गडरिया) जातिकी थीं। परन्तु आज गोकर्णमें कट्टर ब्राह्मण भी अहल्याबाअीकी मूर्त्तिकी पूजा करते हैं।"

अरे! लेकिन मैं हरद्वारकी बात छोड़कर गोकर्ण कहाँ जा पहुँचा? यात्रा करनेवाला मनुष्य हमेशा स्थानान्तर करता रहता है। अुसी तरह अुसे विषयान्तर करनेकी भी आदत पड़ जाती है। प्रवासी बातूनी तो होता ही है। आप हरद्वारके किसी भी अखाड़ेमें चले जाअिये। वहाँ आपको देश-देशान्तरकी बातें सुनानेवाले संन्यासी मिलेंगे। ज्वालापुरमें आप अैसे पण्डे पायेंगे, जो बिना अेक भी लम्बी यात्रा किये आपको सारे हिन्दुस्तानका हाल सुना सकते हैं। सन्यासी आपसे निरपेक्ष भावसे बात करेंगे। पर पण्डे तभी बात करेंगे, जब देखेंगे कि आप मालदार हैं। परन्तु अुनकी बातोंमें माल (तथ्य) होता ही है, सो माननेकी कोअी वजह नहीं।

शामको धूप कम हो जानेपर गंगाजीके घाटपर हजारों, बल्कि लाखों, यात्री अिकट्ठा होते हैं। बम्बअीमें जिस प्रकार चौपाटीपर भीड़ लगती है अुसी तरह हरद्वारमें 'हरकी पैड़ी'के पास लोगोंकी भीड़ लगती है। जगह-जगह साधु-सन्त और धर्म-प्रचारक व्याख्यान देते हैं, भजन कीर्त्तन करते हैं, फेरीवाले अपना व्यापार करते हैं, और स्त्रियाँ मँगतों तथा साधुओंसे होनेवाला सारा अुपद्रव सहकर भी अपनी प्रसन्नता क़ायम रखती हुअी गंगाजीके प्रवाहमें दीप-दान करती हैं।

दीप-दान मुग्ध स्त्री-संसारका अेक अनुपम काव्य है। असंख्य जीव जीवन-स्रोतमें पड़कर, सुख-दुःखकी लहरोंपर अुतराते हुअे, भाग्य-पवनके झोकोंपर अिधर-अुधर नाचते हैं; कुछ शुरूमें ही डूब जाते हैं, कुछ दूसरे बिना किसी तरहका अनुभव प्राप्त किये ही अुस पार पहुँच जाते हैं; कुछ दो-दोकी जोड़ीमें चलते हैं, और कुछ तो अपनी छोटी-सी

नैया ही जला डालते हैं, और अिस प्रकार दो क्षणोंकी दीप्ति दिखाकर लुप्त हो जाते हैं; कुछ अैसे भी होते हैं, जो अपने सौम्य तेजके आस-पास पर्याप्त स्नेहका संग्रह रखकर बहुत दूरतक सही-सलामत जाते हैं, और दूसरोंके लिअे दिशा-दर्शक बन जाते हैं। दीप-दान अिसका अेक प्रतीक है। अेक ओरसे असंख्य दीपोंकी विशृंखल पंक्ति भाग्य-स्रोतमें बहती जाती है, और दूसरी ओर मन्दिरोंमें असंख्य घण्टोंकी तालबद्ध झंकार हवाकी लहरोंपर होती हुअी अनन्तके हृदयमें प्रवेश करती है, और गंगा मैया अेक-दूसरेसे लड़-भिड़कर चिकने, सुन्दर और अहिंसक बने हुअे कंकरोंके साथ खेलती तथा हँसती हुअी यह सब सुनती रहती है। कैसा काव्यमय दृश्य है! आकाशमें तारे भी अेक क्षणके लिअे स्तब्ध होकर यह दृश्य देखते हैं। अपना सनातन संगीत स्थगित कर तारे यह घण्टानाद सुनते होंगे, और अपना दिव्य नर्तन स्थगित कर वे अिस दीपमालाकी शोभा निहारते होंगे! गंगा मैया अपने कलरव द्वारा कहती होंगी — "हिन्दुस्तानमें आयी हुअी देश-देशान्तरकी सन्तानें मेरे प्रिय ककरोंकी तरह सहिष्णु और अहिंसक बनकर, अेकत्र व हिलमिलकर रहेंगी — अिसे सिद्ध करनेवाली मैं भारतकी संस्कृति हूँ।"

चन्द्रमा अस्त हुआ और हम गंगाजीके किनारे-किनारे चलते हुअे कनखल आ पहुँचे। रास्तेमें घासकी चटाअियोंके बने हुअे कुछ झोंपड़े देखे। झोंपड़ोंकी रचना, अुनकी सादगी, सुन्दरता और सुथरापन देख मैं खुश हुआ। साधुओंमें मकानोंके विषयमें अुच्च कोटिकी अभिरुचि होती है, और अपनी कुटीके आस-पासकी स्वच्छता वे बहुत परिश्रमपूर्वक रखते हैं। यदि आधुनिक तिरस्कार-भावनाको छोड़कर आप अुनसे मिलें, तो आप अुनमें पर्याप्त मात्रामें कुलीनता, बहुश्रुतता, तितिक्षा आदि गुण पायेंगे। जिस प्रकार साधुओंकी यह झूठी धारणा होती है कि मोजे, जूते, टोप पहनने और चश्मा लगानेवाले लोग नास्तिक अेवं धर्मभ्रष्ट होते हैं, अुसी प्रकार आधुनिक सुधारवादियोंकी समझमें प्रत्येक गेरुअी कन्थाके अन्दर अेक निठल्ला, धूर्त्त, अलाल और पाखण्डी व्यक्ति छिपा होता है। यदि बाह्य आकारकी पूजा अज्ञानकी द्योतक है, तो बाह्य आकारपर से क़ायम हुअी तिरस्कार-भावना भी अुतनी ही अज्ञानकी द्योतक है।

मुझे यह देखकर थोड़ा विषाद हुआ कि हरद्वारमें भी अंग्रेजी बोल सकनेवाले साधुओंकी प्रतिष्ठा ज़्यादा है। परन्तु हमें तो अंग्रेजीदाँ साधुओंकी अपेक्षा हमारा सामान ढो सकनेवाले कुलीकी ही चिन्ता अधिक थी, अिसलिअे दूसरे दिन हम कुलीकी तलाशमें कनखलसे भीमगोड़की तरफ़ गये।

२१

प्रस्थान

हरद्वारसे गंगाके किनारे-किनारे चलकर गंगोत्रीकी खोजमें जो सबसे पहला यात्री निकला होगा, क्या हमें अुसका अितिहास कहीं मिल सकता है? मेरी धारणा है कि गंगोत्री, जमनोत्री, केदार, बदरी, अमरनाथ भोजनाथ, मानसरोवर, राकसताल, अमरकण्टक, महाबलेश्वर, त्र्यम्बक आदि सारे तीर्थस्थान नदीका अुद्गम खोजनेकी प्राकृतिक जिज्ञासाके ही परिणाम हैं। अुत्तर ध्रुवके आसपास रहनेवाले आर्य लोग अिस बातकी शोध करनेके लिअे बाहर निकले कि हमें अुष्णता देनेवाला सूर्य कहाँसे अुदय होता है और कहाँ अस्त होता है, और चारों महाद्वीपोंमें फैल गये। अुसी प्रकार हिन्दुस्तानकी सन्तानें अपने-अपने ढोर-बछेरू लेकर, या अकेले ही, नदीके अुद्गमकी शोध करती हुआी घूमी हों, तो कोअी आश्चर्य नहीं।

मैं कह चुका हूँ कि यात्राका अुद्देश्य धार्मिकके अतिरिक्त फौजी भी हो सकता है। हमारे आद्य पुरुषोंने सोचा होगा कि सैनिक दृष्टिसे आस-पासके प्रदेशकी रक्षा करनेमें समर्थ कोअी अूँचा स्थान, अथवा बहुत बड़ी संख्यामें अेकत्रित लोगोंके अुपयोगमें आने लायक कोअी जलाशय, किसी योग्य अथवा अयोग्य राजाके हाथमें रहनेकी अपेक्षा धर्मनिष्ठ प्रजाकी श्रद्धाका केन्द्र बन जाय, तो अधिक सुरक्षितता रहेगी। 'धर्मो रक्षति रक्षितः' सूत्रका प्रत्यक्ष प्रमाण वहाँ मिल जाता होगा। केदार और बदरी तिब्बतके साथ व्यापारके नेतिघाटवाले रास्तेपर हैं। यह रास्ता

साल भरमें आठ-नौ महीने तो वर्फ ही बर्फसे ढँका रहनेके कारण बन्द ही रहता है, और सिर्फ चौमासेमें खुला रहता है। अुन्हीं दिनों शान्तिमय व्यापार या अशान्तिमय आक्रमण हो सकता है। अगर अिन चार महीनोंमें ही हजारों यात्री अिस रास्ते आवागमन करेंगे, तो अिसका स्वाभाविक रीतिसे रक्षण होगा, और व्यापार भी सहज गतिसे बढ़ेगा। यही बात कैलाश और मानस-सरोवरकी है। लेपू घाट और अूटाधुरा घाट हमें मानस-सरोवर और राकसताल्के बीचसे ग्यानिमा और गड़तोक-जैसी तिब्बती मण्डियोंकी तरफ ले जाते है। मानस-सरोवर और कैलाश जानेवाला यात्री यदि वहीं 'कैलासवासी' न हो जाय, तो अवश्य यात्राके पुण्यके साथ-साथ तिब्बतके अमूल्य गालीचे और दूसरी चीजें लेकर आयेगा।

अगर पहेलीके साथ अुसका जवाब भी दिया गया हो, तो अुसे बूझनेके प्रयत्नका आनन्द जाता रहता है। यही बात आज यात्रियोंकी हो गयी है। आज हिमालयकी यात्रामें भी यात्राके मार्ग बहुत बड़े अंशमें सरल हो गये हैं। पुराने जमानेमें गंगोत्री या बदरीनारायणकी यात्रा करनेवाले अपनी जायदाद अपने बेटे-बेटियोंमें बाँट देते, सब सगे-सम्बन्धियोंसे मिलकर बिदा माँगते, और लड़ाअीपर जानेवाले सिपाहीकी तरह मौतका न्योता स्वीकार करके ही प्रस्थान किया करते। अगर अुन्हें मौत न आयी, तो अुसमें अुनका कोअी क़सूर न होता था। अिसे तो मृत्युकी ही लापरवाही कहना चाहिअे! आज बदरीनारायणसे भी यात्राके दिनोंमें तार भेज सकते हैं, और मनी-ऑर्डरसे पैसा मँगा सकते हैं। गंगोत्री-जमनोत्री की तरफ अितनी सुविधा नहीं है। अिसीलिअे अभी वहाँ पुण्यांश शेष रह गया है।

* * *

भीमगोडेसे जरा आगे आनेपर हमें कुलियोंका ठिकाना मिला। हमें जरूरत तो अेक ही कुलीकी थी, पर हमें दो भाअी मिल गये। अुन्होंने कहा — "आपका बोझा तो अेक ही कुलीके लायक़ है, लेकिन हम दो जने अुसे अुठायेंगे। बस, आप हमें अेक ही आदमीकी मजदूरी दीजिये।" वे हमारी भाषा नहीं जानते थे, अिसलिअे स्वामीने मराठीमें कहा — 'काका, अच्छा तो है। हम अिन्हीं कुलियोंको ठीक कर लें। हमें अेकके

बदले दो कुली मिल रहे हैं। रास्तेमें हम दोनोंको अच्छी तरह खिलायेंगे, तो दोनों जीव .ख़ुश रहेंगे। हम हर मुकामपर अिन्हें खिचड़ी खिलायेंगे। ये लोग खिचड़ीको हलुआ-पूड़ीसे भी अधिक राज-विलासी भोजन समझते हैं। ” हमने अपना बोझा कैरासिंह और बहादुरसिंहके सिरपर चढ़ाया, और अपना भाग्य साथ लेकर रवाना हुअे। ‘चराति चरतो भग.!’

२२

हृषीकेशके रास्तेपर

बायीं तरफ घनी झाड़ीमेंसे होकर रेलकी पटरियाँ देहरादूनकी दिशामें अिस तरह जा रही थीं मानो जंगलमें कोअी नागिन चल रही हो। जब-तक रेलकी ये पटरियाँ दीखती रहीं, तबतक बहुत चाहनेपर भी मनमें यह भाव पैदा नहीं हो पाता था कि हम किसी पवित्र यात्राके लिअे रवाना हुअे हैं। परन्तु थोड़ी देर बाद ही हमारे रास्तेने रेल्वे लाअीनसे असहयोग कर दिया, और अेक सुन्दर पुलकी राह जंगलमें प्रवेश किया। हमें रवाना होनेमें थोडी देर हो गयी थी, अिसलिअे सत्यनारायण पहुँचनेसे पहले ही प्राय: दोपहर हो चुकी थी।

यहाँका मन्दिर सुन्दर है। मन्दिरके भीतर लक्ष्मीनारायणकी संगमरमरकी मूर्त्तियाँ, अितनी आकर्षक हैं कि बरबस मनमें प्रेमभाव अुपजाती हैं। मन्दिरके पुजारी महाराज दक्षिणाकी आशासे हमारी तरफ ताक रहे थे। क्या लक्ष्मीपति सत्यनारायणसे भी हमारे वदन-सरोज अधिक आकर्षक थे? बिलकुल नहीं। परन्तु मन्दिरमें खड़ी संगमरमरी लक्ष्मीकी अपेक्षा हमारी गिरहमें छपी हुअी रौप्यलक्ष्मी पुजारीके लिअे अधिक आकर्षक थी। हमने कुअेंपर जाकर हाथ-पैर धोये और जरा विश्राम करनेके लिअे मन्दिरमें जा बैठे। वहाँ अिस चिरपरिचित गानका स्फुरण हुआ —

आजिचा सुदीन रे सुदीन
आमुचा अुदयला भाग्याचा
आमुचा अुदयला भाग्याचा
आमुचा अुदयला भाग्याचा

लक्ष्मीनारायण पाहिला,
दयाघन देव वैकुंठिचा
दयाघन देव वैकुंठिचा
दयाघन देव वैकुंठिचा

लोकगीतकी रागमें तार स्वरसे गानेवाले मुझ-जैसे संगीत-शत्रुकी पुकार सुन कअी लोग वहाँ अिकट्ठा हो गये। मेरा स्वर-तार टूट गया, और लज्जासे कुछ झेपता-सा मुँह लेकर मैं वहाँसे खिसक गया।

अिस स्थानसे कुछ ही दूरपर अेक छोटा-सा झरना बह रहा था, और अुसके आस-पासकी झाड़ीमें कअी लोग पाक-क्रिया सिद्ध कर रहे थे। हमने भी अेक पाकानुकूल स्थान खोज लिया और चुल्हिकाकी अुपासना आरम्भ कर दी। रसोअी बनानेका ज़िम्मा बाबाजीने लिया, क्योंकि वे 'स्वयंपाकी' थे। वे स्वामीके या मेरे हाथका भोजन नहीं कर सकते थे। दक्षिणी देशस्थ ब्राह्मण जो ठहरे! अिसलिअे हमें सदाके लिअे अेक भारी राहत मिल गयी थी। स्वामी अींधन-पानीका अिन्तजाम करते थे। मैं चूल्हा सुलगाकर तैयार कर देता था। ज़रूरत होनेपर बज़ारसे सौदा लानेका काम भी स्वामीके ही सुपुर्द था। हर मुक़ामपर सामान खोलने और अुसे फिरसे बाँधनेके कौशलमें मैं सबसे प्रवीण था। (अिसमें भी कौशल होता है।) और जबतक बाबाजी रसोअी बनानेमें लगे रहते थे, हम दोनों अुन्हें कोअी-न-कोअी सुन्दर चीज़ पढ़कर सुनाते थे।

स्वामीके पास योगके निबन्ध थे। आज अुन्होंने अुनमेंसे प्राकृतिक मनुष्यका वर्णन पढ़नेके लिअे चुना था। पत्थरपर घासकी अेक हाथ चौड़ी मेरी चटाअी बिछाकर स्वामी अुसपर विराजमान हुअे! घासकी

चटाअी जंगलके पत्थरपर ठहरनेसे रही। जब मैंने देखा कि स्वामी प्राकृतिक मनुष्य बनकर मेरी प्यारी चटाअीके प्रति क्रूरताका व्यवहार कर रहे हैं, तो मैं चिढ़ गया। मैंने अुनसे अुठनेको कहा। लेकिन जो स्वामी होते हैं, वे क्यों किसीकी मानने लगे? मैं बहुत खीझ अुठा था। मैंने अुनकी टाँग पकड़कर अुन्हें खींचनेका विचार किया; अितनेमे अेक सीढ़ी-सा आदमी हमारे पास आया। अुसने पासके झरनेका पानी लेकर हमारे पैर पखारे और बोलने लगा — 'अद्य मे सफल जन्म अद्य मे सफला क्रिया.'। स्वामीने अुसे कुछ देकर विदा किया और हम लोग भोजन करने बैठे। बाबाजी जब परोसते, तो माँकी तरह प्रेमसे परोसते थे। हमने भोजन किया। कुछ देर आराम किया। और, फिर आगे प्रस्थान किया।

रास्तेमें कैरासिंहने हमसे गंभीरतापूर्वक कहा — "आप अिस रफ्तारसे चलेंगे, तो हमारी नहीं निभ सकती। अिस तरह चार महीनोंमे भी यात्रा पूरी न होगी। मज़दूरीके सारे पैसे खानेमे ही खर्च हो जायँगे। फिर हम सालभरकी कमाअी लेकर घर क्या जायँगे?" अुस बेचारेको क्या पता कि कुछ दिनों बाद हमारी गति अितनी ज़्यादा बढ़ जायगी कि हमारे पीछे दौड़ते-दौड़ते अुसका दम निकल जायगा! साँझ होते-होते हम हृषीकेशमें बाबा काली-कमलीवालेकी धर्मशालामें आ पहुँचे।

२३

साधुओंका पीहर

अेक सन्यासीने किसी निराश व्यापारीको आशीर्वाद और प्रोत्साहन देकर फिर धन्धेमें प्रवृत्त किया। धन्धेमें व्यापारीके भाग खुले। सन्यासीने व्यापारीकी कृतज्ञताकी भेंट स्वीकारनेसे अिन्कार किया और कहा —"तुम्हें पैसा ही खर्च करना है, तो हिमालयके यात्रियोंका कष्ट दूर करके अुनके लिअे सब तरहकी सुविधायें कर देनेमें भले ही खर्च करो।" व्यापारीने हृषीकेशसे बदरीनारायण तक यात्रियोंके लिअे बहुत बडी सुविधायें कर दीं। संन्यासीने अुनकी देख-रेखका भार अपने अूपर लिया। सन्यासी स्वयं अितने विरक्त थे कि अपनी देख-रेखमें चलनेवाले किसी भी 'अन्नसत्र'में भोजन करनेसे पहले कुछ घड़े पानी लाकर 'सत्र'के हौजमें डाले बिना न रहते थे। अिन संन्यासीने 'पक्षपात रहित अनुभव प्रकाश' नामक अेक ग्रंथ भी लिखा है। संन्यसीकी कफनी काले कम्बलकी बनी हुअी थी। अिसलिअे अुनका नाम बाबा 'काली-कमलीवाले' पड़ गया।

शामको हृषीकेशमें हम अिन्हीं काली-कमलीवालेकी धर्मशालामें पहुँचे। महाराष्ट्रमें भी धर्मशालायें होती हैं। परन्तु वहाँ मकानकी रखवाली करनेके अतिरिक्त रखवालोंका और कोअी काम नहीं होता। पंजाबकी तरफ 'धर्मशाला' संस्था ही कुछ और तरह की है। सिक्खोंका ग्रंथसाहब जहाँ रखा और पढ़ा जाता है, अुस स्थानको वहाँ 'धर्मशाला' कहते हैं। वास्तवमें यही यथार्थ है। अैसे गुरुद्वारों अथवा धर्मशालाओंमें यात्री और अतिथि सुखसे रह सकते हैं। धर्मशालाके साधु अथवा व्यवस्थापक अुनकी सुविधाका विशेष ध्यान रखते हैं।

अिस आतिथ्यकी मात्रा हमारी धारणा अथवा अिच्छासे कहीं अधिक होती है। अिसलिअे पहले अनुभवके अवसरपर मैं बिल्कुल दंग रह गया। धर्मशालामें पहुँचते ही हमारा स्वागत आमन्त्रित मेहमानोंकी तरह बड़े प्रसन्न वदनसे किया गया। दाहिनी तरफके छज्जेपर हमें अेक कमरा दिया गया। अेक आदमी आकर वहाँ चिराग जला गया। दूसरेने आकर

पूछा — "कौन-कौनसे बरतन-बासन चाहिअें?" हम लेनेको तैयार होते, तो वह हमे सीधा भी दे देता। पर अिस तरहके स्वागतके लिअे हम तैयार न थे, अिसलिअे मैं हैरान होकर अेक कोनेमें जा बैठा। अनजान समाजके साथ घुल-मिल जानेकी कला स्वामी अच्छी तरह जानते हैं। बाबाजीकी और मेरी अेक और कठिनाअी थी। हमें हिन्दी नहीं आती थी। अिसलिअे घूमने-फिरनेके काम सहज ही स्वामीको करने पड़ते थे। वही हमारे 'मुखिया' बने। सारी यात्रामे अुन्होंने अपना काम बड़ी योग्यतासे किया। कभी-कभी अुनके अुत्साहके कारण हमे कुछ सहना भी पड़ जाता था। लेकिन कुल मिलाकर अुनके नेतृत्वके कारण हमारी सुविधाकी योजना और शान्तिका निर्वाह सुचारु रूपसे होता था।

बाबाजीने रसोअी बनायी। लकड़ियोंके धुअेने अपना 'सासपना' अच्छी तरह किया, अिसलिअे बेचारे बाबाजीको गूँगी बहूकी तरह .खूब रो लेना पड़ा। तीनोंने मिलकर भोजन किया। मुख्य व्यवस्थापक सन्यासी जब हमारी कुशल और आवश्यकताये पूछने आये, तो अुन्हें जवाब देनेका मुख्तारनामा स्वामीको सौंपकर मैं चैनसे सो गया। धर्मशालामे अितने अधिक यात्री अिकट्ठा हो गये थे कि वहाँ तीसरे दरजेके मुसाफिरखानों जैसी ही भीड़-भाड़ थी। अिसलिअे आस-पास घूमने या निरीक्षण करनेको जरा भी जी न चाहा।

सबेरे अुठते ही स्वामीने हमारे सामने वह सादी जानकारी पेश की, जो अुन्होंने रातमे जुटाअी थी। यहाँ अितनी धर्मशालायें है, अितने सदावर्त हैं; पास ही 'झाडी' नामका अेक 'बेर-बन' है, अुसमें साधु लोग मढ़ैया डालकर रहते है; पजाबी धर्मशालाकी आय बहुत है, आदि आदि सारी बातें सुनायीं। अुठकर शौच हो आये, तो हाथ-पैर धुलानेके लिअे भी अेक आदमी तैयार था। अितनी आवभगत यात्रियोंके लिअे अच्छी नहीं, यह विचार अुस समय जो मनमें आया, सो आज भी कायम है।

हमारे काव्यों, पुराणों अथवा आजकलकी अद्भुत कथाओंमें शौचविधिका अुल्लेख कहीं आता ही नहीं। स्मृतिवचनोंके बाहर मानो अिसके लिअे कहीं स्थान ही नहीं। अिस धर्मशालाके आस-पास भी अिस आवश्यक क्रियाके लिअे कोअी नियत स्थान या किसी प्रकारकी व्यवस्था

नहीं है। दूसरी सारी सुविधायें तो आवश्यकतासे कहीं अधिक हैं। परन्तु यह प्राकृतिक आवश्यकता प्रकृतिके हवाले ही छोड़ दी गयी है। अिसलिअे मैं मन ही मन सोचने लगा — "अगर मैं संन्यासी होअूँ और मेरे आशीर्वादसे कहीं कोअी हताश व्यापारी करोड़पति बने, तो अुसे मैं पुण्यका यही मार्ग सुझाअूँ कि वह अेक भी नयी धर्मशाला न बनवाये, बल्कि भारतमें जहाँ-जहाँ धर्मशालायें हों, वहाँ-वहाँ शौचक्रियाके लिअे आदर्श स्थान बनवा दे। अैसा करनेसे वह स्वयं तो स्वर्गको जायगा ही, पर साथ ही, अिस देशके लाखों यात्रियोंको सबेरेके नरकसे अुबार लेगा। मुझे काशीके त्रैलिंग स्वामीका स्मरण हो आया।

जान पड़ता है कि हृषीकेशकी भूमिपर रामचन्द्रजीके भाअी भरतजीका स्वामित्व है। साधुओंको मढैया बनाना हो, तो भरत-मंदिरके व्यवस्थापकों की अिजाज़त लेनी पड़ती है। भरतजीके दर्शन करके हम आगे बढ़े। जब हम किसी स्थानमें अनेक बार जाते हैं, तो अुसके प्रथम दर्शनका कौमार्य नष्ट हो जाता है। परन्तु काली-कमलीवालेकी धर्मशालामें अुसके बाद कअी बार जानेपर भी पहले दिनका स्मरण मेरे मनमें आज भी अुतना ही ताज़ा और नया है।

अेक ओर पर्वतकी वृक्ष-राजी और दूसरी ओर गंगाजीके पुलिनकी शोभा देखते हुअे हम आगे चले। बायीं तरफ धनराजगिरीकी कोठी आयी। वैसे अुसका रखा हुआ नाम तो 'कैलाश-कीर्त्ति-आश्रम' है, लेकिन वह 'धनराजगिरीकी कोठी' के नामसे ही पहचानी जाती है। यदि अुसे विद्वान् संन्यासियोंका कॉलेज कहा जाय, तो अुसके स्वरूपकी पूरी कल्पना आ सकती है। अत्यन्त प्राचीन कालसे संन्यासियोंने अिस गंगातटको ध्यान, अध्ययनके लिअे चुना है। यहाँ अन्नसत्रकी (सदावर्त) स्थापनासे पहले यहाँके साधु अपनी प्रातःकालकी साधना समाप्त करनेके पश्चात् ग्यारह मील चलकर भिक्षाके लिअे हरद्वार जाया करते थे। और वहाँसे अुतने ही मील लौटकर अपनी गुहामें प्रवेश करते थे। अुनकी यह मुसीबत देखकर हृषीकेशमें अन्नसत्र खोला गया। वहाँसे झाड़ीमें घूम-घूमकर साधुओंके पास साग-रोटी पहुँचायी जाती थी। बादमें यह व्यवस्था की गयी कि साधु लोग ही अन्नसत्रमें आकर भिक्षा ले जायँ। कुछ अन्नसत्रोंमें

अेक निश्चित प्रमाणमे ही भोजन दिया जाता है, और कुछमें साधु जितना चाहें अुतना। यदि कोअी साधु बीमार हो या बंगाली हो, तो अुसे भात मिलता है। पेटू अिन दोमेंसे किसी अेक वर्गमें घुसकर भात प्राप्त कर लेते हैं। दूसरे अन्नसत्रमें जाकर दाल-रोटी लेते हैं, और गंगाजीके तटपर बैठकर अुसे आरोगते हैं। रोटीकी किनारोंपर तो गंगाजीकी मछलियोंका ही अधिकार होता है।

हृषीकेशकी झाड़ीमें साधु लोग सुन्दर कुटिया बनाते हैं। जंगलसे जो घास लाते हैं, अुसीमेंसे थोड़ी घास लेकर रस्सियाँ बना लेते हैं। लकड़ीके लिअे दूर जाना ही नहीं पड़ता। गंगाजीमें कितने ही शहतीर चिकने हो-होकर बहते आते हैं। अुन्हींको बेगारमें पकड़ लेनेसे मुफ्तमे मतलब निकल आता है। अेक दिनमें अेक मढैया तैयार! दस-बीस मढैयोंके बीचमें अेकाध व्याख्यान-मण्डप भी बना होता है। वहाँ बैठकर कोअी विद्वान् आचार्य रोज संध्या-समय प्रस्थानत्रयीका विवरण करता है, और साधुओंके छोटे-बडे दल 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' का सिद्धान्त अनेक प्रकारसे समझ लेनेका प्रयत्न करते हैं। यहाँ निरा चर्वित-चर्वण ही होता हो, सो भी नहीं। नयी-नयी शंकायें अुठती हैं, और अुनके जवाबमें नयी-नयी दलीलें दी जाती हैं। कुछ अर्द्धदग्धोंका पाश्चात्य विचारोंसे समन्वय करनेका बेढंगा प्रयत्न भी यहाँ चला करता है। कुम्भमेलेके अवसरपर अैसे नये-नये विषयोंका विनिमय होता है, और शास्त्रार्थमें रुचि बढ़ती है। अिस प्रकार हमारे साधुओंने हमारे अध्यात्मशास्त्रको जीता-जागता और गूँजता रखा है।

कहते हैं अेक बार औरंगजेब अध्यात्मके अिस विद्यापीठपर अपनी फौज लेकर आया। साधुओंने अपनी झोपड़ियाँ जला डालीं और ख़ुद जंगली गाँवोंमें लापता हो गये। सैनिक अुनके पीछे कहाँतक दौड़ते? औरंगजेब हारकर लौट गया, और तीन ही दिनोंमें वह विद्यापीठ फिर ज्यों का त्यों तैयार हो गया। जो लोग अपरिग्रह-व्रतका पालन करते हैं, वे परतन्त्र या परास्त कैसे हो सकते हैं?

यहाँसे आगे जानेपर मार्गमें रामाश्रम मिला। यह छोटी-सी संस्था स्वामी रामतीर्थकी स्मृतिमें आगरेके लाला बैजनाथने स्थापित की है, और अिसमें अुन्होंने अपनी अेक छोटी-सी लायब्रेरी भी रखी है। लाला बैजनाथने

हिन्दू धर्मका गहरा अध्ययन किया था। अुनकी 'प्राचीन और अर्वाचीन हिन्दू धर्म' नामक अंग्रेज़ी पुस्तक मैंने पढ़ी थी। जब यह सुना कि लालाजी आश्रममें ही हैं, तो अुनसे मिलनेकी अिच्छा हुअी। अुनके साथके वार्तालापसे मेरे मनपर यह छाप पड़ी कि रामतीर्थके अिस शिष्यके मनमें कुछ अैसा खयाल है कि रामतीर्थके निर्माणमें अुसका भी कुछ हाथ या हिस्सा था। और, यह सच भी हो सकता है। अुन्होंने हमें भोजनके लिअे निमंत्रित किया। हमने अुनके यहाँ भोजन किया। फिर अुनकी रुचि-अरुचिका विचार किये विना ही अुनके दीवानखानेमें थोड़ा सो भी लिया। फिर कुछ बातें कीं, और अुसके बाद रवाना हुअे।

आजकलके साधु शास्त्राध्ययन नहीं करते। जीवनमें अुन्हें जो अवकाश मिलता है अुसे वे यों ही नष्ट कर देते हैं। यदि अुन्हें अुचित शिक्षा दी जाय, तो देशका सर्वांगीण अुद्धार हो। बस, कुछ अैसी ही धुन लालाजीपर सवार थी। अिसलिअे शिक्षित विरक्त युवकोंका संग्रह कर अिस प्रकारके आश्रमों द्वारा नये-नये स्वामी रामतीर्थोंका निर्माण करनेके लिअे वे अुत्कण्ठित थे। मुझसे यह छिपा न रहा कि हमारी तरफ वे कुछ लोभकी दृष्टिसे देख रहे थे। लेकिन हम किसी जगह ठहरनेके लिअे आये ही न थे। हम तो चलनेकी धुनमें थे। अिसके कअी साल बाद अिन्हीं लाला बैजनाथसे मैं आगरेमें मिला। अकबरकी मशहूर क़ब्रके रास्तेपर, यमुनाजीके किनारे, अुन्होंने जो अेक निवृत्तिस्थान बनवाया था, वह मुझे दिखाया, और अुस वक़्त भी मुझे वहाँ रहनेका प्रलोभन दिया। अिस निवासस्थानकी रचना बड़े मजेकी थी। अेक पहाड़ीपर अेक कमरा बना था। यह कमरा पुस्तकालयके लिअे बनाया गया था। अिस कमरेके नीचे पहाड़ीके गर्भमें अेक दूसरा कमरा था। अुस कमरेमें जमनाजीकी तरफसे आनेवाली शीतल वायु सदा मिलती थी। प्रकाश भी अुसी रास्ते आता था। पास ही अेक कोठरी रसोअियेके लिअे बननेवाली थी। अुनकी सूचना थी कि अिस स्थानमें रहकर संस्कृत तथा अंग्रेजी धर्मग्रंथोंका गहरा अध्ययन किया जाय, और देश-विदेशमें धर्मका प्रचार किया जाय।

रामाश्रमसे बाहर निकलते ही दाहिनी ओर चट्टानकी बगलमें बहनेवाली गंगाजीके किनारे हमने बढ़अियोंको बाँसोंका बेड़ा बनाते देखा। मुझे

तुरन्त रातकी मुसीबत याद आयी। मैं अेक बढ़अीके पास गया, और अुससे कहा — "भैया, अिन बाँसोंमेंसे हमें अेक बित्ता लम्बी फूँकनी बना दोगे?" अुसने दो फूँकनी बना दीं। अिससे बाबाजीको चूल्हा सुलगानेमें बड़ी आसानी हुअी। अिस 'वेणु-धमनी' ने सारी यात्रामें हमारे लिअे अींधन प्रदीप्त करनेका काम किया। आखिर बाबाजीकी गफलतसे अेक फूँकनी आधी जल गयी, और बची हुअी किसीके पैरों तले कुचली गयी। दूसरीका क्या हुआ, याद नहीं। बाँसकी फूँकनी साथ रखनेकी यह कल्पना मुझे सूझी, अिस कारण बाबाजी और स्वामीपर मेरी सूझ-शक्तिका ख़ूब सिक्का जम गया, और आजतक अुसमें वृद्धि ही होती गयी है।

यहाँसे हम लक्ष्मणझूला पहुँचे। हृषीकेशसे लक्ष्मणझूलेतक क्रमशः राम, भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मणके चार मन्दिर हैं। राम-मन्दिरके चारों तरफ बाज़ार है, और सामने छोटा-सा त्रिवेणी-संगम है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भरतजी वहाँकी सारी भूमिके मालिक हैं; शत्रुघ्नजीके सामने टेहरी दरबारकी ओरसे यात्रियों और मजदूरोंमें अिकरारनामा लिखाया जाता है, और लक्ष्मणजी गंगापार करनेवाले यात्रियोंपर निगाह रखते हैं।

कुलीके साथका करार महत्त्वकी चीज़ है। टेहरी राज्यमें शिक्षाका ज़्यादा प्रचार नहीं है। ये 'जंगली' कुली यात्रियोंके जान-मालको अक्षरशः 'शिरोधार्य' करके भयावने अरण्य पार करते हैं। अुनपर राजका पूरा-पूरा नियंत्रण रहता है। अिसका कोअी भरोसा नहीं कि धूर्त दुनियासे दूर, पापके प्रायश्चित्तके लिअे तीर्थयात्रा करनेको आनेपर भी, अपनी आदतसे बाज न आनेवाले यात्री बेचारे मजदूरोंको ठगेंगे ही नहीं। अिसलिअे क़रारके बिना मजदूर अेक क़दम भी आगे चलनेसे अिन्कार करते हैं। गंगोत्री, जमनोत्री और केदार तथा बदरी, अिन चार स्थानोंकी यात्रा करके यात्री रामनगर, अल्मोड़ा या काठगोदाम पहुँचते हैं। लेकिन मजदूर वहाँतक नहीं जाते। बदरीनारायणसे लौटते समय मिलचौडी अथवा गणाअी नामका अेक गाँव आता है, वहींतक टेहरी राज्यकी सीमा है। अिसलिअे टेहरीके मज़दूर शायद परराज्यमें न्याय न मिल सकनेके डरसे आगे नहीं जाते। मिलचौडीमें नये मजदूर लेनेके सिवा दूसरा चारा नहीं रहता।

लक्ष्मणझूलेका वर्तमान पुल लोहेकी रस्सी और सीखचोंका बना है, और झूलता हुआ है। दानवीर सेठ सूरजमलजीने अुसे बनवाया है, और यह नियम बना दिया कि अुसपर यात्रियोंसे कर न लिया जाय। पहले गंगाजी पार करनेके लिअे यहाँ छीकोंका पुल था। अेक छीकेपरसे दूसरे पर जानेमें जानका खतरा तो रहता ही था। साथ ही, नीचे गहराअीमें प्रचण्ड वेगसे बहती हुअी गंगाजीकी तरफ़ देखनेसे चक्कर आकर बिना खतरेके भी मनुष्य नीचे गिर सकता था। स्थिर दृष्टिसे प्रवाहकी तरफ देखनेसे अैसा ही मालूम होता है मानो पुल महान् वेगसे प्रवाहकी विरुद्ध दिशामे दौड रहा हो। ट्रेनमें बैठे-बैठे जिस प्रकार हमें पेड़ दौड़ते हुअे दिखाअी देते हैं, कुछ-कुछ अुसी तरहका भास यहाँ होता है। कलकत्तेके दानशूर सेठने यह सुरक्षित पुल बँधवाकर बहुत बड़ा पुण्य कमाया है, अिसमें सन्देह नहीं। परन्तु साथ ही हमें यह भी न भूलना चाहिअे कि अिस तरह यात्राका खतरा कम हो जानेसे यात्रियोंका पुण्य भी घट गया है। जबतक छीकोंके पुलसे गिरकर जल-समाधि मिलनेका पूरा-पूरा भय था, तबतक अुस पारके प्रदेशका 'स्वर्गाश्रम' नाम 'अन्वर्थक' था। अब तो अकेले धर्मराजका ही नहीं, बल्कि कोअी भी देहाती कुत्ता अिस पुलपरसे स्वर्गको जा सकता है।

लक्ष्मणझूलेके पास गंगाजीकी शोभा कुछ निराली है। आमने-सामने अूँचे कगार हों, अुनके बीचसे स्वच्छ हरा जल बन्धमुक्त होनेके आनन्दमें दौड़ रहा हो, और आस-पासके पहाड़ोंपर खड़े छोटे-बड़े वृक्ष यह दृश्य देख रहे हों, तो कौन किसकी शोभा बढ़ाता है, यह कहना मुश्किल हो जाता है।

कुछ स्थानोंका प्रभाव अद्भुत होता है। जितनी बार मैंने लक्ष्मणझूला पार किया अुतनी ही बार यह विचार मनमें अचूक आया कि सृष्टि चैतन्यमय है, अन्तरात्माने ही ये भाँति-भाँतिके आकार धारण किये हैं, और जिस प्रकार लाखों बरसोंसे बहते रहनेपर भी गंगाजीके पानीका अन्त नहीं आता, अुसी प्रकार अन्तरात्माकी विभूतियोंका भी कोअी अन्त नहीं। नदीका जल और अुसमें खेलनेवाली मछलियाँ, वृक्षोंके पत्ते और अुनपर गानेवाले पंखी, पठारकी घास और अुसपर

चरनेवाले पशु, और अिन सबका द्रोह करते हुअे भी परमपिताकी विरासत प्राप्त करनेकी अिच्छा रखनेवाला मनुष्य, सब अेक ही हैं, द्रोह और पाप केवल माया है, अभेद और प्रेम ही वास्तविक है, अिस प्रकारके विचार, जाने कहाँसे, जब-जब लक्ष्मणझूलेपर पैर रखा, मेरे मनमें आये हैं, और बाबाजीके साथ मैंने अुनकी चर्चा की है।

हिमालयकी सारी यात्रा पूरी करनेके पश्चात् बाबाजीके साथ मैं कुछ समयतक अिस झूलेके पडोसमें ही रहा था। अुस समय सुना था कि वहाँसे नीचेकी तरफ कोअी दो-अेक मीलपर, कअी साल पहले, अेक साधु रहते थे, जो 'सोऽहम्'का जप किया करते थे। अेक दिन अेक भूखा शेर अुनपर झपटा। अुस समय भी 'सोऽहम'का अुनका घोष चलता ही रहा। 'सोऽहम्'का अर्थ ही अभेद है। अिस साधुको मृत्युके समय भी बाघके भय या क्रोधकी बाधा न हुअी। अुसी स्थानपर, अति प्राचीन कालमें, हमारे धार्मिक ग्रंथ लिखे गये थे; अिसकी दन्तकथा भी मैंने यहाँ सुनी थी। परन्तु वह कथा भगवान् व्यासके विषयमें थी या आद्य शंकराचार्यके विषयमें, सो आज याद नहीं।

यहाँ बेरके पेड़ बहुतायतसे हैं, और नजदीक ही धानके जो खेत हैं, वे आसपासके सारे प्रदेशमें प्रख्यात हैं। अिस तपोवनके 'बासमती चावल' का भात खानेके लिअे, अमीरों और फकीरोंका तो कहना ही क्या, देवताओं और पितरोंका भी जी ललचायेगा।

२४

नये-नये अनुभव

मस्तिष्कमें यात्राके चित्र अितने भरे पड़े है कि जिनका कोअी पार नहीं। परन्तु अुनके नीचे या पीछे स्थल—काल लिखकर नहीं रखे, अिसलिअे अुनका क्रमबद्ध चित्र-संग्रह (अल्बम) तैयार नहीं होता, और यह डर बना रहता है कि कहीं अेक स्थानका वर्णन किसी दूसरे स्थानपर न जड़ जाय। अिसलिअे जितना स्पष्ट रूपसे याद है, अुतनेकी ही मर्यादामें रहना अुपयुक्त है। कल्पनाके रंग तो चाहे जितने भरे जा सकते है, परन्तु कम-से-कम मूल रेखाचित्र यथादृष्ट होना चाहिअे, तभी वह यथार्थ यात्रावर्णन माना जायगा। स्वामीकी लेख-माला पढ़ता हूँ, तो धुँधली होनेवाली स्मृतियाँ ताज़ा होनेके बदले और अुलझ जाती है।

अिस स्थितिका अनुभव करनेपर अेक नया ही विचार मनमे आया। जो यात्रा हमने साथ-साथ की, अुसके वर्णन पढ़नेपर भी यदि अुस समयके चित्र दृष्टिके आगे अुपस्थित नहीं होते, तो जिन्होंने यात्रा की ही नहीं है, अुन्हे कोरे शब्दात्मक वर्णनसे कितनी कल्पना करा सकूँगा? यदि सारा वर्णन अेक शब्दजाल ही बन जाय, तो अुससे अुत्पन्न होनेवाला आनन्द सृष्टिका आनन्द नहीं, बल्कि शब्दोंका ही आनन्द होगा। अुसे कोअी शुद्ध या अुच्च आनन्द नहीं कहा जा सकता। किसीको गुदगुदाकर हँसानेके समान ही यह प्रवृत्ति होगी। अिसमेंसे तत्त्वकी बात कितनी मिलेगी?

परन्तु अिस तरहके विचार बोलनेवालों और सुननेवालो को विषण्ण बना देते है। वे अुनका रस-भग कर देते हैं। अिसलिअे सयानोंको अैसे विचार अपने पास ही रखने चाहिअें। व्यक्तिगत दुःखके लिअे जिस प्रकार प्रकट रूपसे रोना नहीं चाहिअे, अुसी प्रकार निर्मोह दशा भी प्रकट नहीं करनी चाहिअे। अिसलिअे, आअिये, यह सब यहीं छोड़कर हम अपनी यात्रापर आगे बढ़ें।

लक्ष्मणझूलेतक हम सभ्य संसारमें थे। हमने लक्ष्मणझूला पार किया, दाहिनी तरफका स्वर्गाश्रमवाला रास्ता छोड़ दिया, और वनमें

प्रवेश किया। यहाँसे रास्ता बहुत अूँचा-नीचा होने लगा। भयसे अपरिचित होनेके कारण जंगलके कुछ जानवर जिस तरह कभी-कभी मनुष्यके बिलकुल पास आ जाते हैं, अुसी तरह पेड़ और लतायें बहुत नजदीक आने लगीं। और हमें भी अैसा मालूम होने लगा कि अब हम अरण्यक हैं। झम्पानमें बैठनेवाले लोग आस पासके दृश्यसे विसदृश (बे-मेल) और विश्री (बे-ढब) दिखाअी देने लगे। 'झम्पान' अेक तरहकी पालकी होती है। अिसे अुठानेवाले कहार चौकोन बनाकर नहीं चलते, किन्तु चारों आदमी अेकके पीछे अेक, यों, अेक कतारमें चलते हैं। क्योंकि सँकड़े रास्तेकी विकट पगडण्डी पर अुन्हें चलना होता है, जहाँ दो आदमी बराबरीसे खड़े भी नहीं रह सकते। कहीं अेक तरफके अूँचे पहाड़से टकरा जायँ, तो चारों कहार, अुनकी झम्पान, और झम्पानमें रखा हुआ जीवित बोझ, सभी दूसरी तरफकी गहरी खाअीमें गिरकर स्वर्गको पहुँच जायँ!

कण्डीमें बैठनेवाले लोग अितने बेडौल नहीं लगते। जंगली बेंतके बने हुअे, पानी पीनेके लम्बे गिलासके-से आकारवाले, अेक बड़े टोकनेमें आधे तक सामान भरकर यात्री अुसपर बैठ जाते हैं। पाँव बाहर निकालनेके लिअे टोकनेके अूपरके हिस्सेमें दरारें बनी रहती हैं। और पाँव लटके-लटके थक न जायँ, अिसके लिअे अेक काम चलाअू रकाब लगी होती है। अेक मज़दूर अिस तरहका टोकना (कण्डी) अपनी पीठपर कन्धोंसे बाँध लेता है, अिससे जाकट पहननेके बाद जिस तरह हाथ खाली रहते हैं, अुसी तरह मजदूरके हाथ खाली रहते हैं। कण्डीका सारा बोझ अकेले कन्धोंको ही अुठाना न पड़ जाय, अिसके लिअे अेक पट्टा मजदूरोंके सिरपर लगा रहता है। जब मज़दूर चलता नहीं होता, अुस वक़्त अपने कन्धों और माथेको आराम पहुँचानेके लिअे वह T के आकारकी कुबड़ी-नुमा अेक लकड़ी अपने साथ रखता है। कण्डीके नीचे अिस कुबड़ीको रख देनेपर मजदूर अुसके बोझसे मुक्त हो जाता है। अिस प्रकार अेक मज़दूरके सिरपर अेक आदमी जान-मालके साथ चलता है। लेकिन अुसका मुँह पीछेकी तरफ होता है। शुरू-शुरूमें यह सारा दृश्य हास्यास्पद मालूम होता है, परन्तु अिसे देखते रहनेका अभ्यास हो जानेपर यह जँचने लगता है कि अिस प्रदेशमें यही ठीक है। जब पड़ावपर पहुँचकर मजदूर आपसमें

बातें करते हैं, तो कौन कितने मनकी 'लाश' अुठा रहा है, अिसका अुल्लेख किये बिना नहीं रहते। यहांकी यह रीति है कि यदि आपका मज़दूर आपके लिअे, आपके सामने, 'लाश' शब्दका प्रयोग न करे, तो समझिये कि अुसने मर्यादा निबाह ली।

जिन दिनों यात्राका मौसिम पूरे ज़ोर पर था, अुन्हीं दिनों हमने अपनी यात्रा शुरू की थी, अिसलिअे हमें रास्तेमें कहीं कोअी स्थान निर्जन नहीं मिला। चींटियोंकी क़तारकी तरह हम लोग चलते थे। हमारे साथ अहमदनगर या बरारकी तरफके अेक सज्जन 'झम्पान' में बैठकर यात्रा कर रहे थे। अुनके साथ आश्रितोंका परिवार भी कम न था। बादमें मालूम हुआ कि दो पत्नियोंके स्वामी होनेपर भी अुनके कोअी सन्तान न थी। अिसलिअे वे बदरीनारायणके दर्शनको जा रहे थे।

झम्पानमें बैठनेवालोंकी मुद्रापर दो तरहके भाव देखनेमें आते हैं। कुछ लोगोंके चेहरोंपर शर्मका भाव होता है। मानों वे यह कहते-से मालूम होते हैं—"हम स्वयं चल नहीं सकते, अिसलिअे हमें जीते जी मनुष्यके कन्धेपर बैठना पडता है।" दूसरी कोटिके लोग अिस शानमें रहते हैं कि "क्या हम कंगले हैं, जो पैदल चलेंगे?" अपने चेहरोंपर अिस शानका भाव दिखाकर वे अपना कल्पना-दारिद्र्य ही प्रकट करते हैं।

हमारा प्रवासी साथी अिस दूसरी श्रेणीका था। वह झम्पानमें मुर्देकी तरह अकड़कर बैठा था, और अूँटकी तरह अिधर-अुधर देखता था। अुसकी स्त्री पैर बढ़ाये अुसके पीछे-पीछे चलती थी! अुस भले आदमीसे यह सहा न गया। बादशाह-जैसी आवाजसे अुसने हुक्म दिया—"ज़रा आगे चली जायगी, तो तेरा क्या बिगड़ जायगा? जा, चट्टीपर कुछ पहले पहुँचकर रसोअी बनाना शुरू कर दे; तबतक हम भी आते ही हैं।" अुस बेचारीका अुस समयका सम्भ्रम आज भी मेरी आँखोंके सामने आता है। क़द कुछ छोटा, दोहरी हड्डी, फीकी हरी साड़ी, माथेपर पुराने ढबकी बड़ी बिन्दी, नाकमें बड़ी-सी नथ, घुँघराले बाल, जिनमेंसे कुछ अुड़ रहे हैं, और कुछ पसीनेके कारण माथेपर चिपक गये हैं, अैसी अवस्थामें वह सनी हिमालयके रास्तेपर, चाहे चढ़ाव हो या अुतार, हाँफती हुअी चल रही है। घड़ीमें पीछे देखती है, घड़ीमें कहीं हमारी नज़रमें अुसकी

फज़ीहत तो नहीं हो रही है, अिसकी जाँच करती है, और फिर सिर झुकाकर आगे चलने लगती है, मानो हिन्दू-समाजकी विडम्बना प्रायश्चित्त करने जा रही हो। अरबस्तान अथवा मध्य अेशियाके जंगली पुरुष नारी-प्रतिष्ठा जानते ही नहीं। जब जोरोंका तूफान चलता होता है, तो पुरुष खीमोंमें बैठ जाते हैं, और खीमोंको अुड़नेसे बचानेके लिअे अपनी स्त्रियोंसे कहते हैं कि वे अुनकी रस्सियाँ पकड़कर बाहर बैठें। अुनके अैसे वर्णन पढ़कर हम अुन लोगोंपर तरस खाते हैं। परन्तु जब हमारे ही यहाँ नौजवान मर्द .खुद आराम करते हैं, और स्त्रियोंसे मनमानी मेहनत-मशक़्क़तके काम लेते हैं, तो हम यह सब चुपचाप सह लेते हैं।

यह बहन अुस यात्रीकी पहली स्त्री थी। अिसे सन्तान न होनेपर अिसके मर्दने दूसरी शादी की थी। अतः यह स्त्री तो अुसके प्रेमकी अपात्र मज़दूरिन ही हुअी न? अुसे जल्दी पड़ावपर पहुँचना ही चाहिअे, अुस अपरिचित प्रदेशमें रसोअीके लिअे जगह प्राप्त करनी ही चाहिअे, और चट्टीवालेसे बरतन-भाँडे माँगकर रसोअीकी तैयारी भी कर लेनी चाहिअे। अेक दिन न जाने क्या हुआ, चट्टीमें हम लोग भोजन कर रहे थे, अितनेमें वह नरपशु आपेसे बाहर हो गया — वह अपनी स्त्रीपर बिगड़ पड़ा। स्त्री बेचारी हाथ जोड़ने लगी। किन्तु अुसने अुसके माथेपर प्रहार कर ही दिया। वह जमीनपर गिर पड़ी। फिर क्या पूछना था? अुसने अुस बेचारीकी पीठपर अपने पैरोंकी खुजली मिटाअी। साथवाले आश्रित पत्तलपर बैठे-बैठे यह सारा दृश्य टुकुर-मुकुर देख रहे थे। आखिर वह नर-बैल मारते-मारते थका या भूखसे व्याकुल हो गया, कहना मुश्किल है। परन्तु अुस दिन अुसने .खूब डटकर भोजन किया, और बादमें अुस स्त्रीकी तरफ देखकर बोला — "अब आरामसे बैठकर भोजन कर ले!" बेचारीने कहारोंके साथ भोजन किया, और सबके जूठे बरतन अुठाकर माँजने ले गयी।

आर्य परिवारके झगड़ेमें बाहरी आदमीका बीच-बचाव करना ठीक नहीं, अिस विचारसे हमने यह सब सह लिया। आज मुझे अपनी अुस कायरता पर घृणा आती है। अुस समय भी मनमें विचार अुठा था कि क्या यही हमारा आर्यधर्म है? जब मनुने 'यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते' लिखा था, क्या

अुस समय अुसने अिसी तरहकी ‘पूजा’ की कल्पना की होगी? माना कि पति पत्नीका देवता है, लेकिन क्या स्त्री पतिकी ग़ुलाम है? या मवेशी है? किसी सनातनी शास्त्रीसे पूछा जाय तो वह अिसके लिअे भी शास्त्रसे कोअी-न-कोअी प्रमाण अवश्य निकाल देगा। अुपनिषद्में लिखा है कि मनुष्य देवोंका पशु है। पति देव है। अत. पत्नी अुसका पशु ही हुअी न? यदि अुपनिषद्-कालीन ऋषि यह तर्कशास्त्र सुने, तो बेचारे अपनी निर्दोष काव्य-रचनापर असंख्य बार पछतायें। पतिकी सेवा करना पत्नीका धर्म है। अैसा अेकांगी धर्म चाहे मान भी लिया जाय, परन्तु सेवा, और सो भी अिस तरहकी सेवा, लेनेका पतिको अधिकार है, अैसा तो कहीं भी लिखा नहीं है।

बात यह है कि हमारा धर्म आर्य आदर्शों और अनार्य वृत्तियोंका विचित्र मिश्रण बन गया है। और हीन वृत्तिके संस्कृतज्ञ तार्किकोंने धर्मको शुद्ध रखनेके बदले हर अेक रिवाजका बचाव करनेका बीड़ा उठाया है। व्याकरणकार जिस प्रकार ‘छन्दसि बहुलम्’ कह कर काम चला लेते हैं, अुसी प्रकार हमारे ज्ञातिभिन्न समाजने यह तय किया है कि कोअी किसीके काममें दखल न दे। अिसका परिणाम यह हुआ है कि आखिर नामर्द जबरदस्त शहजोर बन गये है। शास्त्रियोंके मनमें यह विचार नहीं आता कि अगर धर्मके शुद्ध स्वरूपकी रक्षा न की गयी तो सारे धर्मकी दुर्दशा हो जाती है, जीवन विकृत बन जाता है, और परधर्मियोंकी जीत हो जाती है। जब-जब हिन्दू धर्मपर परधर्मियोंने विजय प्राप्त की है, तब-तब अुस विजयकी जड़में हमारे लोगोंका रूढि-दास्य और असावधानी ही रही है। सामना करनेमें हम हमेशा कायर साबित हुअे है। अन्याय सहनेमें हम जिस धीरज और बहादुरीसे काम लेते हैं, अुसका अुपयोग अन्यायका मुकाबला करनेमें करे, तो हमारे सभी दुःख दूर हो जायँ।

मन-ही-मन अिस तरहकी बातें सोचते हुअे हमने भोजन समाप्त किया, और बिना आराम किये ही आगे बढ़े। अेक-दो दिनके ही अनुभवसे हमें पता चल गया था कि चट्टीपर देरसे पहुँचनेमें लाभ नहीं। जिस प्रकार स्टीमरपर पहले पहुँचनेवाला मीर होता है, वह जितनी जगह रोक ले, सब अुसीकी हो जाती है, अुसी तरह चट्टीपर भी होता था। यह चट्टी

है क्या चीज़? यात्रियोंके लिअे जंगलमें दुकानदारोंकी बनाअी हुअी कामचलाअू दुकानें। यहाँ अैसा कोअी कानून नहीं कि घरकी फर्श गीली न रहे या दीवालें अूँची हों। छप्परपर घास-फूस या पत्ते छाये होते हैं। और यह सारी कारीगरी 'पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेण्ट' (बारीक मास्टरी) की न होनेसे पहाड़में जैसा रास्ता, वैसा दुकानका आकार होता है। अिस प्रकारका स्थापत्य शहरी आँखोंको शुरू-शुरूमें भले ही अच्छा न लगे, परन्तु जंगलकी सम्पूर्ण शोभासे मेल खानेकी दृष्टिसे वहाँ अिसकी अपेक्षा दूसरी कोअी पद्धति अुपयुक्त न होगी।

अिस चट्टीके अेक कोनेमें दुकानदार अपना माल जमाकर रखता है। मालमें क्या क्या होता है? गेहूँका आटा, नमक, मिर्च, घी, आलू, और अगर दुकान बड़ी हो, तो दाल और चावल भी। दुकान बड़ी हो या छोटी, अुसमें तमाकू तो होती ही है। परन्तु वह अुस किस्मकी नहीं होती, जो हमारे यहाँ मिलती है। हिमालयमें तमाकूका पौधा नहीं होता, अिसलिअे वहाँ गुड़में बनाया हुआ गुड़ाकू अधिकतासे बिकता है। फिर, अेक कोनेमें रसोअीके बरतन भरे होते हैं, जिनसे यात्रियोंको बहुत बड़ा सुभीता होता है। यदि यात्री अपने-अपने बरतन साथ लेकर यात्रा करने लगें, तो मनुष्योंकी अपेक्षा बरतनोंका ही पुण्य बढ़ जाय, और अुनके बोझसे दबकर यात्री असमय ही स्वर्ग पहुँच जायँ!

हिमालयके ग्रामीणोंकी रसोअीमें विलक्षण स्वावलम्बन होता है। अुनके पास बोहरोंकी टोपी-सी अेक मोटे लोहेकी पतीली या तसली होती है। पहले वे अुसमें आटा गूँध लेते हैं, फिर गूँधे आटेको पत्थरपर रख देते हैं, बादमें तीन पत्थरोंका अेक चूल्हा बनाकर अुसकी आँचपर अुसी तसलेमें रोटियाँ सेक लेते हैं। फिर अुन सारी रोटियोंको गमछेपर रखकर अुसी तसलेमें शाक बना लेते हैं। चूँकि तसला लोहेका होता है, अिसलिअे अुसमें हर तरहके शाकका अेक ही रंग आता है। अिससे अधिक अुन्हें और क्या चाहिअे? वे डटकर साग-रोटी खाते हैं, और तसला माँज लेते हैं। फिर वही तसला पानी पीनेके काम आता है। भोजनके बाद वे दोपहरमें ज़रा देर वामकुक्षी (आराम) कर लेते हैं, और फिर अुसी तसलेको सिरपर रखकर अुसके अूपर साफेकी तरह पिछौरा बाँध लेते हैं।

अब यदि आकाशसे आम की गुठलीके बराबर ओले गिरें, तो भी अुनका सिर सलामत समझिये। अिनमें अितनी सूझ और हिकमतके रहते भी शहरी यही कहते हैं कि पहाड़ी लोग जंगली होते हैं। जंगली नहीं तो और क्या? जो जंगलमें रहते हैं वे अपंग नहीं होते। और अपंगता तो सभ्यताकी नींव और शिखर भी है। असंख्य साधनोंके बिना जिनका निर्वाह नहीं हो सकता वे तो सभ्य, और जो थोड़े-से साधनोंसे गुज़र करनेकी सिफत रखते हैं वे जंगली — क्या यह व्याख्या ठीक नहीं है?

हम ज़रा क़दम बढ़ाकर सबसे पहले मुकामपर पहुँच जाते, अच्छी-से-अच्छी चट्टी खोज लेते, और साफ चूल्हा बनाकर रसोअी शुरू कर दिया करते। यहाँ 'हम' से मतलब स्वामीसे है। क्योंकि अुनकी चाल घोड़ेकी चाल थी। दूसरे नम्बरपर बाबाजी पहुँचते। मैं हमेशा आखिरमें पहुँचता। क्योंकि मेरे सिरपर सबसे ज़्यादा भार था — रास्तेमें जितने भी पेड़-पौधे मिलते अुन सबकी कुशल पूछना मेरा काम था। जितने फल, फूल, पक्षी नजर आते वे सब मुझे बुलाते। जहाँ ये सब न होते वहाँ आकाशके बादल तो होते ही थे। फिर अुन दिनों मुझे हाथमें छोटी-सी माला लेकर जप करनेकी भी आदत पड़ गयी थी, अिसलिअे जगत् और जगदम्बाके बीच मेरा ध्यान अितना बँट जाता था कि मैं बिना चूके तीसरे नम्बरसे ही पहुँचता था। पहुँचनेपर मैं अुठता न था, बैठे-बैठे सारा काम करता था। सामान बाँधना, खोलना, जमाना यह सब मेरा काम था। जब लकड़ियाँ कम होतीं, तो बाबाजीका चूल्हा भी सुलगा देता था। भोजनके बाद बरतन भी मैं ही माँजता था। मेरे माँजे हुअे बरतन देखकर पहाड़ी दुकानदार ख़ुश-ख़ुश हो जाते थे। स्वामीके पैरोंमें और वाणीमें असाधारण बल था। अिसलिअे वे सर्वत्र पहुँच जाते थे। अिस प्रकार हमारा संघ चलता था। जल्दी-जल्दी चलनेका निश्चय करनेके कारण हमने अुस दो गायोंवाले बलीवर्दकी संगतिसे भी छुटकारा पाया।

ज्यों-ज्यों हमारी यात्रा बढ़ती गयी, त्यों-त्यों हमारी भूख भी बढ़ती गयी। अेक पतीली भरकर दाल बनाते थे, और अुसे तीनों अेक-दूसरेका मुँह देखते-देखते खा जाते थे। बादमें रातकी दो-चार रोटियाँ रख छोड़ते, और अुन्हें सवेरे गुड़के साथ खा लेते। देखते ही देखते हमारे

गाल गाजरकी तरह लाल दीखने लगे। वज़न तो बेचारा बढ़ता ही कैसे? रोज़ाना बीस-तीस मीलकी रपटके साथ वजनका मेल नहीं बैठता। वह बेचारा राह देखता बैठा होगा कि कब अवकाश मिले और कब बढ़ूँ। हमने जो कुछ आराम लिया, वह अिस तरह हमारे लिअे बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ।

२५

देवप्रयाग

रेलकी यात्रामें जब गाड़ी किसी सुरंगमें डुबकी लगाती है, तो पाँच-दस मिनटतक अँधेरेके सिवा और कुछ दिखाअी ही नहीं देता। अुसी प्रकार पुरानी स्मरण-यात्रामें विस्मरणकी सुरंगें आ जाती हैं। बम्बअीसे पूना जाते समय खण्डाला घाटकी या बेलगाँवसे गोआ जाते समय तिनअी घाटकी लम्बी-लम्बी सुरंगोंके बीच-बीचमें कुछ झरोखे आते हैं, जिनमें प्रकाश जरा-सी झाँकी दिखाकर लुप्त हो जाता है। विस्मरणमें भी अिसी तरह स्मृतिकी अेक किरण — केवल अेक ही किरण — चमककर विस्मृतिको और भी घनी बना देनेका काम करती है।

जिस दिनका वर्णन आज लिख रहा हूँ, वह दिन अिसी प्रकार विस्मृतिमें डूब गया है। महादेव चट्टीका रूप ज़रा भी याद नहीं आ रहा है। संसार नाम-रूपका बना है। अुसमेंसे यदि रूप जाता रहे, तो नाम ही शेष रह जाता है। मेरे लिअे महादेव चट्टी 'नामशेष' हो गयी है।

मुक़ामपर पहुँचते ही मैं आरामसे बैठ गया; नहीं, मैं बिलकुल पैर फैलाकर लेट गया। यह अेक मेरी सुभीते की आदत थी। मौका पाते ही मैं यथेष्ट आराम कर लिया करता था। अिसलिअे सारी शक्तिका अुपयोग चलनेके काममें होता रहता था। स्वामीको आगे जाना था। मुझे लेटते देखकर पूछा — "क्या थक गये हो? मैं आगे जाना चाहता था।" मैंने कहा — "अुठकर फजूल अिधर-अुधर टहलना ही हो, तो यह मुझसे न होगा; लेकिन अगर पाँच-दस मील चलकर नयी चट्टीपर पहुँचना हो,

तो मैं ज़रा भी थका नहीं हूँ। यह देखो, मैं चला।" कहकर मैं अुठ खड़ा हुआ और चल पड़ा।

हम नयी चट्टीपर पहुँचे। पर वह बहुत ही छोटी निकली। रेलवे टाअिमटेबलमें गोरे लोगोंके लिअे भोजनका स्टेशन, चायका स्टेशन, वग़ैरा स्टेशन मुकर्रर ही होते है। यात्रामें भी सोनेकी चट्टियाँ हमेशा बड़ी होती हैं। हर रोज़ अमुक मील चलनेका यात्रियोंका क्रम बँधा होता है। अुसके अनुसार सुविधायें प्रस्तुत हो जाती हैं, और बादमें फिर सुविधाके कारणसे भी यात्राके पड़ाव तय हो जाते है। दिनवाली चट्टीमें हमने रात बिताअी। दिनके दुकानदारको रातके यात्री बहुत कम मिलते हैं। अिसलिअे वे अैसे अवसरपर यात्रियोंका विशेष ध्यान रखते है।

यहाँसे हम आगे चले। चलते-चलते देवप्रयाग नज़दीक आया। मेरी अण्टीमें घड़ी थी। वह मुझसे अुम्रमें बड़ी और समय-पालनमें वफादार थी। परन्तु मैंने ही अुसे कअी दिनोंका अुपवास कराया था। अिसलिअे समयकी बात तो सूर्यनारायणसे ही दरियाफ्त करनी पड़ती थी। रास्तेके किनारे अेक डाकघर मिला। अुसे देखते ही स्वामीको वहाँसे समय लाकर मेरी घड़ीमें भरनेकी सूझी। घड़ीको जीवित और चालू करके हमने देवप्रयागमें प्रवेश किया। अगर मेरी स्मृति ठीक है, तो यहाँ माधवानन्द नामके बंगाली साधु हमें पहले-पहल ही मिले। अिनके विषयमें बहुत-कुछ लिखने योग्य है। अुसमेंसे थोड़ा-बहुत यथास्थान लिखा जायगा।

देवप्रयाग पच प्रयागोंमेंसे अेक है। वह अेक पहाड़ी चट्टानपर बना पक्षियोंका अेक घोंसला-सा लगता है। अुसके दो हिस्से पड़ते है। नदीके अिस तरफ अंग्रेज़ी (खालसा) है, और अुस पार टेहरी राज है। बीचमें केदारनाथसे आनेवाली अलकनन्दा पीली मिट्टी लिये बहती है। और नीचे भोडलकी बिलकुल महीन रेतसे चमकती हुअी भागीरथी, गंगोत्रीसे आकर, अलकनन्दासे मिलती है। बाबाजी कहने लगे — "यात्रामें अपने साथ अेक लोटा ज़रूर होना चाहिअे। चौड़े मुँहका हो, तो हाथ डालकर अन्दरसे साफ किया जा सके। किसी दिन दूध मिल जाय, तो वह भी गरम किया जा सके।" स्वामी बाजारमें गये और अेक लोटा लेकर मुक़ामपर लौटे। क्योंकि अब जैसे-जैसे हम आगे बढ़ेंगे, वैसे-वैसे हमें बाज़ार न

मिलेंगे, और मिले भी, तो वहाँ लोटे कहाँसे आयेंगे? मैंने लोटेमें पानी भरकर देखा। लोटा फूटा निकला। बाबाजीने स्वामीसे कहा — "अिसे तुरन्त वापस करो, और दूसरा लेते आओ।" लोटेमें पानी भरकर स्वामी दूसरी बार बाजार गये। दुकानदार भला आदमी था। जिस प्रकार हमारे यहाँ दुकानदार भोले ग्राहकको धमकाते हैं, अुस तरह धमकाना वह सीखा न था। अुसने दूसरा लोटा निकालकर दे दिया। बगैर देखे-दाखे लोटा लानेके लिअे हमने स्वामीको दोष दिया था, अिसलिअे अिस बार स्वामी वही भूल फिर कैसे करते? अुन्होंने नये लोटेमें पानी भरा। पानी चूने लगा। दुकानदारने तीसरा लोटा निकाला। अुसमेंसे भी गंगा बह निकली। चौथा, पाँचवाँ, छठा, अिस प्रकार बेचारेने कितने ही लोटे निकाले। हरअेककी दशा पहले लोटे-जैसी ही थी। वामनावतारके दिनोंमें बहनेवाली झारीको बन्द करनेका सामर्थ्य अेक ब्राह्मणने दिखाया था, परन्तु कलियुगमें सभी लोटोंको चूनेवाला बना देनेकी अद्भुत शक्ति तो देवप्रयागमें स्वामी आनन्दने ही दिखलाअी। बेचारा दुकानदार हक्का-बक्का रह गया। अुसने समझा, हो-न-हो, स्वामी कोअी जादूगर है! वह गिड़गिड़ाकर स्वामीसे अपनी माया समेटनेके लिअे अनुनय-विनय करने लगा। स्वामी बड़े परेशान हुअे। निदान लोटेके दाम वापस लेकर वे मुकामपर लौट आये। मध्यकालीन लोक-साहित्यमें अिन्द्रजालकी अनगिनत कहानियाँ प्रचलित हैं। अुनमेंसे अधिकांशकी तहमें कुछ अिसी तरहके किस्से तो न होंगे?

सवेरे अुठकर मैं अकेला ही अलकनन्दाके तीरपर जा बैठा। बहुत नीचे अुतरना पड़ता था। अलकनन्दाकी वह शान्त शोभा देख मैं तो सुध-बुध भूल गया, और न जाने कितनी देरतक वहीं बैठा रहा। आखिर जब बाबाजी या स्वामी बुलाने आये, तब सुध हुअी कि हम यहाँ यात्राके लिअे आये हैं, और तीन जने अेक साथ हैं।

शामको स्वामीने कहा — "चलो, हम संगमपर चलें।" पुल पार करके हम मन्दिरकी ओर गये। वहाँसे अुतरकर संगमतक पहुँचे। यहाँ चट्टानमें लोहेकी जंजीरें जड़ी गयी हैं; अुद्देश्य यह है कि यात्री गंगाजीमें नहाकर स्वर्गके अधिकारी तो बनें, पर तुरन्त स्वर्गको न जायँ; क्योंकि भागीरथीका प्रवाह यहाँ बहुत वेगवान है। यहाँ 'गंगातरंगकणशीकर-

शीतलानि' वाला श्लोक मैंने स्वामीको समझाया। शामका समय था। हम दोनों भागीरथीके किनारे बैठ गये। अेक छोटा-सा पक्षी अुस पारके किनारेपर बैठा था। बीचमें पानीकी धारा जोरसे बह रही थी। हम दोनों अुस पक्षीकी तरफ देखने लगे। शुरूमें वह पक्षी अपनी गरदन घुमाता था, सिर हिलाता था, पर थोड़े ही समयमें प्रकृतिने अुसपर अपनी मोहिनी डाली, और वह भी अेक टक देखने लगा। वह हमारी भाषा नहीं जानता था। अुसका हृदय हम नहीं जानते थे। फिर भी भागीरथीने हम तीनोंका हृदय अेक बना डाला था। अूपर मन्दिरकी घण्टा भक्तोंको दर्शनका निमंत्रण दे रही थी। हमें तो यहीं आत्मौपम्य द्वारा भगवान्‌के दर्शन हो रहे थे।

हम तो आदमी ठहरे, अँधेरेमें चिराग जलाकर भी चलेंगे, और रात घरके भीतर सोयेंगे। परन्तु अुस पार बैठा हुआ हमारा वह भाअी अँधेरा होनेपर रात किस तरह बितायेगा? भारी पैरोंसे या भारी परोंसे वह अुठा और अनन्त आकाशमें न जाने कहाँ चला गया। हम हर रोज हजारों पक्षी देखते हैं। अुनकी दुनिया जुदी, हमारी जुदी। अुनके और हमारे बीच खेतोंके अनाज और पेड़के फलोंके बँटवारेकी तकरार होती है। अुनका हमारा अितना ही सम्बन्ध है। परन्तु देवप्रयागका वह द्विजराज आज भी मेरे हृदयमें अपना स्थान बनाकर बैठा है। विषादके समय मनमें विचार आता है कि यदि वह पक्षी लौट आये, तो हम तीनोंके हृदय अेक हो जायें।

मन्दिरका जीर्णोद्धार अमुक व्यक्तिने अमुक समय किया था, अिस आशयका कोअी लेख स्वामीने वहाँ खोज निकाला। हम दर्शन करके लौटे। रातमें अुस पक्षीके ही सपने आये। वह पूर्वजन्मका कोअी साथी होगा, भाअी होगा, या प्रेमी होगा। वह फिर मिलनेवाला नहीं। किस कारण वह हमारी मानस-पूजाका अधिकारी बना, सो कौन बता सकता है? पर यदि मानस-पूजामें कोअी शक्ति है, तो वह अवश्य फिर आयेगा। यदि अुसे मालूम हो जाय कि हम अुसे कितना चाहते हैं, तो जहाँ कहीं वह होगा वहाँसे अुड़कर आये बिना न रहेगा।

सवेरे अुठकर हमने बदरीनारायणका रास्ता छोड दिया। और चूँकि हमे गंगोत्री जाना था, अिसलिअे हमने टेहरीका रास्ता लिया। जिधर पैर ले जायँ अुसी तरफ जानेकी हमारी आदत थी। अलकनन्दाकी दोनों तरफसे दो रास्ते जाते थे। नदीकी बायीं तरफ, या अुद्गमकी ओर जानेवाले यात्रियोंकी दृष्टिसे देखा जाय, तो दाहिनी तरफ बदरीनारायणका रास्ता है। अिसलिअे बायीं तरफवाला रास्ता टेहरीका ही होना चाहिअे, असा स्थिर करके हम आगे चले। हम काफी दूर निकल चले थे। अितनेमे नदीके अुस पारसे अेक दिनकी पहचानवाले कुछ मजदूर जोर-ज़ोरसे चिल्लाकर अिशारे करने लगे। पहले स्वामीने अुनकी पुकार सुनी। अुनके अिशारोंका अर्थ भी स्वामी ही समझ सके। हम गलत रास्ते चल पड़े थे। भूल मालूम होनेपर अुसे सुधारनेमे देर ही कितनी लगती है? हम जहाँ थे वहींसे, बगैर रास्तेके, सीधे अूपर ही अूपर चढ़ते चले गये, और आखिर टेहरीके रास्तेपर जा पहुँचे। रास्तेमे कुछ झुरमुटोंपर नारंगी रंगके राअी बराबर छोटे-छोटे फलोंके गुच्छे लगे थे। आठ-दस दानोंका अेक गुच्छा बडे चनेके बराबर होता था। प्रत्येक दानेके बीचमें बाल-सा कुछ दिखाअी देता था। मैंने वे दाने तोड़कर चखे। ठीक नारंगीके रसका स्वाद था। फिर तो पूछना ही क्या था? मैं दोनों हाथसे फल आरोगने लगा; फिर विचार आया कि मैं कोअी जंगली लुटेरा नहीं हूँ, जो अेक-अेक पेड़को बिलकुल निष्फल बनाकर छोड़ जाअूँ। सच्चा राजा जो कारभार लेता है, अुससे प्रजा निःसत्व नहीं होती। मुझे भी अेक ही पेड़के पास खडे न रहकर चलते जाना चाहिअे, और चलते-चलते सहजमे जितने फल हाथ आयें अुतने अुदरस्थ करने चाहिअे।

कअी दिनोंतक वह स्वाद चखनेको मिलता रहा।

श्रीनगर नहीं गया

देवप्रयागसे हम टेहरी जा रहे थे। स्वामी, बाबाजी और मैं। हम हिमालयकी प्राणदायिनी वायुका मज़ा लूटते, आनन्द मनाते, जा रहे थे। परन्तु मेरे मनमें अेक गुप्त विषाद घर कर बैठा था। मैं घरसे जो चला था वह अिसलिअे नहीं कि हिमालयके सारे तीर्थोंकी यात्रा करता हुआ मारा-मारा फिरूँ। मेरा विचार था कि अिस प्रदेशमें बसे हुअे पुराण-प्रसिद्ध श्रीनगरमें साधनाके लिअे बैठूँ। काश्मीरका श्रीनगर अलग है, और केदारके रास्तेका यह श्रीनगर अलग है। यह श्रीनगर सिद्धपीठ कहलाता है। यहाँ की हुअी साधना व्यर्थ नहीं जाती, और शीघ्र फलदायी होती है। देवी भागवतमें अिस स्थानका माहात्म्य बहुत बतलाया है।

पहले यहाँ एक पत्थरपर श्रीचक्र खुदा हुआ था, जिसकी पूजा हुआ करती थी। कहते हैं, प्राचीन कालमें अिस जगह हर रोज अेक नरमेध होता था। आद्य शंकराचार्य जब श्रीनगर आये, तो मनुष्य-वधका यह अनाचार देखकर अुनकी धर्म-भावना अकुला अुठी। अुन्होंने अेक सब्बल लेकर श्रीचक्रवाले पत्थरको औंधा कर दिया और आज्ञा दी कि आजसे नरमेध बन्द!

प्रस्थानत्रयीपर भाष्य लिखकर और नितान्त रमणीय स्तोत्र बनाकर शंकराचार्यने हिन्दू-धर्मकी जो सेवा की है, अुसकी अपेक्षा नरमेध बन्द करनेकी यह सेवा कहीं अुत्कृष्ट है। क्या अिसके विषयमें कोअी शंका हो सकती है? भाष्य लिखनेके लिअे बुद्धि-वैभव चाहिअे। स्तोत्रोंके लिअे भक्ति न हो, और केवल कल्पनाका अुल्लास ही हो, तो भी काम चल सकता है। परन्तु धर्मान्ध समाजका विरोध सहकर परम्परागत घातक रूढ़िको बन्द करनेके लिअे तपस्तेज, धर्म-निष्ठा और हृदय-सिद्धिकी ज़रूरत होती है।

जबसे नरमेध-प्रतिबन्धका यह किस्सा सुना है तबसे शंकराचार्यकी वह ठिगनी और भरी हुअी मूर्ति — गेरुअे वस्त्र, रुद्राक्षकी माला और भस्मलेपसे मण्डित तथा 'आगलान् मुण्डित' — दृष्टि पथसे हटती ही नहीं। कर्मकाण्डी, निर्दय शाक्त चारों तरफ हा-हा-कार कर रहे हैं, और सामने सब्बल

लिये अुस संन्यासीकी तेजस्वी मूर्त्ति खड़ी है। अेक भी कर्मवीरकी ताव नहीं कि नज़दीक आये। और वह तपस्वी, ज्ञानवीर फड़कते हुअे ओठोंसे अेक-अेकको अथवा अेक साथ सबको शास्त्रार्थके लिअे ललकार रहा है। लेकिन किसीकी बुद्धिप्रभा अुस धर्ममूर्त्ति, दिग्विजयी संन्यासीके आगे प्रकाश नहीं डाल सकती। अुपनिषत्कालीन याज्ञवल्क्यकी तरह श्री शंकराचार्यने भी शास्त्रार्थके लिअे ललकारा होगा! '**ब्राह्मणा भगवन्तो यो व कामयते स मा पृच्छतु, सर्वे वा मा पृच्छत, यो वः कामयते तं वः पृच्छामि, सर्वान् वा व पृच्छामीति।**' लेकिन '**ते ह ब्राह्मणा न दधृषुः।**'

श्रीनगर जानेसे पहले 'स्वामीसे मिल लेनेकी' एक फुनगी मूल संकल्पमें फूटी और मैं अलमोडा चला गया। वहाँसे लौटने समय हरद्वारमें गंगोत्री जानेका संकल्प पक्का हुआ। और देवप्रयागसे केवल अठारह मीलकी दूरीपर बसे हुअे श्रीनगरकी तरफ जाना छोड़कर मैं गंगोत्रीकी ओर चला। मनमें यह आनन्द तो था ही कि हिमालयके नये-नये पुण्यधाम देखनेको मिलेंगे। परन्तु मैं मूल संकल्पसे दूर जा रहा हूँ, अिसका पछतावा कुछ भी किये दूर नहीं होता था।

टेहरीके रास्तेपर चीड़के वृक्षोंकी बहुतायत है। अिन वृक्षोंके लम्बी-लम्बी सलाअियों जैसे हरे-हरे पत्ते जब जमीनपर बिछ जाते हैं, तो अुनपर चलनेमें पैर सहज ही फिसल जाता है। यहाँ मैंने अेक सुन्दर आविष्कार किया। बहुत चलनेसे और ठण्डकी वजहसे मेरे पैर फट जाते, और अुनमें नदीके पानीसे जमीनमें पड़नेवाली दरारों-जैसी दरारें पड़ जाती हैं। चिन्ता यह थी कि अगर अिनका कोअी अिलाज न मिला, तो यात्रा किस तरह पूरी होगी? कोकमका थोड़ा-सा मोम हमारे साथ था, परन्तु मैंने अुससे कोअी फायदा होते नहीं देखा। सङ्कटमें पड़नेपर मनुष्य आविष्कार करता है। चीड़के पेड़से निकलनेवाला ताजा गोंद पैरोंकी बिवाअीमें भर दिया, और दूसरे ही दिन अुसका सुन्दर परिणाम अनुभव किया। चमड़ी अैसी भर गयी, मानो कभी फटी ही न हो। अुस दिनसे मैं दीयासलाअीकी अेक डब्बीभर चीड़का गोंद अपने साथ रखने लगा। अिसी गोंदसे राल बनती है, और टरपेण्टाअिन भी अिसी पेड़से निकलता है।

श्रद्धा-भक्तिका स्पर्श

देवप्रयागसे हम कोअी सात मील आये होंगे। दोपहरका वक्त था। भूखने हकदारकी तरह पेटमे डेरा जमा लिया था। बाबाजीने रसोअी बनाअी। पास ही खड़े अेक पीपलके पेडके पत्ते बटोरकर स्वामीने या मैंने पत्तले बनाअीं। बस, अिसपर हममें शास्त्रार्थ छिड़ गया। बाबाजी कहने लगे — "पीपलके पत्तोंकी पत्तल नहीं बनाअी जाती। अिसपर भोजन करना पाप है।" मैं भी यह मर्यादा जानता था। पीपल प्रत्यक्ष परमात्माकी विभूति है — 'अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्'। बाबाजीने दलील दी कि पीपलके पत्तोंकी पत्तल बनाकर अुन्हें जूठा करना नास्तिकता है। मैंने कहा — "पीपलकी पत्तलपर गृहस्थाश्रमी भोजन न करें, अैसा प्राचीन दण्डक है। पर जिसने घर-बार छोड़ दिया, जो विरक्त हो गया, वह पीपलकी पत्तलका अधिकारी है। अुसके लेखे तो सर्वत्र परमात्मा ही भरा हुआ है। अन्न भी ब्रह्म है, पत्तल भी ब्रह्म है, और खानेवाला भी ब्रह्म है। 'तत्र को मोहः कः शोक अेकत्वमनुपश्यतः।'

'मतलब-सिन्धु'की पद्धतिसे दी हुअी यह दलील भूखकी मददसे गले अुतरी, और मैंने तथा स्वामीने 'ब्रह्मार्पणम् ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतम्' श्लोक पढकर भोजन शुरू कर दिया। रसोअी बनानेका काम बाबाजीका था, अिसलिअे आर्य-परिपाटीके अनुसार वे हमें भोजन करानेके बाद आप खाने बैठे। बाबाजी कट्टर कर्मकाण्डी सनातनी थे। पवित्र और अपवित्रका विवेक बहुत किया करते थे। स्वामी अिसे समझ नहीं पाते थे। मैं यह सब समझता तो था, लेकिन अिसका पालन नहीं करता था। अतअेव बाबाजीके लिअे यही सुरक्षित मार्ग था कि वे पवित्र वस्त्र पहनकर अलग स्वतन्त्र रूपसे भोजन करें। वे हमारे लिअे परोसकर रखते, और हमें खानेके लिअे बुलाते। हमारे खा चुकनेके बाद आप निश्चिन्त होकर भोजन करते। अिस तरह बाबाजीका मातृ-हृदय भी सन्तुष्ट होता था। आज जब बाबाजी पीपलकी पत्तलपर भोजन कर रहे थे, तभी अगले दिन देवप्रयागमें जिस मारवाड़ी वणिक् यात्रीसे भेंट हुअी थी, वह वहाँ आया, जहाँ हम बैठे हुअे थे। प्रेम-भक्तिकी अुमंगमें अुसने हम

तीनोंका चरणस्पर्श किया। बाबाजी अेकाअेक चौंक अुठे। अुधर अुस मारवाड़ीकी आँखें भक्तिके आनन्दसे छलक रही थीं। बाबाजीकी वह लम्बी दाढ़ी, बड़ी-बड़ी जटायें, नहानेसे शुचिर्भूत काया, पास ही पड़ा हुआ दासबोध ग्रन्थ और भजनकी माला, यह सब देखकर मारवाड़ीने सोचा — "मैं कितना बड़भागी हूँ, जो अैसे पावन ब्राह्मणके फिर दर्शन पा रहा हूँ।" और बाबाजीके जीमें क्या चल रहा था?

साधारणतः मैं बाबाजीकी रूढ़िनिष्ठ धार्मिकताका हमेशा आदर किया करता था। अुनके कारण मुझे कअी बार असुविधा सहनी पड़ती थी। लेकिन वह सब मैं सन्तोषपूर्वक सह लिया करता था। अेक बार जब हम गंगाजीमें नावसे यात्रा कर रहे थे, बाबाजीने मुझसे पूछा — "मेरे कारण तुम्हें कितनी असुविधा होती है! मे पवित्रता-अपवित्रताके ये नियम छोड़ दूँ? यात्रामें चाहे जिस तरह निबाह लूँगा।" अिसपर मैंने अुनसे कहा था — "नहीं, यह बात नहीं बनेगी। जब मुझे विश्वास हो गया कि यह पावित्र्यवाद निरर्थक है तभी मैंने अिसका त्याग किया है। 'मार्गे शूद्रवदाचरेत्' अिस वचनके अनुसार आप भी पावित्र्यका विचार छोड़ सकते हैं, लेकिन मुझे यह अच्छा न लगेगा। जिस दिन आपकी अन्तरात्माको विश्वास हो जायगा अुसी दिन ये विधि-निषेध अपने-आप छूट जायँगे। तबतक अुन्हें निबाहते रहनेमें ही आपका श्रेय है।"

मारवाड़ी यात्रीका स्पर्श होते ही बाबाजी मेरी ओर देखने लगे। अेकाध दिन भूखों रह लेना बाबाजीके लिअे कोअी आपत्ति न थी। अुन्हें वैसा अभ्यास भी था। बेचारा मारवाड़ी चौका बनानेके लिअे अिधर-अुधर जगह तलाशने लगा। अितनेमें मैंने बाबाजीसे कहा — "आज आप पत्तलपरसे अुठ न सकेंगे। आप निश्चिन्त होकर खाअिये। आज आपको किसी मारवाड़ी वैश्यने नहीं, बल्कि मूर्त्तिमन्त श्रद्धा-भक्तिने स्पर्श किया है। भक्तिके आगे कर्मकाण्डकी क्या चलाअी? अुन्हें अेक ओर रखना ही चाहिअे। जरा सोचिये कि अगर आप खाना छोड़ देंगे, तो अिस भक्त-हृदयको कितना आघात पहुँचेगा? और हिचकिचाते हुअे नहीं, बल्कि प्रसन्न मनसे खाअिये।" बाबाजीकी आँखें डबडबा आयीं, सकोचसे

नहीं, किन्तु भावनाके अुद्रेकसे। बाबाजीने भोजन असे भक्तिभावसे पूरा किया मानो मन्दिरका प्रसाद पा रहे हों।

वहाँ ज़्यादा आराम किये बिना ही हम आगे चले। आसपासकी वनशोभा तो 'प्रति पर्व रसावहम्' न्यायसे बढ़ती ही जाती थी। चीड़के पेड़ गये और बॉझके आये। बॉझ ओककी अेक जाति है। अिसकी लकड़ी बहुत मज़बूत होती है। शामको हम चट्टीपर आ पहुँचे। दुकानके पास अेक सुन्दर छोटा-सा पेड़ था। मैं वहाँ जा बैठा। स्वामी जगहकी तलाशमें गये। दुकानदारने जगह नहीं दी। अिसलिअे पास ही झाड़के अेक मण्डपमें रात बितानेका निश्चय किया। अिस मण्डपमें हम जरा बैठे ही थे कि अितनेमें हमारे दोनों कुली आ पहुँचे। दो कुलियों और अुनके साथके सामान-असबाबके कारण दुकानदारकी दृष्टिमें हमारी प्रतिष्ठा बढ़ी, और अुसने हमें रातमें सोनेके लिअे ठण्डसे सुरक्षित अेक जगह दे दी। स्वामीने स्टोव सुलगाया। अिस अद्भुत यज्ञको देखनेके लिअे आसपासके लोग अिकट्ठा हो गये।

हम लोगोंके मण्डपमें घड़ीभर बैठनेका मेरे यात्रा क्रमपर भारी असर हुआ। अिस मण्डपमें अेक दक्षिणी साधु बैठा था। अुसने काश्मीरके अमरनाथका ज़िक्र किया। कहा — वहाँ निर्जन और निर्वन पर्वतमें अेक गुफा है। अुस गुफामें हर पूर्णिमाके दिन बर्फका अेक शिवलिंग अपने आप बन जाता है, और अमावसतक पिघल जाता है। अुस साधुसे सृष्टि-चमत्कारकी यह बात सुनकर मेरे मनमें यह दृढ़ संकल्प हुआ कि किसी-न-किसी दिन अमरनाथ जाना चाहिअे। अिस संकल्पके परिणाम स्वरूप मैं बाबाजीको साथ लेकर अमरनाथ कैसे गया अिसका अपना अेक स्वतंत्र अितिहास है।

मनमें काश्मीर जानेके संकल्पका सेवन करते-करते मैंने भोजन किया, और थकी हुअी हड्डियोंको चटाअी-कम्बलकी गरमी दी। परन्तु अुस रात हमारे दुकानदारके यहाँ कोअी जलसा था। शायद कोअी पहाड़ी चारण आया था। सारी रात पहाड़ी कानोंको आनन्द देनेवाला संगीत हमारी नींदमें खलल पहुँचाता रहा। अिस संगीतकी गति अितनी विलक्षण थी कि बीच-बीचमें जो सपने आते अुनमें भी वह प्रवेश कर जाता।

२८

टेहरी

जब-जब हिमालयके पहाड़ी लोगोंका संगीत सुननेकी बात याद करता हूँ तब-तब वर्ड्स्वर्थ की 'दी सॉलिटरी रीपर' कविता याद आती है। क्योंकि पहली बार मैंने पहाड़ी पोशाकवाली अेक भरे बदनकी कन्यकाको हाथमें हँसिया लिये घास काटने और गाते हुअे देखा। हिमालयकी शुद्ध, तेजस्वी हवा, गेहूँकी खुराक और कडी मेहनत; फिर भला मुँहकी लालीका पूछना ही क्या था! अुसकी वह विचित्र पहाडी पोशाक देखकर मेरे मुँहसे कालिदासका वचन निकल पड़ा — 'किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।' मैं अेक अर्धचन्द्राकार घाटी पार कर रहा था, और नीचेसे अुसका गाना बराबर सुनाअी दे रहा था। मेरे मनमे वर्ड्स्वर्थकी ये सतरें आयीं —

"Will no one tell me what she sings? —
Perhaps the plaintive numbers flow
For old, unhappy, far off things,
And battles long ago
Or is it some more humble lay,
Familiar matters of to-day?
Some natural sorrow, loss, or pain
That has been, and may be again?

मुझे भी लगा कि अिस कन्यकाके गीतका अन्त आयेगा ही नहीं। अेकका अेक सुर बराबर निकल रहा था; दूर-दूरके शुद्ध पर्वत अुसे प्रतिध्वनित करके अुसके साथ खेल रहे थे। वर्ड्स्वर्थकी तरह मैं निश्चेष्ट खडा तो न रहा, फिर भी आजतक अुसकी वह झंकार हृदयमें सहेज रखी है।

पहाड़ी संगीतमें विशेष विविधता नहीं होती। अुत्तराखण्डकी यात्रा समाप्त करके जब हम बदरीनारायणसे गणअी पहुँचे, तो वहाँ भी सारी रात गीत सुने थे। अुनमें भी अैसा ही लगा मानो रातभर अेक ही पंक्ति

चलती रही हो। लगता है, सामवेदके समयसे अिन पहाड़ी लोगोंने बहुत थोड़ी प्रगति की है, नहीं तो अिस अेकश्रुति संगीतमे अुन्हें अितना मज़ा न आता। दूसरे दिन सोलह मीलकी यात्रा करके हम टेहरी पहुँचे। रास्तेमें वनश्रीकी शोभा कुछ अपूर्व थी। परन्तु अुसका वर्णन किस प्रकार किया जाय? सुललित शब्दोंके लम्बे-लम्बे वाक्य लिखनेसे न तो लेखकको सन्तोष होगा, और न पाठकको कोअी बोध होगा। अिसलिअे यह मिथ्या प्रयास छोड़ देनेमें ही औचित्य है। किसी अूँचे पहाड़की पगडण्डीसे नीचे आनेवाले बन्दरोंकी तरह पहाड़ अुतरकर हम टेहरीमें दाखिल हुअे। पहाड़ी लोगोंकी दृष्टिमें टेहरी अेक बड़ी सौन्दर्यनगरी है, और क्लॉक-टॉवर (घटिगोपुर) अुसका सबसे बड़ा आभूषण है। परन्तु 'टेहरीके रास्तेपर गाड़ियाँ चलती हैं', यह कहनेमें अुसकी प्रशंसाकी परिसीमा है।

हमने कडी भूख लेकर टेहरीमें प्रवेश किया। जाते ही अेक सिक्ख धर्मशाला पर नजर पडी। धर्मशाला यानी मुसाफिरखाना नहीं, बल्कि धर्मग्रन्थ, — ग्रन्थसाहब — रखने, पढने और श्रवण करनेका स्थान। अिसमें मन्दिर और मसजिद दोनोंके गुणोंका समावेश होता है। अिसका प्रबन्ध करनेवालेको ग्रन्थी कहते है। टेहरीकी धर्मशालाका ग्रन्थी भला आदमी था। अुसने हमें सब प्रकारकी सुविधायें कर दीं। सीधा-सामग्री जुटानेका काम स्वामीने किया था। बाबाजीने रसोअी बनाअी। श्रम-विभागमे मेरे हिस्से तो अूँचा घाट अुतरकर भागीरथीमें नहाने और फिर भोजन कर लेनेका परिश्रम ही आया। अुस दिन मैं बहुत थक गया था। टेहरीमें डाकखाना था। अिसलिअे स्वामीको बहुत-सी चिट्ठियाँ लिखनी पड़ी थीं। मुझे विश्वास है कि डाकखानेके अस्तित्वको कृतार्थ करनेके लिअे ही स्वामीने अुस दिन अनेक पत्र लिखे थे। मैं अुनके पत्र पढ़ता ही न था, अिसलिअे मुझे अपने विश्वासपर सन्देह करनेका कभी मौका ही न मिला। बाबाजीने धर्मशालाके ग्रन्थीके साथ सिख धर्मकी चर्चा छेड़ दी। दोनोंने माना कि वे हिन्दीमे बातचीत कर रहे हैं। ग्रन्थीकी भाषा हिन्दी चाहे न हो, पर शुद्ध पंजाबी थी। बाबाजीने कुछ मराठी और गुजराती शब्द बटोरकर अुनमें दस-पाँच हिन्दी प्रत्यय लगा दिये, और राष्ट्रीय अैक्य साध लिया। मेरे जैसा, चुस्त साधु अैसी प्रवृत्तिमें क्यों

पढ़ने लगा ? मैंने तो दोपहरकी धूपकी सहायतासे खासी अेक घण्टेकी 'समाधि' लगाअी ।

हिमालय आनेसे पहले मैं भारत-धर्म-महामण्डलके स्वामी ज्ञानानन्दसे मिला था । अुन्होंने टेहरीके अेक हाकिम पण्डितका नाम बतलाया था। हम लोग अुनसे मिलने गये । हमें यात्रा-सम्बन्धी जानकारी हासिल करनेका शौक़ था, और अुस पण्डितको अपना पाण्डित्य प्रकट करनेकी अभिलाषा थी । स्वामी ज़बरदस्त अिश्तिहारबाज़ ठहरे । जब अुस पण्डितको मालूम हुआ कि मैं ग्रैज्युअेट हूँ, तो अुसने मुझे जमीनसे अुठकर कुरसी पर बैठनेको कहा। स्वामीने छूटते ही कहा कि हमारे काकाने सारे धर्मग्रन्थोंका अध्ययन किया है। पण्डितने मुझसे सवाल किया कि समाधिमेंसे मनुष्यका व्युत्थान किस कारण होता है ? मैं अपनी दोपहरकी समाधिमेंसे व्युत्थान करके ही अुनके यहाँ गया था। पर जानेका प्रयोजन तो गंगोत्रीके रास्तेकी जानकारी प्राप्त करना था । शास्त्रार्थकी अिस चुनौतीसे मैं काफी असमंजसमें पड़ गया। यदि कहता हूँ कि मैंने कुछ पढ़ा-गुना नहीं है, तो स्वामी झूठे पड़ते हैं, और यदि जवाब देता हूँ तो शास्त्रार्थ छिड़ जाता है, अिसलिअे मैंने कलि-विडम्बना प्रकरणमें सूचित युक्तिका प्रयोग किया । मैंने कहा — "मैंने जो कुछ भी पढ़ा है, सो सब अंग्रेजीमें पढ़ा है। अगर आप अंग्रेजीमें प्रश्न करें, तो सारा विवरण भली-भाँति कर दूँगा ।" बेचारा पण्डित निराश हो गया, और मेरी जान बची; अन्यथा मेरा अदृष्ट मुझे अिस शास्त्रार्थमेंसे व्युत्थान न करने देता ।

यहाँसे हम स्वामी प्रज्ञानन्द नामक अेक दक्षिणी साधुके दर्शन करने गये । कहते हैं, ये दक्षिणी पण्डित सन् सत्तावनके गदरमें ठीक-ठीक फँसे थे । वहाँसे साधुके भेसमें हिमालयमें भटकते-भटकते आख़िर यहाँ आ पहुँचे थे। जिन दिनों यहाँ टेहरीमें हैजेका ज़बरदस्त प्रकोप हुआ था, अुस वक़्त अिन साधुने कोअी साधना करके और पंचमुखी हनुमानकी स्थापना करके विलक्षण रीतिसे अुसका निवारण किया था । फलस्वरूप राजाको अुनपर बड़ी भक्ति हुअी, और स्वामीजी राजगुरु बने। अुनके प्रखर पाण्डित्यकी कीर्त्ति दूर-दूर तक फैली थी, अिसलिअे दूर-दूरके

विद्यार्थी अुनके पास संशय-निवृत्तिके लिअे आते थे। हमे कोअी शंका तो थी ही नहीं, कुतूहलभर था, अिसलिअे हमने साँझका थोड़ा समय अुनके पास बिताया। अुनकी कोअी विधवा शिष्या ताँबेकी चद्दरपर खुदे हुअे श्रीचक्रकी पूजा करती थी। मेरा ध्यान अुस ओर गये बिना न रहा। अिस बहनने चिराग जलाकर हमे स्वामीजीके सामने बैठाया। हमने स्वामीजीसे खूब बातें कीं। बहुत-सी बाते जानीं और पंचमुखी हनुमानके व मुख्य मन्दिरके दर्शन करके लौट आये।

टेहरीकी मुख्य शोभा तो भागीरथीपर बना तारका झूलता पुल है। अिस पुलके अिस छोरपर बने बरगद और पीपलके चबूतरे विशेष रूपसे ध्यान आकर्षित करते हैं। यात्रियों और साधुओंके लिअे छाँहकी यह जगह धर्मशालासे भी ज़्यादा सुभीतेकी है। जहाँ बड़ और पीपलकी छाँह अेकत्र पड़ती है वह स्थान पवित्र समझा जाता है। वह जप वग़ैरा विशिष्ट साधनाके लिअे अुपयुक्त होता है।

वटवृक्ष हमारे गृहस्थाश्रमके आदर्शका सूचक है। अुसकी जटायें बार-बार जमीनमें प्रवेशकर अेक विशाल अविभक्त कुटुम्ब बनाती है, और पीपल हर साल अपने सब पत्ते झड़ा डालता है। वह अपनी छालपर पपड़ी भी नहीं जमने देता। यह सन्यास-धर्मका सूचक है। अुसके पत्तोंकी अखण्ड जाग्रति भी संन्यास धर्मकी ही द्योतक है। जहाँ अिन दो आश्रमोंका मिलाप होता हो, वहाँ हिन्दू-समाजको विशेष पावित्र्य दिखाअी दे, तो आश्चर्य क्या?

टेहरी अेक प्रसिद्ध पहाड़ी रियासत है। किसी जमानेमें अिस राज्यका विस्तार और अिसकी प्रतिष्ठा अितिहास-प्रसिद्ध थी। हिमालयके अुस पार-तक यहाँके राजाओंकी हुकूमत चलती थी। आज तो यह सिर्फ़ जंगलोंकी अपनी आमदनीके लिअे विख्यात है। अिसकी दूसरी ख्याति यहाँकी जनताका अज्ञान और भीरुता समझी जा सकती है। शिक्षाके लिअे यहाँके राजाके मनमें तनिक भी अुत्साह नहीं। वह समझता है कि शिक्षासे प्रजामें असन्तोष जड़ पकड़ता है। अंग्रेजी पाठशालाके अेक शिक्षकसे हमें यह बात मालूम हुअी। मैंने सोचा तो फिर यह शिक्षक यहाँ क्यों बेगार ढोता है?

हम राष्ट्रीय संस्थाओंके लिअे साधन और सुविधायें खोजते फिरते हैं। हम सोचते हैं कि अगर पैसोंकी अिफ़रात होती, तो यह करते और वह करते। पर तनिक पराक्रमी पूर्वजोंके अिन राजवंशीय अुत्तराधिकारियों को देखिये। अिनके पास सब प्रकारकी सुविधायें होते हुअे भी ये किसी बातका विचार ही नहीं करते, और करते भी हैं, तो आडा-टेढ़ा। चूँकि सन् सत्तावनका प्रयत्न व्यर्थ हो गया, अिसलिअे अुपर्युक्त पण्डित गेरुआ वस्त्र धारणकर घटत्व और पटत्वके अवच्छेदकावच्छिन्नत्वकी चर्चामें डूब गये। राजा लोग किन-किन बातोंमे मगन हो गये हैं, अिसकी तो गिनती करते भी जी अुकताने लगता है। अरे, अेक बार हार गये तो हुआ क्या? हरअेक हारको नये प्रयत्नके लिअे जरूरी खाद समझना चाहिअे। हारसे मिलनेवाली शिक्षा कम महत्त्वकी नहीं होती। विज्ञान शास्त्रियोंके सफल प्रयत्नोंके वर्णन हम पढ़ते हैं, परन्तु हम यह क्यों भूल जाते हैं कि अिन सफल प्रयत्नोंसे सौगुने निष्फल प्रयोग अुन्होंने धैर्यपूर्वक किये होंगे? अेकके बाद अेक असंख्य पराजयोंको जो सह सकता है वही पुण्यवान है। सन् सत्तावनमें पराभूत होनेके बाद बुद्धिमान और पुरुषार्थी लोगोंको तुरन्त अेकत्र होकर सोचना चाहिअे था कि हम क्यो हारे? किन-किन राष्ट्रीय दुर्गुणोंकी बदौलत हमने अपनी जीतपर पानी फेर दिया? हमारी पद्धतिमें कौनसी त्रुटि थी? अब अपनी समाज-रचनामे क्या हेर-फेर करने चाहिअें? नये प्रयत्नमे सारी प्रजाको अेक दिलसे सम्मिलित करनेके लिअे क्या करना चाहिअे? जिन लोगोंने हमे परास्त किया अुनका देश कैसा है? वहाँकी प्रजाका स्वभाव कैसा है? अुस स्वभावकी सिद्धिके लिअे अुन लोगोंने क्या-क्या किया है? हममें भी अैसे तत्त्व भिन्न रूपमें, सुप्त स्थितिमे हैं या नहीं? अिन तत्त्वोंको हम कैसे पहचानें, कैसे विकसित करें?

अिस प्रकारका सोच-विचार करनेके बदले राजाने संन्यासी पण्डितके लिअे वृत्ति नियत कर दी। सन्यासी पण्डितने राजाको आशीर्वाद दिया, और दोनोंने मिलकर प्रजाको पचमुखी हनुमान दिये! और राष्ट्रीय जीवनके पचास बरस यों ही बीत जाने दिये।

परन्तु जिस तरह पूर्वजोंकी कीर्त्तिपर ही निभनेवाला नामर्द है, अुसी तरह जो मौक़े-बेमौके पूर्वजोंके दोषोंको ही गिनते बैठते हैं वे भी नामर्द

है। मैं हिमालय आया हूँ। यहाँ आकर अन्तर्मुख बना हूँ। न कोअी बन्धन है, न जवाबदेही है। फिर मुझीको अिन सारी बातोंका विचार क्यों न करना चाहिअे? मुझे अवश्य ही यह सब सोचना चाहिअे। अैसे अनेक विचार मनमें चक्कर काट रहे थे और थके हुअे गात्रोंपर निद्रादेवीकी सत्ता स्थापित हो रही थी।

सवेरे अुठकर हम धरासुकी ओर चल पड़े।

२९

बादरूका गाँव

हिमालयकी यात्रा खतम करनेके बाद फिर अेकबार मैं दूसरे रास्तेसे टेहरीकी तरफ आया था, और पासके मालदीवल नामक गाँवमें स्वामी रामतीर्थके मठमे अेक नियत समयतक साधनाके लिअे रहा था। अुस समयका अनुभव केवल काव्यमय ही नहीं, अपितु दो-तीन बातोंमें मेरी मनोवृत्तिमें स्थायी परिवर्तन करनेवाला सिद्ध हुआ। जिस यात्राका वर्णन हो रहा है अुस मूल यात्राके समय अिस छोटे-से गाँवके विषयमें हमने कुछ भी नहीं सुना था, परन्तु स्मरण-यात्रामें टेहरीके बाद मालदीवल और वहाँका अत्यन्त भीड़वाला अेकान्त यथाक्रम आता ही है। यदि अिस अनोखे अनुभवका सक्षेपमें वर्णन किया जा सकता, तो वह सारा-का-सारा यहीं दे दिया जाता। स्मरण-यात्रामे यही अुचित होता; परन्तु जिस तरह अित्रकी शीशी खोलते ही अुसकी सुगन्ध पूरे वेग से बाहर निकलकर कमरेमें भर जाती है, अुसी तरह मालदीवलका नाम लेते ही कषाय-मधुर संस्मरणोंके अितने अधिक फुहारे छूटते है कि अुन्हें अेक-दो लेखोंके प्यालोंमें भर देना अशक्य नहीं, तो कठिन अवश्य है। अिसलिअे स्मृतिके किवाड़ बन्दकर धरासुका रास्ता लेनेके सिवा दूसरा चारा नहीं।

टेहरीके राजाकी तालीम पाये हुअे पण्डित हाकिमने गंगोत्री-जमनोत्रीकी जानकारी देते देते अेक प्रश्न छेड़ा। जमनोत्रीकी तरफके लोग शौच हो आनेपर पानीका अुपयोग नहीं करते। अुनकी अैसी धारणा है कि

गंगा-यमुना सरीखी पवित्र नदियोंका — माताओंका — जल अपवित्र कामके लिअे बरतनेमें अधर्म होगा। हम कभी-कभी अुन्हें स्वच्छताके बारेमें अुपदेश देते है, पर अक्सर मनमें शका होती है कि चाहे यह श्रद्धा अज्ञान-जन्य ही क्यों न हो, क्या अिसे नष्ट करनेका हमें कोअी अधिकार है? जमनोत्रीकी तरफके लोग झूठ क्वचित ही बोलते हैं। वहाँ चोरी नहीं होती। अुन्हें झूठसे काम लेना आता ही नहीं। सच कहनेमे चाहे हिचकें, पर अुसके बदलेमे दूसरा कुछ कहा जा सकता है, यह बात अुनके स्वप्नमे भी नहीं आयेगी। अुस हाकिमके ठीक शब्द मुझे याद नहीं हैं, पर अुनका आशय और अत्युक्ति अैसी ही थी। अुन्होंने मुझसे पूछा — "तो बतलाअिये हम क्या करें? अुन लोगोंका यह धन्य अज्ञान दूर करें और अुन्हें अपने समान बनावें, या अुन्हें जैसे-के-तैसे निर्बुद्धि और निर्दोष रहने दें?" मैंने जवाब दिया — "मैं अैसी किसी स्थितिको अीर्ष्याकी चीज़ न मानूँगा। गाय अिसलिअे पवित्र नहीं है कि वह झूठ नहीं बोलती। चूँकि पत्थर बोलता ही नहीं अिसलिअे अुसकी गिनती मुनियोंमे नहीं होती। और ये मछलियाँ गगाका अखण्ड स्नान करती रहती हैं, अिस कारण ये स्वर्गको जानेवाली नहीं है।" वे सज्जन कुछ बोलना चाहते थे, पर अिससे पहले कि वे कुछ बोलें, मैंने फिर कहा — "हाँ, वह स्तोत्र मुझे याद है, लेकिन वह कविकी कल्पना मात्र है। मछलियाँ जिस दशामें रहती है, अुसे आप स्वर्ग भले ही कह लें, परन्तु गगा-स्नानके पुण्य-प्रतापसे अुन्हें वह स्वर्ग नहीं मिलनेवाला है, जिसे आप सदाचार-पालनके बलपर मरनेके बाद प्राप्त करना चाहते हैं। आपको चाहिअे कि आप अिन लोगोंको ज्ञानसे कदापि वंचित न रखें। अिनकी जड़ता श्रद्धा नहीं है। मनुष्यमें झूठ बोलनेकी शक्ति है, अुस शक्तिका वह प्रयत्नपूर्वक त्याग करता है, और अन्तमें झूठ बोलनेकी शक्ति होनेपर भी अपने लिअे झूठ बोलना असम्भव कर देता है, तब कहीं अुसे सत्य-पालनका आनन्द, अुससे होनेवाली वाचा-सिद्धि और क्रिया-फलाश्रयत्व प्राप्त होता है। मनुष्यका स्वय अज्ञान रहना बडे ही दुर्दैवका विषय है। अज्ञान-जन्य सुरक्षितता भयानक है, अनर्थकारी है। जो सुना सो सच मान लिया यह वृत्ति श्रद्धा नहीं; भोलापन है, बुद्धूपन है।"

टेहरीसे आगे चढ़ाव-अुतार बहुत कम था। अिसलिअे हम ज़रा फ़ुर्तीसे चलने लगे। रास्ता कैसा ही क्यों न हो, अपने कुलियोंसे हमारी चाल तेज़ रहती थी। पर आज देखते क्या है कि हमारे कुली हमसे आगे-आगे चलते थे। अिस असाधारण घटनाकी तरफ मेरा ध्यान गया। मैंने स्वामीसे कहा — "मालूम होता है, बादरू और कैरासिंह आज कुछ विशेष जवान हो गये हैं। हमसे भी आगे चलते है।" स्वामी कहने लगे — "आज रास्तेमें अिन लोगोंका गाँव पड़नेवाला है। घर जानेकी अुत्कण्ठासे ये लोग आज अितने तेज़ चल रहे है।" फिर स्वामीने अिन मुग्ध पहाडी लोगोंकी अिस गृहनिष्ठ वृत्तिका खूब बखान किया। "होम! स्वीट होम!" वाली अंग्रेजी कविता स्वामीको याद आयी। हमने यह भी चर्चा की कि हमारे यहाँ यह भाव क्यों नहीं है? मैंने कहा — "देशाभिमान शब्द नया है। हम अभिमानको दोष समझते है। देशभक्ति शब्द कुछ अच्छा है, पर हमारा पुराना शब्द तो है जन्मभूमि-वात्सल्य! वह कितना सुन्दर लगता है! ठीक है कि अिस वात्सल्यका बयान कुछ कवियोंने दुर्बलताके रूपमें किया है, परन्तु श्रीकृष्णके जीवनमें गोकुल-वृन्दावन सम्बन्धी जो अुत्कट भावना प्रौढ़ वयमें भी दिखाअी देती है, वह अिस देशभक्तिका ही घरेलू संस्करण है।"

मैं सोचने लगा कि यदि पहलेसे मालूम होता कि बादरूका घर आज आनेवाला है तो टेहरीसे ही अुसके बाल-बच्चोंके लिअे थोड़ी मिठाअी रख लेते। स्वामीको मेरी यह सूचना अच्छी लगी पर जंगलमें मिठाअी कहाँसे आती? अितनेमें हमें अेक धर्मशाला मिली। वहाँ मिठाअीकी अेक दुकान थी। बादरू वहाँ तक जाकर रुक गया था—वह सिर्फ़ यह तय करना चाहता था कि हम अुस धर्मशालामें न ठहरें। अुसने कहा — "अभी दिन बहुत बाक़ी है। ज़रा और तेज चलेंगे तो हमारा गाँव आ जायगा। यात्राके रास्तेसे बहुत दूर भी नहीं है।" और वह गिड़गिड़ाने लगा। स्वामीने मिठाअी खरीदी और हँसते-हँसते अुसे आश्वासन दिया—"आज रातको हम तुम्हारे घर ही भोजन करेंगे।"

यात्राकी पगडण्डी छोड़कर हम तेजीसे अपने कुलियोंके गाँवकी ओर चले। शबरी या विदुरको जितना आनन्द हुआ होगा अुतना आनन्द

हमारे अिन कुलियोंको हुआ । रास्तेमें अेक जगह मैंने सुना कि वहाँ अेक साल पहले अेक आदमीको घास काटते समय साँप काटा था और वह आदमी मर गया था । साँपकी चर्चा छिड़ते ही अक्सर वह बड़ी देर तक चलती रहती है । कुछ विषय विशेष रूपसे मनुष्यको प्रिय होते हैं । चोरोंका अुपद्रव, अकालका अनुभव, भूत देखनेके प्रसंग आदि जैसे अक्षय विषय हैं, वैसे ही साँपकी दुनिया भी बहुत लम्बायमान है । साँपकी-सी वक्रगतिसे खेतके किनारे-किनारे जानेवाली अपनी पगडण्डी हम काटते चले और बादरू हमें अपने घरकी बातें कहता चला । रास्तेमें खेतोंके बीच पत्थरोंके अूँचे-अूँचे बाँध देखकर मैंने कुछ सवाल पूछे । ज्यों-ज्यों सवाल पूछता था, त्यों-त्यों बादरू खिलता था । यों करते-करते बादरूका गाँव आ लगा । फिर अुसे हमसे बात करनेमें कोअी मजा न रहा । साँझ हो चुकी थी । किसान खेतसे घर जा रहे थे । बादरू जिसे देखता अुसीसे अपने स्त्री-बच्चोंके बारेमें पूछता । सगे-सम्बन्धियोंकी याद करता । वह तो बिलकुल मतवाला हो गया था । आखिर हमने अुसके घरके सामने खलियानमें ही बैठकर रसोअी बनाअी, भक्तिभावपूर्वक दिये हुअे घी-दूध-दहीका भोग लगाया, और वहाँ अेकत्रित लोगोंके साथ गपशप लड़ाने बैठे ।

कँरासिंह और बादरू शहरी मज़दूरोंकी तरह भुक्कड़ मज़दूर नहीं थे । वतन, बाड़ी, ढोर, खेती और सामाजिक प्रतिष्ठा अुनकी स्थितिके अनुरूप अुन्हें पर्याप्त मात्रामें प्राप्त थी । पर्वतीय लोगोंके पास दुर्भिक्ष होता है पैसेका । अिसलिअे यदि यात्राके मौसिममें अेकाध महीने कुलीका काम करके पचास-पौनसौ रुपये कमा लें तो अुनका सारा साल सुखमें बीतता है, और हाथ पैसेसे तंग न होनेके कारण घरका माल चाहे जिस भावसे बेचनेकी नौबत आनेका डर नहीं रहता ।

हमने अुन्हें बताया कि हमारे प्रान्तमें अैसे बड़े-बड़े पहाड़ नहीं होते । रास्ते सीधे होते हैं । अुनपर गाड़ियाँ दौड़ती हैं । गाँवकी बूढ़ी औरतें पूछने लगीं — “ अेकदम सीधा रास्ता ? थोड़ा भी चढ़ाव-अुतार नहीं ? अफसोस, तब तो तुम्हारे पैर थक जाते होंगे । और वहाँ धूप भी कड़ी पड़ती होगी ! तुम लोग कैसे चल लेते होंगे ? ” पर जब मैंने कहा कि

हमारे यहाँ ढाअी-तीन पैसोंमें नारियल मिल जाता है, तब तो अुस गॉवके बालक-बूढ़े सभीका जी हमारे प्रदेशमे आनेके लिअे ललचाया। हिमालयमें छोटे-से-छोटा नारियल भी चार आनेसे कम दाममें नहीं मिलता। अुसे कोअी फोड़ता नहीं। लोग खरीदकर मन्दिरमें चढ़ा देते हैं। मन्दिरका पुजारी फिर वही नारियल बाज़ारमें लाकर बेचता है। अिस प्रकार अेक ही नारियलके नसीबमें सालमें असंख्य बार चढ़ाया जाना बदा होता है। अिसकी कोअी गारण्टी नहीं कि फोड़नेपर अुसके भीतर खोपरा निकलेगा ही।

फिर घरमें पानी लानेका विषय छिड़ा। मैंने कहा — "हमारे देशमें दूरके किसी तालाब या झीलसे पानी नहीं लाना पड़ता। वहाँ घर-घर कुअें होते हैं।" अुस गॉवकी मुग्ध कन्याये तो अिस बातकी कल्पना भी न कर सकती थीं कि कुऑ कैसा होता होगा। सयानी औरतें दया खाती हुअी कहने लगीं — "हाय-हाय, तुम्हारे यहाँ स्त्रियोंको यह कितना बड़ा कष्ट है? अितनी गहराअीसे पानी खींचकर निकालनेकी हिम्मत तो तुम्हारी स्त्रियॉ ही कर सकती हैं। हमारे यहाँ अैसी कोअी मुसीबत नहीं। तालाबमें गगरिया भरकर सिरपर धरी, और चले।" लेकिन यह चलना कैसा होता है? कहीं-कहीं तो खासा आधा मील पहाड़ चढ़ना या अुतरना पड़ता है! अिन लोगोंके लेखे अुसकी कोअी बिसात नहीं, जब कि जमीनके अन्दरसे रस्सीके ज़रिये बीस-पच्चीस हाथ गहरे पानीको अूपर खींचना अुनके खयालसे अेक बड़ी झंझट या कड़ी सजा ही समझी जायगी।

दूसरे दिन बादरू बोला — "अब मैं यहीं रह जाअूँगा। मेरा लड़का आपके साथ जायगा। बहुत तगड़ा है। आपके ख़ूब काम आयेगा।" वैसा सब प्रबन्ध भी हुआ। परन्तु अैन वक़्तपर अुस बाअीस सालके बालक (!) की मॉ अुसे 'परदेस' भेजनेकी हिम्मत न कर पायी, और आखिर हमारा बादरू ही हमारे साथ झल्लाता और बकता-झकता लदा।

राढ़ीकी सीमापर

बादरूके गाँवसे घरासु तकका रास्ता कुछ भी किये याद नहीं आता। जब तक हमने बादरू और कैरासिंहकी पहुनअीका स्वीकार नहीं किया था, तब तक अुनका हमारा सम्बन्ध सेठ-नौकरका-सा था। अुनके घरका घी-दूध खानेके बाद और अुनके आँगनमे अेक रात निवास करनेके बाद हमारे बीच समान भाव जाग्रत हुआ। विश्रामके दिनकी खीचड़ी और रोज़के चने-चबैने याने गेहूँकी फूलीके लिअे चखचख करनेकी बात फिर अुन्हें कभी न सूझी। हम भी अुनसे अधिक बोलने-बतलाने लगे, और अिस बातकी चौकसी रखने लगे कि अुन्होंने कब और क्या खाया-पिया? यों हमारे हृदय कुछ अधिक निकट आने लगे। यह भी नहीं कि अिस परिचयके कारण अुन्होंने हमारी सेवा पहलेसे कुछ कम की हो। अुल्टे अिस विश्वाससे कि हम नाराज न होंगे, अपनी बुद्धि चलाकर हमारी सुविधाका ध्यान रखनेकी ही वृत्ति अुनमें बढ़ती गयी। नौकरों और मजदूरोंके साथ सख्ती करके काम लेनेकी अपेक्षा प्रेम और सद्भावसे काम लेनेसे काम अधिक अच्छा होता है। सेवा अधिक मिलती है। पर अिससे भी बढ़कर लाभ तो यह होता है कि नौकरोंकी घबराअी हुअी बुद्धि आश्वासन पाकर विशेष खिलती है और नौकर भी बुद्धिमान जीव बन जाते हैं।

घरासुमें रातको मज़दूरोंमे ख़ूब चर्चा चल रही थी। बंगाल तरफ़का कोअी बड़ा ज़मींदार वहाँ पड़ाव डालकर ठहरा था। अुस राजाके मुनीम और मजदूरोंमे बहुत चखचख चला करती थी। घण्टों शान्ति नामको भी न मिलती थी। मुझे कुछ कुछ स्मरण है कि यहीं हमें कुछ गुजराती यात्री मिले थे। स्वामीने अुनके साथ बातें कीं। आगे ये ही लोग हमें गंगोत्रीमें मिले थे, और वहाँ मुझे अिनके रसोअियेको खाने-पीनेके धार्मिक नियमोंके सम्बन्धमें 'व्यवस्था' देनी पड़ी थी

घरासुसे जमनोत्री जानेवाला रास्ता फूटता है। वहाँ पहुँचने तक हमने जमनोत्री जाने या न जानेके बारेमे कुछ भी निश्चय नहीं किया

था। आखिर तय हुआ कि जाना चाहिअे। वहीं हमने अपने कुलियोंसे अधिक मजदूरीका करार किया, और हम आगे चले। कैरासिंह बोला — "हम जमनोत्रीके प्रदेशमे शायद ही कभी जाते है। अिस राढ़ी पहाड़के अुस पारका मुल्क अच्छा नहीं है। वहॉ बहुत खतरा है।"

पहाड़ी लोगोंकी मनोदशाका यह द्योतक है। जब कोअी बड़ा पहाड़ सामने आ जाता है तो वे सोचते हैं, मानो ससारका अन्त आ गया। वैसे, पहाड़ लॉघना अुनके लिअे खेल है। पर अुस पारकी दुनिया जुदी और अपनी जुदी। अुधरके लोग कुछ और, हम कुछ और, अैसी कोअी गॉठ अुनके मनमें बॅध जाती है। हाअीस्कूलमें था तब कवि कूपरकी अेक कविता कण्ठ की थी; यहॉ अुसकी दो पंक्तियॉ याद आती है —

Lands intersected by a narrow firth
Abhor each other. Mountains interposed
Make enemies of nations who had else
Like kindred drops been mingled into one.

जमना मैयाका नाम लेकर हम चल पड़े। माधवानन्दजीने भी हमारा साथ देनेका निश्चय किया। यहॉसे हमने अेक घने जगलमें प्रवेश किया। जिधर देखिये, छाया ही छाया थी। न कोअी पेड़ हिलता था, न डोलता था; मानो ध्यानस्थ ऋषियोंका सम्मेलन हो। हम अुत्साहसे आगे बढ़े जा रहे थे। बेचारे माधवानन्द हमारी बराबरी कैसे करते? वे पिछड़-पिछड़ जाते थे। अुन्हें बंगालीके सिवा दूसरी कोअी भाषा भी नहीं आती थी। अिसलिअे स्वामी बोले — "यदि अिस जंगलमें ये कहीं रास्ता भूल गये, तो बाघ-बघेरुओंका भक्ष्य बन जायेंगे। हम जरा ठहरें और अुनकी बाट जोहें।" भला, यात्रामे ठहरनेकी सूचना किसे नहीं भाती? पर मैं बैठनेसे अिन्कार कर देता। नागबेतकी अपनी लकड़ीपर शरीरका सारा भार डालकर मैं खड़े-खड़े ही आराम ले लिया करता। अेक बार बैठे, और पैरोंमें रक्तका अभिसरण होने लगा कि पैर फूल जाते, और चलना मुश्किल हो जाता। अिसलिअे मैं मुकामपर पहुँचकर ही बैठना श्रेयस्कर समझता था।

क्या किसी भी लड़ाअीके लिअे यही नियम सही नहीं है?

माधवानन्द धीरे-धीरे रास्ता काटते आ रहे थे । मुझे प्रणव-गर्जनाकी सूझी । अेक अूँचे शिखरपरसे अूँची आवाज़में मैं चिल्लाया — "ॐ शान्ऽऽऽति· शान्ऽऽऽतिः शान्ऽऽऽतिः ।" दूरसे माधवानन्दका जवाब आया — "ॐ शान्ति· शान्ति. शान्तिः ।"

अिस तरह ठहरनेमें हमारा बहुतसा वक्त बीत गया । रात हो गयी । और हम पहाड़ अुतरनेके बदले अभी पहाड़के माथेपर ही पहुँचे थे । घनघोर अँधेरा था । बीचमें अेक छोटी-सी पगडण्डी पास ही चरवाहोंके अेक गाँवकी तरफ जाती थी । अुसने भी हमारा समय लिया । कौनसा रास्ता मोक्षकी ओर ले जानेवाला था, और कौनसा गलत रास्ते ले जाकर "सिद्धि"के फेरमें डालनेवाला था? हमने आसपास देखा, अूपर देखा, नीचे देखा, और प्रवासीकी सहज बुद्धिसे अचूक निर्णय किया कि पगडण्डीवाला रास्ता छोड़ देना चाहिअे । अँधेरेमे तो भगवानके भरोसे ही चलना होता है । शान्तिकी गर्जना करते हुअे हम शिखरपर पहुचे । अितनेमें रजनीकान्त प्रकट हुअे, और आसपासका अँधेरा कुछ-कुछ छँटने लगा ।

अैसेमे खानेको क्या मिलेगा? यह सवाल तो मनमे अुठता ही कैसे? तक़दीरसे रहनेको जगह भी मिल जाय, तो बड़ी बात हो! हमने सुन रखा था कि जंगल-विभागका अेक दफ्तर रास्तेमें पड़ता है। हम अुसीको लक्ष्य करके चले; वह दफ्तर तो आता ही न था । अितनेमें बाबाजीको अैसा लगा मानो कहीं कुछ निठल्ले लोग बैठे गपशप लड़ा रहे हैं । जिधरसे अुन्होंने यह आवाज सुनी थी अुस दिशामे जाकर स्वामी समाचार लाये कि जरा और अूँचेपर जंगलके सिपाहियोंका अेक थाना है और वहींसे यह आवाज आ रही है । हम वहाँ पहुँचे । पर जंगलके वे दोपाये बाघ भला हमें अपने पास क्यों फटकने देते? वे गुर्राये, बर्राये, हमारी तरफ झपटे, पर हम टस-से-मस न हुअे । अँधेरेमें भी स्वामीकी वाणीकी मोहिनी काम कर गयी । और वे द्विपद बाघ कुछ नरम पड़े । अुन्होंने हमे चबूतरेपर भी आने दिया । फिर बातें होने लगीं । पहले तो अुन्होंने जंगलके कानूनकी कड़ाअी और अुसका महत्त्व समझाया । कहा — "कोअी गलतीसे बीड़ी फेंक दे, तो समूचा जंगल जल जाय । लोगोंकी जान

जोखिममें पड़ जाय, और अिससे भी बढ़कर बात यह है कि सरकारका बेहद नुकसान हो जाय" ।

अितनेमें माधवानन्द भी आ पहुँचे और अुनकी बंगाली वाग्धारा बहने लगी । मैंने अुनसे दो-तीन बार कहा कि मैं बंगालीका ब्रह्माक्षर भी नहीं जानता । हाँ, आनन्दमठके कुछ पन्ने पढ़े थे; लेकिन आखिर बंगाली अुच्चारण तो बंगाली अुच्चारण ही है । अुनका ज्ञान तो गुरु-मुखसे ही हो सकता है । मैंने अुनसे मराठीमें कहा, हिन्दीमें निवेदन किया, निष्काम कर्मके रूपमें अंग्रेजीमें भी अनुनय किया, परन्तु माधवानन्दजीकी वाग्धारा किसी अुपायसे कुण्ठित न होती थी । किसी कविने कहा है — "आअि सिंग् बिकॉज़ आअि मस्ट" (मैं गाता हूँ क्योंकि बिना गाये मैं रह नहीं सकता ।) माधवानन्दकी प्रतिभा अिसी तरहकी थी । मैं समझूँ या न समझूँ अुनकी बलासे । अुनके लिअे यही काफी था कि मेरे कान मनुष्यके कान थे । अुन्होंने अपने श्रवणांजलिपुटपेय वाचामृतका पान मुझे बरबस कराया । मैं भी जी कड़ा करके निष्काम कर्म समझकर शान्तिसे सब सुनता रहा, मानो भैंसेकी पीठपर वृष्टि हो रही हो ।

चन्द्रमा अुगा तो, पर आकाश जितना चाहिअे अुतना स्वच्छ न था । और हम थके-माँदे थे । अिसलिअे किसी प्रकारकी छेड़छाड़ किये बिना ही सो गये ।

स्मृति धोखा दे रही है । परन्तु बहुत करके वह अद्भुत अनुभव धारासुसे रवाना होनेके दिन ही हुआ था । रास्ता चलते-चलते अेक स्थान आया जहाँ पहुँचते ही हृदयमें अैसा भाव पैदा हुआ कि यह तो कोअी पूर्व-परिचित स्थान है । मानो किसी समय मैं यहाँ रह चुका हूँ । वह भाव कैसे और क्यों पैदा हुआ कुछ समझमें नहीं आया । कअी बार कअी प्रकारसे अिसपर विचार किया, पर कोअी निर्णय न हो पाया । निश्चय ही अैसी किसी जगहमें पहले कभी गया नहीं था । तो फिर हृदयमें अैसा भाव क्यों अुत्पन्न हुआ ? क्या अिस रमणीय स्थानको देखकर कोअी अस्पष्ट कल्पना या वासना भूतकी तरह अिससे चिपट गयी ? कालिदास होते, तो तुरन्त कहते —

"तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वम्
भावस्थिराणि जननान्तर-सौहृदानि।"

जो हो, जी चाहने लगा कि आगे-पीछेका सारा विचार छोड़कर यहीं रह जाअूँ। परन्तु क्या मनुष्य-निवाससे शून्य अुस महारण्यमें केवल काव्यमय कल्पनाके भरोसे रहना सम्भव होता!

३१

यामुन ऋषि

सवेरे अुठकर हमने गंगाजीका रास्ता लिया। बर्फके दर्शनसे चित्त प्रसन्न हुआ ही था। अुसे अप्रसन्न करनेवाली अेक भी चीज प्रकृतिके अिस प्रान्तमें न थी। हाँ, अेक मुश्किल जरूर थी। पहाड़पर चढ़ते समय जितना सृष्टि-निरीक्षण हो सकता है, अुतना अुतरते समय नहीं हो सकता। चढ़नेमें हम धीरे-धीरे बढ़ते हैं। चारों तरफ देख सकते हैं। और, शरीरको कितना ही जोर क्यों न लगाना पड़े, तो भी अुसकी तरफ ध्यान नहीं देना पड़ता। पर अुतरते समय पहाड़का अुतार ही हमसे जल्दी कराता है। आसपास देखनेकी बनिस्बत पैरके नीचेकी जमीनको देखना बहुत जरूरी हो जाता है। हर क़दमके साथ सारे शरीरका भार घुटनों और टकनोंपर आ पड़ता है, और पैर सँभालनेकी कसरत तो कअी प्रकारसे करनी पड़ती है। पर महादेवजीकी तीसरी आँखकी तरह, हमारे पास लकड़ीका तीसरा पैर था, अिसलिअे हम सुरक्षित थे।

जंगलमें देखने योग्य तो बहुत-कुछ होता है। तरह-तरहके वृक्ष और पत्ते, छोटी-बड़ी पहाड़ियोंकी व्यूह रचना, और अूँचे-अूँचे शिखरोंकी चढ़ा-अूतरी। परन्तु अिस सबकी अपेक्षा मेरा ध्यान तो वृक्षोंके तनोंकी तरफ ही अधिक जाता है। छुटपनसे मुझे पेड़ देखकर विश्वामित्र आदि ऋषियोंका स्मरण होता है। अैसा लगता है, मानो अखाड़ेबाज बैरागी मलखम कर रहे हों, और अुनके पैरोंमें अनेक प्रकारकी आँटियाँ पड़ रही हों। पेड़की अैसी डालियाँ देख मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। पेड़ोंके

तने और डालियोंके आकार, अुनकी छाल और रंग देखकर मैं अुनमेंसे हरअेकके स्वभावकी कल्पना कर सकता हूं। कुछ पेड़ स्वयं अपने प्रति कठोर होनेमें जीवनकी सार्थकता मानते है। कुछ खा-पीकर सुखसे बैठनेवाले लोगोंकी तरह गोलमटोल होते हैं। कुछ बिलकुल झुकी हुअी शाखाओंवाले पेड़ अैसे लगते हैं, मानो मराठा अितिहासके राजाराम-कालीन वीरोंकी तरह विपत्तिके कारण असहाय होनेपर भी अविचल भावसे लड़ रहे हों। और कुछ अैसे प्रतीत होते हैं, मानो सारे वनका अितिहास प्रस्तुत करने, सामग्री जुटाने और अुसे सँभालनेका काम कर रहे हों! कुछ पेड़ोंकी त्वचा अितनी सुकुमार होती है कि अुन्हें देखकर शकुन्तलाको तपस्या करते देख जिस प्रकार दुष्यन्त बेचैन हो अुठा था अुसी प्रकार हमारा मन भी अस्वस्थ हो जाता है। और दूसरे कुछ पेड़ोंके कोटर देखकर अैसा मालूम होता है, मानो वे पेड़ मधुमक्खियोंको या तोतों-जैसे पक्षियोंको आश्रय देनेके लिअे अपना हृदय चीरकर खोल रहे हों। पेड़ोंकी असली शोभा देखनी हो तो वर्षाके बादकी धूपमें देखनी चाहिअे, या फिर अुस समय कि जब पक्षियोंके झुण्डके झुण्ड फूलोंकी तरह पेड़ोंपर आकर बैठे हों। चीड़के पेडके तनेमें रस्सीके बलकी-सी रेखायें होती हैं। अिससे अैसा भास होता है, मानो अिस तनेको मजबूत बनानेके लिअे प्रकृतिने कुछ विशेष मेहनत की है।

अिस प्रकारकी विविध सुन्दरता देखता-देखता मैं नीचे अुतर रहा था, अितनेमें निगाह अूपरसे नीचे गअी और जमुनाजीके दर्शन हुअे। जमुनाजीको पहचाननेमें देर न लगी। हो न हो यही वह काली कालिन्दी है जिसके जलमें मैं प्रयागराजमें नहाया था, जिसके कछुवोंको वृन्दावनमें बन्दरोंसे जूझते देखा था, जिसके दर्पणमें ताजमहलका प्रतिबिम्ब देख मैं आश्चर्यचकित हुआ था, और जिसके नामके साथ छुटपनसे मेरे मनमें कालियामर्दनके चित्र संलग्न थे। अिस स्थानपर जमुनाजी अैसी लगती हैं, मानो कोअी दोहरे हाड़की मजबूत काठीवाली सोलह-सत्रह वर्षकी सुन्दर, निरागस बाला यौवनके भानके अभावमें दौड़ती, अुछलती-कूदती, पैंजनियों और घुंघरुओंके नादकी धुनमें सारी दुनियाको भूल रही हो। जब हम पहाड़ अुतरकर नीचे आये तो अुनके विविध रंगोंवाले निर्मल

जलका दर्शन हुआ। कभी वह नीली-काली स्याही सरीखा दिखाअी देता है, तो कभी, जब पत्थरोंपरसे वहता है, तो नीलेथूथेके रंगका हो जाता है। जब लहरें पत्थरपर टूक-टूक होकर हँस पड़ती हैं तब वह बिलकुल शुभ्र बन जाता है, और तिसपर अुसे पुन: नील-गम्भीर होते भी देर नहीं लगती। निर्मल जलकी अिन अठखेलियोंसे तपोवृद्ध और महाकाय पत्थर मानो धन्य-धन्य हो रहे थे। पानी अपनी अेक तरहकी मस्तीमें नाच रहा था, और पत्थर दूसरी तरहकी मस्तीमें चूर थे। भला, अुनके मनमें क्या चल रहा होगा? और मेरे मनमें जो कुछ चल रहा था, अुसका अुन्हें क्या पता था? कुछ दूर तक सफेद बालूपर चलकर हम जमुनाजीके किनारे जा बैठे। अितनेमें कुछ पर्वतीय लड़कियाँ अुधरसे गुजरीं। अुन्हें यह देखकर अचम्भा-सा हुआ कि हम वहाँ बैठे-बैठे क्या देख रहे हैं। जिधर हमारी दृष्टि दौड़ती अुधर ही वे यह जाननेके लिअे देखने लगीं कि आखिर वहाँ अैसी कौनसी खास चीज है। जब कुछ न मिला तो अपनी आँखोंसे यह संकेत-सा करती हुअी कि वहाँ तो कोअी खास चीज नहीं दीखती, वे चली गयीं। भला, वे भी कैसे जानतीं कि मेरे मनमें क्या अुधेड़-बुन चल रही है?

यह स्थान गंगाणी कहलाता है। गंगाणीका अर्थ क्या गंगा-आनी (लायी गयी)?

अेक ऋषि था। वह गंगा और यमुना दोनों लोकमाताओंकी निर्विशेष भावसे भक्ति करता था। दोनोंके दर्शन किये बिना अुसका अेक भी दिन न जाता था। वह जमुनाजीके तीरपर रहता और खाता, पर रोज नहाने गंगाजीपर जाता। बीचमें राक्षसके समान राढी पर्वत खड़ा था। अुसने कभी अेक क्षणके लिअे भी अुसकी परवाह न की। पन्द्रह-बीस मीलका अन्तर काटना अुसके लिअे खेल था। जब तक शरीरने साथ दिया, अुस व्रतनिष्ठ ऋषिने अिस नियमका बराबर पालन किया। पर जब शरीर नितान्त क्षीण हो गया, तो अुसने गंगाजीकी स्तुति की। गंगाजीको अुसपर दया आयी। फल यह हुआ कि जमुनाजीके तीरपर अुसके आश्रमके निकट श्वेत जलके झरनेके रूपमें गंगाजी प्रकट हुअीं। ऋषि कृतार्थ हुआ। अिस नूतन गंगामें नहानेके लिअे ऋषि कितने दिन

जिया, 'माहात्म्य' में अिसका कहीं अुल्लेख नहीं है। हम अुस झरनेको देख आये। मेरे मनमें ऋषिके लिअे अैसी भक्ति पैदा हुअी, मानो वह मेरे ही गोत्रका कोअी पूर्वज रहा हो। वह जितना बड़ा तपस्वी था अुससे भी बढ़कर कवि था। कविकी यह व्याख्या कि 'जो काव्य लिखता है वह कवि है' अव्याप्त भी है और अतिव्याप्त भी। पर यथार्थ व्याख्या यह है कि 'जिसका जीवन ही काव्य है, वही कवि है।' अुस ऋषिने अधिक नहीं, तो कम-से-कम तीस-चालीस वर्षों तक गंगा और यमुनाकी अुपासना अवश्य की होगी। अिसे अपने जीवनका अेक नियम बनाते समय अुसके हृदयमें कैसे-कैसे भाव अुद्भूत हुअे होंगे! और अुस नियमके पालनमें प्रतिदिन अुसे कितना आनन्द आया होगा! चारों धामोंकी यात्रा करते हुअे प्रतिदिन नये-नये अनुभव करनेमें अेक प्रकारकी संस्कारिता निहित है, परन्तु प्रतिदिन दोबार अुसी रास्तेका चक्कर लगानेपर भी अुससे रोज नये-नये आनन्दका अनुभव करनेमें अेक दूसरे प्रकारकी, निश्चित स्वरूपकी और गहरी संस्कारिता निहित है। प्रतिदिनके अिस क्रमके कारण अिस ऋषिका अुस पहाड़के पेड़ोंसे ही नहीं बल्कि अेक-अेक बादलसे भी परिचय हो गया होगा। अुसके सामने न जाने कितने पौधे पेड़ बने होंगे। अुसने न जाने कितनी बार जमुनाका जल घटते और बढ़ते देखा होगा, और कुतूहलके योग्य कुछ भी न रह जानेके कारण अुसकी रोज़की यात्रा अुसे अपने चित्तको अन्तरमुख बनानेमें सहायक हुअी होगी। यह अेकाग्रताका फल है। संसारका अनुभव है कि बड़ी-से-बड़ी व्यावहारिक और आध्यात्मिक समस्या हल करनेमें अैसी अेकाग्रता पत्थर फोड़नेवाली सुरंग से भी अधिक परिणामकारी सिद्ध होती है।

अुन 'यामुन' ऋषिका ध्यान विसर्जन कर ज्यों ही मैं अपने आसपास देखने लगा, तो न स्वामी दिखाअी दिये और न बाबाजी ही। वे कुछ दूर अेक झोंपड़ीमें ताजा मक्खन खरीदनेमें मशगूल थे। मैं भी वहीं पहुँच गया। अुस गोरसको हमने अुन ऋषिका ही प्रसाद समझा, और अुसी भावनासे अुसे 'पाकर' हम आगे बढ़े।

३२

राणागाँव

गंगाणी छोड़ हम आगे चले। नित्यकी तरह स्वामी तेजीसे सबके आगे चल रहे थे। बाबाजी अुनके पीछे-पीछे अुनकी बराबरीपर आनेकी कोशिश करते हुअे चल रहे थे और स्पर्धामें विश्वास न होनेके कारण मैं अपनी चालसे धीरे-धीरे रास्ता तय कर रहा था। फुर्ती और थकावट दोनोंसे मेरी दोस्ती कम-से-कम थी। कुछ आगे जानेपर हमने विचित्र पोशाकवाले पहाड़ी स्त्री-पुरुषोंकी अेक छोटी-सी छावनी देखी। यह कोअी स्थायी गाँव न था। किसी खानाबदोश टोलीका कामचलाअू निवास था। अिन बनजारा जातियोंकी स्त्रियोंकी पोशाकमें, हाव-भावमें और आँखोंमें अेक प्रकारकी अुग्रता और लुटेरापन होता है। 'अबला' या 'ललना' नाम अिनके लिअे होता ही नहीं। पाससे होकर अिस जातिकी स्त्रियोंके गुजरते समय मनमें अेक तरहका डर-सा बना रहता है। बनजारोंकी दूसरी विशेषता है अुनका आलस्य। जो कुछ करना होता है, सो अचूक कुशलता पूर्वक फौरन कर डालते हैं और फिर आलस्यमें मग्न हो जाते हैं। अुन्हें देखकर अैसा लगता है मानो वे अिस चिन्तामें पड़े हों कि अीश्वरने अितना सारा फालतू समय क्यों पैदा किया है? आखिर अूबकर और जमुहाअियाँ ले-लेकर वे अुसकी पूर्ति करते पाये जाते हैं। अिस छावनीके पाससे रास्ता अेकाअेक दाहिनी तरफको मुड़ता था। अिसलिअे सही रास्तेका निश्चय करनेके लिअे हमें वहाँ ठहरना पड़ा, और जबरदस्ती अिन लोगोंका निरीक्षण करना पड़ा। आगे चलकर रास्ता बहुत विकट आया। स्वामी, बाबाजी और मैं तीनों अिकट्ठे होकर अिस विचारमें डूब गये कि आखिर रास्ता किस दिशामें हो सकता है। आगेका प्रदेश बड़े बड़े, बिखरे हुअे, हड्डी होकर पड़े हुअे पत्थरोंसे भरा हुआ था, मानो पाँच-दस पहाड़ोंके बीच घमासान युद्ध होगया हो, और अब रणभूमिपर विनाशके अवशेषोंके सिवा कुछ भी न बचा हो! जिधर नज़र दौड़ाअिये पत्थर ही पत्थर! दूर नजर डालनेपर अेक पहाड़की बाजू दीखती थी मगर

वह भी पत्थरोंके ढेरोंकी ही बनी थी। हम सहज ही अनुमान कर सके कि पृथ्वीके पेटमें कोअी अुत्पात हुआ होगा और किसी पहाड़के चूर-चूर हो जानेसे पत्थरोंकी बाढ़ आ गअी होगी।

अब अिस पहाड़ी रणक्षेत्रमेंसे रास्ता किस तरह निकालें? रण-नदी-सी जमुना बीच-बीचमें 'मत जाओ' कहती थी। आखिर स्वामीने अेक जगह अेक कामचलाअू पुल खोज निकाला। हरअेक पहाड़ी मनुष्यको पुल बाँधना आना ही चाहिअे। फौजमें कामचलाअू पुल बाँधनेमें कुशल लोगोंकी अेक अलग टुकड़ी ही होती है। पहाड़ी लोगोंके लिअे पुल बाँधनेकी कला अेक जीवन-कला है। अुस पुलपरसे अपने शरीरको भली-भाँति साधते हुअे हम आगे गये। आगे चलकर अेक पत्थरके नीचे दबा हुआ कागज़का अेक टुकड़ा मुझे मिला। अुसपर अंग्रेज़ीमें जो कुछ छपा था अुसे ध्यानसे देखा, तो त्रिकोणमितिके कुछ अंक अेक कोष्टकमें लिखे हुअे दिखाअी दिये। मैंने अुस कागजसे अुसकी जीवन-कथा बार बार पूछी, परन्तु त्रिकोणमितिके अंकोंके कोष्टकोंकी पुनरावृत्तिके सिवा और कुछ बतलानेसे अुसने अिनकार किया। अुसने सोचा होगा, 'जो गणित नहीं जानता, अुससे बात क्या करें?' कोअी सरकारी अधिकारी अथवा साहसी यात्री अिस रास्ते गया होगा। वह बर्फमें दब गया होगा, या बाघ भेड़ियेका शिकार बना होगा — कौन जाने क्या हुआ होगा? अुसका सामान आँधी और पानीसे तितर-बितर हो गया होगा या गल गया होगा। अथवा यहाँ जो पहाड़ ढह गया था अुसके नीचे कोअी यात्री दब गया होगा, और अुसके कागज़ोंमेंसे यह अेक अवशेष अुड़ता-अुड़ता आकाशमें विहार करता रहा होगा, और अन्तमें कुछ न सूझनेके कारण यहाँ आकर गिरा होगा। 'यों बार-बार क्यों अुड़ता फिरता है? चुपचाप बैठा रह न भाअी!' अैसा कह कर कोअी पत्थर अुसकी छातीपर सवार हो गया होगा, और अब यह कागज किसी अुद्धारकके आगमनकी राह देखता यहाँ पड़ा होगा। यहाँके 'लैण्डस्लिप'के स्मृतिचिन्हके रूपमें कअी दिनों तक मैंने कागज़के अुस टुकड़ेको सँभालकर रखा था, परन्तु बादमें अुसका क्या हुआ, कुछ पता नहीं। अगर कागजका वह टुकड़ा मुझसे बोला होता, तो कदाचित् मैंने

अुसे किसी पदार्थ-संग्रहालयमें रख दिया होता। घनघोर जंगलमें, जहाँ मनुष्यकी बस्तीका नाम-निशान नहीं, जहाँ पर्वतके अुत्पात और जल-प्रवाहके प्रपातकी ही लीला छाओ हो, वहाँ मनुष्यके दिमागसे पैदा हुअी त्रिकोण-मितिके कागजका टुकड़ा मिल जाय, तो किसे अिसका विस्मय न होगा?

बड़ी मुसीबतसे रास्ता निकालते-निकालते हम आगे चले। अितनेमें दो पहाड़ोंके बीचसे निकलकर गूढ भावसे आती हुअी जमुना हमें दिखाअी दी। पानीका रंग और अुसकी स्थिरता देखकर मनमें निश्चय हुआ कि यहाँ गहरा दह है। आगे जानेका कोअी रास्ता न था। दाहिनी तरफ खड़ा पहाड़ था और बायीं तरफ पर्वतके पैर पखारनेवाला पानी। जब निश्चय हो गया कि पानीमें पैर डाले बिना आगे बढ़ा ही नहीं जा सकता, तो पहाड़ी पगडण्डी पकड़कर हम पानीके किनारे-किनारे पानी काटते हुअे आगे बढ़े। अिस तरह पानी ही पानीमें बहुत दूर तक जानेकी बात नहीं थी, फिर भी पानीने हमारी खासी खातिरदारी की। पानीकी ठण्डक घुटनों और कमरसे अूपर चढ़कर कलेजे तक पहुँच गअी।

अब चढ़ाव लगा। अँधेरा बढ़ चला। ज्यों-त्यों करके राणागाँव पहुँचे। यहाँ शनैश्चर महाराज ग्रामदेवताके रूपमें पूजे जाते हैं। हम अुनके काठके मन्दिरमें जा पहुँचे। थकावट अितनी आ गअी थी कि कड़ाकेकी सरदी होनेपर भी पैर फैला करके ही सोनेकी अिच्छा होती थी। गाँवके लड़के कुतूहलपूर्ण नजरसे हमारा स्वागत करते थे। अगर लड़के शहरके है, तो वे यात्रीसे अेकाध कहानी सुनानेका आग्रह जरूर करेंगे। और अगर शहरसे लगे हुअे किसी गाँवके लड़के हैं तो वे सलाम करके पैसा माँगेंगे। हमारी तरफके देहाती बालक तरह-तरहके सवाल पूछते हैं— "आप कहाँसे आये हैं? आपके गाँवमें अमुक क्या है, तमुक क्या है?" अिस तरफके लड़के यात्रीसे अेक ही चीज माँगा करते हैं— "सूअी दो, धागा दो, बिन्दी दो!" पहाड़ी स्त्रियाँ और लड़कियाँ कपालपर रोरीका तिलक लगाकर अुसपर अबरक या 'बेगड़'की टिकिया अथवा छोटी-सी टिकुली लगा लेती हैं। अुसे अुधरके लोग 'बिन्दी' कहते हैं। पहाड़ी लड़कियाँ अिस बिन्दीपर निछावर हो-हो जाती हैं। हिन्दुस्तानका कोअी यात्री पहाड़ोंमें जाये और अपने साथ सुअी, धागा और बिन्दी ले जाये, तो हर किसी

गाँवमें अुसका सत्कार ज़रूर होगा। मन्दिरके सामनेवाले कमरेमें अेक गड्ढा था — ठीक वैसा जैसा हमारे यहाँके अखाड़ोंमें कुश्तीका होता है। हम अुसीमें सो गये। अेक पहाड़ी कुत्ता गुर्राता हुआ सारी रात हमारी रखवाली करता रहा। आमतौरपर यह कहा जा सकता है कि पहाड़की गायें भेड़-बकरियोंके बराबर छोटी-छोटी होती हैं; जब कि पहाड़ी कुत्ते बाघकी तरह बड़े होते हैं।

आधी रातको थकान अुतरी और मैं लघुशंका करने बाहर गया। सामने पहाड़का अेक प्रचण्ड शिखर अनन्तकालसे बर्फ़ ओढ़कर सो रहा था और अुसपर चन्द्रमाका शीतल प्रकाश सोनेके पानीकी तरह चमक रहा था। आधी रातकी बे-सिर-पैरकी कल्पनाने अुस पहाड़में महादेवजीका माथा देखा। सामने विशाल भाल प्रदेश था, अुसके नीचे दो आँखों-सी वे दो घाटियाँ, अुनके बीचमें वह चपटी नाक, अुसके नीचे मुँहके साथ अेकाकार बनी हुअी विचित्र-सी ठोड़ी और दोनों कान तो अैसे लगते थे मानो रूठकर दूर जा बैठे हों; और महादेवजीका वह माथा तना हुआ न था, बल्कि अैसा मालूम होता था, मानो थकनेके बाद आराम लेनेके लिअे अेक ओर ढल पड़ा हो। आसपासकी ठण्ड फ़ौजी क़ानूनकी तरह मन्दिरके अन्दर जानेका हुक्म दे रही थी, फिर भी पहाड़का वह विशाल दृश्य किसी भी तरह पैरोंको अुठाने नहीं देता था। जब कि चारों तरफ़का पानी जमकर बर्फ़ बन चुका था, अैसे समय काव्यकी प्यासी कल्पना अुस दृश्यका पान करनेमें लीन थी। आकाशमें बृहस्पतिका तारा वृश्चिक राशिपर विराजमान था।

सवेरा हुआ और गाँवके भक्त लोग लम्बे-लम्बे और मोटे चोगे पहनकर मन्दिरमें आने लगे। यह सोचकर कि अब यहाँ और अधिक रहनेकी ज़रूरत नहीं, हम आगे बढ़ गये।

३३

जमनोत्री

जब पहाड़ोंमें कुहरा छा जाता है तब अक्सर यात्रियोंको अद्‌भुत दृश्य देखनेको मिलते हैं। चारों तरफ गाढे दही-सा कुहरा फैला होता है, जिससे आदमी अपने आगे-पीछे अेक हाथसे ज़्यादा दूरकी कोअी चीज़ देख ही नहीं पाता। अगर आमने-सामनेसे लोग दौड़ते हुअे आयें तो आपसमें टकराये बिना न रहें। यदि अिस बीच बादल बिखर जायँ और सूर्यकी किरणें अपना प्रताप प्रकट कर सकें, तो वही कुहरा बातकी बातमें गायब हो जाता है, और विशाल व व्यापक सृष्टि फिर यकायक प्रकट हो जाती है। आश्चर्यमग्न होकर हम अिधर-अुधर देखने लगते हैं कि अितनेमें अीर्षालु बादल फिर आकाशके कपाट अेकदम बन्द कर लेते हैं, और हम तुरन्त ही कुहरेके क्षीरसागरमें निमग्न हो जाते हैं, और फिर कहीं कुछ दिखाअी नहीं देता। अिस अिन्द्रजालको देखनेमें अेक अनोखा मजा आता है। जब स्मृतिके आकाशमें विस्मृतिके बादल छा जाते हैं तो स्मरण-यात्राकी भी यही दशा होती है। यात्राके कुछ संस्मरण कुतूहल या निरीक्षणके कारण बरसोंके पटल भेदकर ताज़ेके ताज़े दिखाअी देते हैं, जब कि कभी बड़े-बड़े भू-प्रदेश विस्मृतिके कुहरेमें अदृश्य हो जाते हैं। हमने राणागाँव छोड़ा और हम जमनोत्री पहुँचे। पर अिन दोनोंके बीचका प्रदेश कैसा था, अुसमें क्या-क्या देखा था, सो सब आज स्मृतिकी पहुँचसे बाहर हो गया है। वह सब गया। सफलतापूर्वक गया। सदाके लिअे गया। पाँच-पाँच, दस-दस क़दमपर थकान अुतारनेके लिअे ठहरना पड़ता था। परन्तु आज तो अितना ही याद पड़ता है कि ज़रा देर ठहरते ही ठण्डी हवा हमें सहलाकर फिर तरोताज़ा बना देती थी।

विस्मृतिके पटलसे बाहर निकलनेपर दृष्टिके सामने यह चित्र खड़ा होता है कि हम जमनोत्रीकी घाटीमें नदीकी दाहिनी ओर वाले अूँचे पर्वतपरसे जल्दी-जल्दी नीचे अुतर रहे हैं। और साथ ही यह भी याद

आता है कि अुस समय मैं अपनी आत्मकथाके कुछ महत्त्वके प्रकरण बाबाजीके सामने खोल रहा था।

पहाड़ोंकी भयानक भूमिमें हर अेक नदीके दोनों किनारोंपर अुनकी रखवाली करनेवाले पहाड़ होते ही हैं। पर जमुनाजीने जमनोत्रीके आसपास रखवालोंका जैसा साथ जमाया है वैसा तो शायद ही कहीं दूसरी किसी नदीको नसीब हुआ होगा। हिमालयके असंख्य भव्य दृश्योंमें जमनोत्रीके निकटका दृश्य अपने शैत्य, पावनत्व और भीषण गाम्भीर्यके कारण कुछ निराला ही नज़र आता है। 'लोकमाता' नामक अपनी अेक पुस्तकमें मैंने 'यमुनारानी' नामसे जो लेख लिखा है अुसमें अिसका थोड़ा वर्णन किया है। जिस दृश्यने हृदयके अेक-अेक कोनेको झकझोर डाला हो, अुसका वर्णन अेक बार अेक प्रकारसे करनेके बाद फिर दूसरे प्रकारसे अुसका वर्णन करना हमें अच्छा ही नहीं लगता। फिर अेक ही बातको बारबार अेक ही तरहसे कहते रहना भी अुचित नहीं।

परन्तु अुस शीत प्रदेशमें कालिन्दीके किनारे बसनेवाले असित ऋषिकी याद आये बिना रहती ही नहीं। चारों तरफ़ फैले हुअे बरफीले पहाड़ोंके बीच अुन दिनों वे असित ऋषि कैसे शोभते होंगे? जिसकी जीवन-भेदी कल्पनाओंके विकासके लिअे जमनोत्रीसे नीची कोअी जगह काम नहीं आयी, अुस ऋषिकी साधना कितनी अुग्र रही होगी? यहाँ रहकर अुस ऋषिने भूत और भविष्य कालके अितिहासमें कितनी सदियों तक नजर दौड़ाअी होगी? अुसने यहाँ बैठकर मानव-कल्याणके अनेक संकल्प सेये होंगे। अगर अुसीका प्रभाव हमारी आजकलकी राष्ट्रीय प्रवृत्तिमें सूक्ष्म रूपसे काम कर रहा हो, तो भी हम अुसे जानें कैसे? यह माननेके बजाय कि यहाँ गरम पानीके कुण्ड देखकर ऋषिने अिस स्थानको चुना होगा, मेरा झुकाव यह माननेकी तरफ है कि ऋषिके यहाँ रहनेका निश्चय करने पर अुसके संकल्प बलसे विवश होकर प्रकृतिने अपने निश्वासके रूपमें यहाँ अुष्ण झरने प्रकट किये होंगे। यहाँके पानीमें गन्धककी गन्ध तक नहीं है। किसी बड़े अिंजनकी चालकी तरह छक्-छक्, फक्-फक् का अुसका गाना निरन्तर चलता ही रहता है।

हमने वहाँ रात अितने आनन्दसे बिताअी, मानो किसी लम्बे सफ़रके बाद घर पहुँचे हों। गरमी और ठण्डके बीच करवटें बदलते हुअे हम रातके अेक-अेक क्षणका माधुर्य चख सके। हमने अपना अेक घण्टा भी गहरी नींदमें नहीं खोया। क्या प्रकृतिने अैसे स्थान किसी अुद्देश्यके बिना ही निर्मित किये होंगे? आज न तो कोअी बड़ा संकल्प करता है, और न अुसकी साधना ही। आज तो अैसे स्थान भक्तिकी तृप्ति और काव्यके अुन्मादके लिअे ही अुपयोगी हैं। हमारे जीवनमेंसे साधना जाती रही है, अिसलिअे अैसे स्थानोंमें साधक कहीं ढूँढे नहीं मिलते।

३४

अूपरीकोटकी चढ़ाअी

अनविंधे मोतीकी क़ीमत ज्यादा समझी जाती है। शकुन्तलाको देखकर दुष्यन्तको भी 'अनाविद्ध रत्नम्'का स्मरण हो आया था। जमनोत्रीका तीर्थस्थान कुछ-कुछ अिसी कोटिका है। साधारण यात्रियोंको बदरीनारायणकी अपेक्षा केदारनाथका आकर्षण कम होता है, और गंगोत्रीकी अपेक्षा जमनोत्रीका। तिसपर जाते-आते जमनोत्रीका रास्ता बड़ा विकट है। अिसलिअे शरीर-प्रेमी यात्री अिस तरफ़ आते ही नहीं। फलतः अिधरकी जनता भी कम धूर्त होती है — बल्कि यों कहिअे कि बिल्कुल भोली। यहाँके पण्डोंमें आप अपनी यजमानी और भिखमंगेपनको छिपानेका लुच्चापन ज़रा भी न पायेंगे। अुनका आहार नितान्त सादा होता है। जब कभी कोअी बीमार पड़ता है तो काली मिर्च, जीरा, तेजपान, लौंग और सोंठ जैसी दवा लेते ही चंगा हो जाता है। यहाँ मैं पहली बार यह अनुमान कर सका कि अपना स्वाद बिगाड़नेके लिअे और अँतड़ियोंको अुम्रभर कष्ट देनेके लिअे मसालेके रूपमें जो चीज़ें हम खाते हैं, असलमें वे गम्भीर बीमारीके समय बतौर दवाके ही बरती जाती थीं। मनुष्यने देखा कि अपचन हो

जानेपर अिस प्रकारकी गरम वनस्पतिसे वह दूर किया जा सकता है। अितना ज्ञान हो जानेपर मनुष्य खानेमें संयम पालने लगे, तो फिर वह मनुष्य ही क्या? मनुष्य यह बात भूल गया कि अजीर्ण या अपचनसे अुसकी आबरू जाती है, प्रतिष्ठा कम होती है। वह कोअी पशु थोड़े ही है जो प्रकृतिके प्रति सच्चा रहे? जब अुसे पतनकी स्वतंत्रता है तो पतित हुअे बिना अुसे सन्तोष कहाँ? मनुष्यने ज़्यादा खाना शुरू किया और साथ ही अपचनकी दवा खानेका नित्य-नियम बना लिया, और यों प्रकृतिसे वैर ठान लिया। अुसे दवाका चसका लग गया। फलतः दवा दवा न रहकर मसाला बन गयी। और जब मसाला खानेपर भी अपचन रहने लगा तो आज मनुष्य-जाति अिस सोचमें पड़ी कि आगे क्या करे? अिधरके पहाड़ी लोग अभी भी सुधारोंकी बदौलत अितने बिगड़े नहीं हैं। कालीमिर्च, तेजपान और लौंग आज भी अुनके लिअे दवाका काम देते हैं। अितना लिखनेके बाद याद आया कि मेरी यात्रा तो पिछली पीढ़ीमें हुअी। क्या यह संभव है कि आज जमनोत्रीके निकटवर्ती समाजमें सभ्यता और प्रगतिका प्रवेश ही न हुआ हो?

जमनोत्रीसे हम वापस राणागाँव आये, और वहाँसे हमने अूपरी-कोटकी चढ़ाअी चढ़कर अुत्तरकाशीकी ओर जानेका सकल्प किया। वातावरण अूपरीकोटकी बातोंसे भर गया, और अूपरीकोटका माहात्म्य या दौरात्म्य हरअेकके मुँहसे सुनाअी देने लगा। अेक बोला — 'अरे भाअी, तुम यहाँ कहाँ आये? अूपरीकोटको लाँघना क्या कोअी आसान बात है? जो काबुलकी लड़ाअी और अूपरीकोटकी चढ़ाअी जीतता है वही बहादुर है।' आगे चलकर अनुभव भी अैसा ही हुआ।

यहाँ रास्तेमें हमने पहाड़ी लोगोंका धार्मिक नृत्य देखा। अिन लोगोंके चेहरेकी बनावटमें हिन्दुस्तानी और चीनी ढबका मिश्रण होता है। अुनके चेहरेपर स्वास्थ्य नामकी कोअी चीज़ नजर ही नहीं आती। अुनका मुँह कुछ अैसा लगता है मानो अेक साथ रोने और हँसनेकी तैयारी करके बैठे हों! ठण्डी हवाके कारण अुन्हें मोटे अूनी कपड़े पहनने पड़ते हैं। पैरोंमें मोटे-मोटे जूते होते हैं। अुनपर अूपरकी तरफ अूनी बेलबूटे बने रहते हैं। सारा स्वाँग बड़ा मजेदार मालूम होता है। वे

लोग अेक मन्दिरके सामने नाच रहे थे । अुनमे बूढ़े भी थे और नौजवान भी । कुछ लोगोंने पहाड़ी पत्थरकी पतली तख्तियाँ पीठपर बाँध ली थीं और वे अुसी हालतमें नाच रहे थे । अुनके अुस नाचमे न तो लास्य था और न ताण्डव ही । फिर भी जब कोअी क्रिया किसी निश्चित नियमके अनुसार बार-बार की जाती है, तो उसमेसे कोई-न-कोई भाव उत्पन्न होता ही है । जब घबराई हुई भैंसें अेकके पीछे अेक दौड़ने लगती हैं, तो अुन्हें देखनेमें जो मज़ा आता है, कुछ वैसा ही मजा इस नाचमे भी आ रहा था। पर मैं तो अुस समय यही सोच रहा था कि अिस नृत्यके मूलमें कौनसी धार्मिक भावना निहित है । और अिन पत्थरोंका प्रयोजन क्या ? मैंने सोचा कि दूर-दूरसे अैसे पत्थर लाकर उनके साथ नाचने और फिर उन्हें मन्दिरमें चढ़ा देनेमें कोअी खास पुण्य लगता होगा; क्योंकि अुस मन्दिरका छप्पर पत्थरकी अैसी तख्तियोंका ही बना हुआ था। ये लोग पत्थरोंको चौकोन या लम्ब चौकोन बनानेका ज़रा भी यत्न नहीं करते,— जैसे-तैसे अुन्हें छप्परपर बिछा देते हैं; पर अुनमें अितनी कला ज़रूर होती है कि छप्पर किसी जगह ज़रूरतसे ज़्यादा मोटा या बेडौल नहीं होने पाता । और भीतर पानी या बरफका डर बिलकुल नहीं रहता ।

अूपरीकोटकी चढ़ाअीके आरम्भमें ही पैर फिसलने लगे । कहीं कहीं हमे अिस बातका सबूत भी देना पड़ा कि असलमें मनुष्य चौपगा जानवर है । गीली जमीनमेंसे बाहर निकली हुअी जड़ें पकड़-पकड़कर हम अूपर चढ़ पाये । यह जानकर कि आजकी चढ़ाअी मुश्किल होगी, बाबाजीने सबेरे हमें अच्छा खासा नाश्ता करा दिया था । नाश्ता कर चुकनेपर हमने चलना शुरू किया । चलना शुरू किया, कहनेकी अपेक्षा यह कहना अधिक सच होगा कि हम रूठे हुअे पहाड़से अनुनय करने लगे। हम कुछ आगे बढ़ गये और हमारे कुली बदस्तूर कुछ पीछे रह गये । अूपर कहीं भी मनुष्यकी बस्तीका नाम-निशान न था। जंगलमें कहीं-कहीं अितने सुन्दर फूल खिले थे कि अुन्हें देखकर सहज ही मनमें यह आशा पैदा हो जाती कि पास ही कहीं किसी ऋषिका कोअी आश्रम होगा । केवल जंगल ही जंगल होता तो अेक ही किस्मके फूल चारों ओर दिखाअी देते । परन्तु यहाँ तो यत्र-तत्र भाँति-भाँतिके फूलोंकी सजावट

नज़र आती थी। कौन सोच सकता था कि यहाँ प्रकृतिमें अुड़ाअूपनके साथ-साथ खिलाड़ीपन भी होगा? मीलों चलनेपर भी मनुष्योंकी बस्ती तो ठीक, मनुष्य प्राणीका भी दर्शन नहीं होता था। हम तीनोंमें अेक बाबाजी ही अैसे थे, जिन्हें रास्ता भूलनेकी कला हस्तगत हो गअी थी। जहाँ हमें बिना चूके ठीक रास्ता मिल जाता, तहाँ बाबाजी अचूक गलत रास्ते जाकर कहीं भटकते रहते। जंगलमेंसे गुज़रते वक्त भी अक्सर अुन्हींके घुटने या कुहनी पेड़ोंसे टकरा जाती।

आखिर हम अूपरीकोटके शिखरपर पहुँचे। जिधर देखिये, बरफ ही बरफ। पानीके अभावमें हम अिस बरफको ही थोड़ा तोड़-तोड़कर खाते थे। जिस तरह गुलकन्दमें शकरके दाने या रवे होते हैं, अिस पहाड़ी बरफमें भी बरफके वैसे ही दाने पाये जाते हैं। अिस बरफको खानेमें मजा तो बहुत आता है, पर प्यास बुझाना अिसका काम नहीं।

अैसी ज़बरदस्त चढ़ाअी चढ़नेके बाद भूख लग आये, तो अुसमें बेचारी भूखका कसूर क्या? लेकिन वहाँ खानेका प्रबन्ध भी क्या था? पहाड़की चोटीपरसे चाहे जिस दिशामें निगाह दौड़ाअिये, बादरू या कैरासिंह कहीं दीखते ही न थे। धीरजका मेरा बाँध टूट गया। मैंने कहना शुरू किया, 'ये कुली कहाँ गये? क्या हुअे? कहीं फिसलकर ढेर तो नहीं हो गये?' वगैरा-वगैरा। अुनके भाग जानेकी शंका तो हममेंसे किसीको अेक क्षणके लिअे भी न हुअी। ये पहाड़ी लोग स्वभावसे भगेडू नहीं होते। और जब सरकारी अधिकारीके सामने कोअी अिकरार हो जाता है, तो कोअी भागनेकी हिम्मत भी नहीं करता। अिन लोगोंपर सरकारकी निगरानी लगभग गुलामोंकी-सी होती है।

शिखरपर अेक बड़ी किन्तु कुछ ढलती-सी चट्टान है। अिसलिअे अुसकी आड़में वर्षासे बचनेके लिअे थोड़ा सहारा-सा मिल सकता है। अिधरके लोग अुसे गुफा कहते हैं। गिरने-गिरनेको हुअी कोअी दीवाल ज़रा अेक तरफ झुक जाय तो क्या हम अुसे गुफा कह सकते हैं? पर अिस पहाड़पर यही अेक गुफा है, जिसके सहारे मनुष्य आकाशके तोपखानेसे बच जानेकी कुछ आशा रख सकता है।

अिस प्रदेशमें अिस ऋतुमें वादलोंका कार्यक्रम वड़ा नियमित होता है। रातको वादल जहाँ तहाँ घाटियोंमें सोते रहते हैं। आठ-नौ वजे जमुहाइयाँ लेते हुए उठते हैं। धीरे-धीरे फिसलते फिसलते — पर फिसलकर नीचे जानेके वदले वे अूपर अुठते हैं, अिसलिअे अुन्हें तो अुछलते-अुछलते कहना चाहिअे न? — घाटीकी चोटीपर पहुँचते हैं। फिर मन ह मन अुडने या न अुड़नेकी अुधेड़-बुनमें अपना वहुत-सा वक्त वितानेके वाद अन्तमें पंख फड़फड़ानेकी आवाज किये विना ही अुत्तरकी तरफ चले जाते है। सभी अुत्तरकी तरफ जाते हैं, मानो सेना अेकत्र करनेका 'समय' वहीं हो। वहाँ सव मिलकर लगभग तीन वजे तक रण-नीतिकी मंत्रणा करते रहते हैं। जहाँ तीन-सवातीनका वक्त हुआ कि दक्षिणपर अुनकी चढाअी शुरू हो जाती है। जहाँ ज़रूरत मालूम होती है वहाँ वीच-वीचमें थोड़े-थोड़े वादल वरस पड़ते हैं, और नीचेकी सृष्टिको चित कर देते हैं। अूपरवाले वादल विजयके आनन्दमें आगे वढ़ते हैं। अूपरीकोट-जैसे वड़े पहाड़पर वरफ़के छोटे-छोटे कन या ओले गिरानेसे काम कैसे चले? वहाँ तो नींवू और आमके वरावर वड़े-वड़े ओलोंका ही तोपखाना चलाना चाहिअे। ओलोंका नाम सुनते ही यहाँके पहाडी लोग भी काँप अुठते है। क्योंकि अेक भी वड़ा-सा ओला कनपटीपर वैठ जाय तो आदमी वहींका वहीं ढेर हो जाय। हम अपने छाते कुलियोंको दे रखते थे। सारा दिन भीगते रहना तो अेक अिष्टापत्ति ही थी। यों चलनेसे शरीरमें आअी हुअी गर्मी कुछ कम हो जाती थी। जो कसकर अितना चले और जमकर खाये वह वीमार ही क्यों पड़े? अलवत्ता रातको ओढने-विछानेके कपड़े सूखे होने चाहियें, नहीं तो अलावकी शरण लेनी पड़ जाय।

और फिर अिस पहाडपर कुली भी छाता खोलनेकी हिम्मत क्यों कर करें? ओलोंसे छातोंकी छलनी तो हमें वनवानी न थी!

हम गुफाके पास पहुँचे और टकटकी लगाकर चारों तरफ देखने लगे। हमारी चर्चाका अन्त हो गया; लेकिन हमारे कुलियोंको हमपर दया न आअी। अुनमेंसे अेकने भी हमें दर्शन न दिये। तीन वजनेमें थे। अिसलिअे वहाँ रहनेमें भी खैरियत न थी। अितनेमें दूरसे कुछ

यात्री आते दिखाअी दिये। थोडी देरमें वे नज़दीक आ पहुँचे। हमें अितनी खुशी हुअी मानो भगवान मिल गये हों। हमारी परेशानी जानकर अुन बेचारोंने हमें आटा, नमक, तवा, लकड़ियाँ आदि थोड़ा-थोड़ा सब सामान दिया और कहा — "देखो, पकानेमें ज़्यादा देर न लगाना। अभी ओले गिरेंगे। हमारी तो यहाँ रुकनेकी हिम्मत नहीं। हमारे बरतन-भाँडे आप लोग हमें नीचेके गाँवमें लौटा देंगे तो भी काम चलेगा।" वे हमारे जवाबके लिअे भी न रुके। बावाजीने रोटियाँ बनाअीं। मैंने या स्वामीने बरफ कूटकर पानी तैयार किया। नमककी मददसे या सच पूछिये तो भेड़िये-जैसी भूखकी मददसे रोटियाँ जैसे-तैसे निगलीं, और हम पहाड़ अुतरने लगे। हमें देर हो गअी थी, अिसलिअे जल्दी अुतरना पड़ा। यह तो मैं कह ही चुका हूँ कि पहाडसे अुतरते समय हम तिपाये हो जाते थे। अुतारमें अेक पैरका अुतरना पुसा सकता है मगर हाथकी लाठीका टूटना या अुसे भूल जाना पुसा नहीं सकता। ज्योंही हम नीचेवाले गाँवके नज़दीक पहुँचे हमें हमारे हितकर्त्ता यात्री मिले। हमारी फुर्ती देखकर अुन्हें ताज्जुब हुआ। अुनमेंसे अेकने कहा — "हमारे साथकी अेक बुढ़िया पैर फिसलनेसे गिरी और अितनी जोरसे लुढ़की कि हमने अुसकी आशा ही छोड़ दी थी। लेकिन सौभाग्यसे नीचेकी तरफ अेक यात्री खड़ा था। अुसने बुढियाको लुढ़कते देखा और अपनी लम्बी लाठीसे अुसकी महायात्राको रोका।" वह साँझ सब लोगोंने अिसी अेक चर्चामें बिताअी।

जिन लोगोंने पहाड़में अड़चनके मौकेपर हमारी मदद की थी और हमपर अितना विश्वास किया था, वे अमीर नहीं थे, बल्कि अुन लोगोंमें थे जो अुम्रभर मेहनत-मज़दूरी करनेके बाद मुश्किलसे अेक यात्राके लायक़ पैसा बचा पाते हैं। अिन लोगोंके लिअे यह यात्रा प्रकृतिका सौंदर्य देखनेकी सैर नहीं, बल्कि सारे जीवनको सार्थक करनेका अेक सुयोग-मात्र था। बहुतेरे ग़रीब बारह-बारह बरसकी कड़ी मज़दूरीके बाद अपनी शादी कर पाते हैं। कअी अैसे हैं जो तीस-तीस चालीस-चालीस बरस तक आधा पेट खाकर अपने लिअे रहनेका घर बना पाते हैं। अिसी तरह परमार्थको परम अर्थ माननेवाले ये भक्त सारे जन्मकी कमाअी

अिकट्ठी करके अैसी यात्रा करने निकलते हैं। सही-सलामत घर लौटे तो भी क्या, और रास्तेमें ही स्वर्गवासी बन गये तो भी क्या? सार्थकता दोनों ओर सरीखी है। अैसे लोग नि.संकोच दूसरे यात्रियोंकी मदद करते है। अुनके अिस त्यागपर किसीको कोअी अचरज नहीं होता। मनुष्यके हृदयमें मानवप्रेम, प्राणिप्रेम विद्यमान है, अिसीलिअे आज मानवोंका अस्तित्व बना हुआ है। पुलिस या फ़ौजसे या अुनके हाथों अमलमें आनेवाले क़ायदे-कानूनसे मानव-समाज न कभी टिका है, न टिक सकता है।

जब हम नीचेके गाँवमें पहुँचे तो वहाँका मन्दिर और धर्मशाला दोनों खचाखच भर चुके थे। ऑगनमें भी लोग पड़े हुअे थे, ऑगनके आसपास दीवाल थी। दीवालसे लगा हुआ अेक चबूतरा था। अुस चबूतरेको खाली देखकर बाबाजीने बड़ी फ़ुरतीसे अपना बिछौना वहाँ बिछा दिया। परन्तु अितनेमें वहाँ अेक विघ्न अुपस्थित हो गया। गाँवके लोग अेकदम बाबाजीपर बरस पड़े। हम समझ न सके कि वे क्या कह रहे हैं। कारण ध्यानमें आता न था और धीरजसे कोअी बात न करता था। बाबाजी जहाँके तहाँ हक्के-बक्के-से रह गये। बाबाजीके बरतावमें वांछित परिवर्तन न देखकर गॉववाले और भी झल्लाये। यात्री बैठे सारा हाल देख रहे थे। आखिर अैसा मालूम होने लगा कि बात मारपीट तक पहुँचेगी। सारे दिनकी थकावटके बाद थोड़ेसे मुष्टि-मोदक अुपयोगी तो होते, परन्तु वे हमारे नसीबमे बदे न थे। अिसलिअे अेक सज्जनने हमें समझाया कि यह चबूतरा महज़ चबूतरा नहीं है, बल्कि पाण्डवोंके बैठनेकी जगह है! मैंने अपने ढंगसे लोगोंको समझाया कि अगर बाबाजीको अिसका पता होता तो वे अुन आदमियोंमें हैं जो चबूतरेका तो ठीक हस्तिनापुरके राजपाटका भी लोभ नहीं करते। प्रसंग जानकर मैंने तुरन्त धर्मात्माका अवतार धारण किया और लोगोंको खूब फटकार सुनाअी — जहाँ पाण्डव निवास करते हैं, वहाँ न तुलसीका क्यारा है, न फूल चढ़े है, और न छोटे-छोटे पौधोंकी कोअी बाड़ ही है, यह कैसी लापरवाही! हमला करने आये हुअे ग्रामीण गरीब गाय-से बनकर अपने बचावमें कहने लगे — "हम गाँवके गँवअी ठहरे, हम यह सब क्या जानें?"

अुस रात मैंने भोजन नहीं किया। सारी यात्रामें मेरे भूखे रहनेका यही अेक अुदाहरण था। मुझे याद पड़ा कि अुस दिन मेरी माताका श्राद्ध था। स्वामीने कहा — "सुबह अुठकर बहुत चलना है, अभी न खाओगे तो काम कैसे चलेगा?" मैंने जवाब दिया — "कल भी अुत्तरकाशी पहुँचकर ही खाअूँगा!" यहाँ मंत्रयुक्त श्राद्ध करनेकी सुविधा न थी, न मेरी वैसी श्रद्धा ही थी। सबेरे जल्दी अुठकर हम चले और कोअी दस मील चलकर अुत्तरकाशी पहुँचे।

३५

अुत्तरकाशी

हिन्दुस्तानके नक्शेपर सरसरी निगाह दौड़ानेपर भी सहज ही यह ध्यानमें आ सकता है कि गंगा नदीका प्रवाह आरम्भमें अुत्तरसे दक्षिणकी तरफ और फिर अधिकांशमें पूर्व और दक्षिण दिशामें ही बहता है। अिस अितने लम्बे प्रवाहमें यदि किसी स्थानपर अिस नदीकी धारा दक्षिणसे अुत्तरकी ओर बहती है, तो वह अेक आश्चर्यका ही विषय है। अिस प्रकारकी अुत्तरवाहिनी गंगा तीन स्थानोंमें है। यह तो हम सब जानते ही हैं कि काशी वाराणसीका माहात्म्य अिसलिअे है कि वहाँ गंगा अुत्तरवाहिनी है। अुसी प्रकार हिमालय पर्वतमें गंगाजीके प्रवाहको दक्षिणसे अुत्तरकी तरफ जाता देखकर हमारे पूर्वजोंको वह नितान्त अद्भुत दृश्य काव्यमय प्रतीत हुआ होगा, अिसीलिअे अुन्होंने अुस स्थानका नाम अुत्तरकाशी रख दिया। अेक बार काशी-क्षेत्रके रूपमें अुसे स्वीकार करनेके बाद तो काशीमें जितने मुख्य-मुख्य देवता हैं अुन सबकी वहाँ भी स्थापना करना क्रमप्राप्त ही था। अुत्तरकाशीमें काशीविश्वनाथ हैं, बिन्दुमाधव हैं, मणिकर्णिका है, दत्तात्रेय और परशुराम हैं। जो कुछ काशीमें है वह सब छोटे पैमानेपर अुत्तरकाशीमें मिलना ही चाहिअे। (लाचारी है कि अुत्तरकाशीमें बन्दर नहीं। पर वहाँ जंगली गायें बहुत हैं।)

अुत्तरकाशी दो पहाड़ोंके बीच अेक विशाल घाटीमें बसी हुअी है। गर्मियोंमें वहाँ बहुतसे साधु रहते हैं। और क्यों न रहें? जो गृहस्थ है, घरसे बँधा हुआ है, वह मनुष्य होते हुअे भी स्थावर बन जाता है। गर्मी हो या जाड़ा, वर्षाऋतु हो या पतझड़ हो, वह अपना स्थान छोड़ नहीं सकता। आजीविकाके कारण भी अुसे अेक ही स्थानमे घिरे रहना पड़ता है। पर साधु तो अनिकेत, अनागरिक ठहरे। वे भला क्यों बारहों महीने अेक ही जगह पडे रहने लगे? दीवालीके अुत्सवपर साधु लोग अमृतसर जाते है। जाड़ा हृषीकेशकी गरम घाटीमें बिताते हैं और ग्रीष्मऋतु आते ही गिरि-आरोहण करके अुत्तरकाशी पहुँच जाते है। दुनियाका अधिक-से-अधिक आनन्द अमीर और फकीरके लिअे ही है — फर्क अितना ही है कि फक़ीरको फिकर नहीं होती। गर्मियोंमे अुत्तरकाशीकी हवा अत्यन्त आह्लाददायक होती है। हिमालयकी प्राणदायक वायु, पहाड़ी गेहूँका पौष्टिक आहार, और गंगाजीका अमृत जल। यहाँके साधु चार महीनोंमें अितने लालसुर्ख और मस्त बन जाते हैं कि अेक-अेकका शरीर देखते ही बनता है। ये लोग अन्नसत्रकी बनी-बनाअी रसोअी खाते हैं, आपसमें विभिन्न विषयोंकी चर्चा करते हैं, पहाड़ोंमे यथेच्छ घूमते है, और आने-जानेवाले यात्रियोंको आशीर्वाद देते हैं। कभी कोअी चटपटी चीज़ खानेकी अिच्छा हुअी, तो आसपासकी भली पर्वतीय स्त्रियोंसे अुसकी भिक्षा भी मिले बिना रहती नहीं।

अुत्तरकाशीमें कअी साधु चार-पाँच महीनोंके लिअे अपना अेक कॉलेज भी खोल देते हैं। प्रकाण्ड-से-प्रकाण्ड विद्वान संन्यासी यहाँ आकर रहते हैं। विरक्त भावसे वेदान्तकी चर्चा करते हैं। श्रद्धालुको परिश्रमपूर्वक सिखाते हैं, और चिरन्तन शान्तिमे जीवन व्यतीत करते है। अजायबघरके साथ जो प्राणि-संग्रह होता है, अुसके बाघों और सिंहोंको जिस प्रकार दर्शकोंका अुपद्रव सहना पड़ता है, अुसी प्रकार यहाँके साधुओंको यात्रियोंका अुपद्रव विवशभावसे सहना पड़ता है। "'स्वामीजी महाराज, दर्शन दो'; 'स्वामीजी महाराज, कुछ अुपदेश सुनाओ'; 'स्वामीजी महाराज, अितना सूखा मेवा खाओ'; 'स्वामीजी महाराज, मेरी अिस बहूको आशीर्वाद दो'; 'स्वामीजी महाराज, नज़दीककी अिस धर्मशाला तक चलकर थोडी-सी

भिक्षा ग्रहण करो, भोजन करनेवाले बाट हेरते बैठे हैं'।" अिस तरहकी कोअी-न-कोअी हैरानी अुनके पीछे लगी ही रहती है।

हमने काली कमलीवालेकी बड़ी धर्मशालामें दो दिन मुकाम किया। धर्मशाला ठीक गंगाजीके किनारे है। पानीमें अुतरनेके लिअे सुन्दर घाट बना हुआ है। बाजार, डाक-घर सब तरहका सुभीता है। नदीमें खूब अच्छी तरह नहाकर मैं कुछ संन्यासियोंसे बातें करने लगा। बाबाजीने यात्राके लिअे कुछ आवश्यक चीज़ें खरीदनेकी व्यवस्था की और स्वामीको यहाँ डाक-घर होनेके कारण अितना आनन्द हुआ कि वे खतपर खत लिखते बैठे। साँझको हम अेक मन्दिरमें अेक साधुके दर्शनोंको गये। वे अेक विद्वान् और योगीके नाते विख्यात थे। वहीं महाराष्ट्रके अेक दण्डी संन्यासीसे थोड़ी जान-पहचान हुअी। वे पंढरपुरकी तरफके थे। अुन्होंने हम लोगोंसे मराठी बोलनेका यथेच्छ आनन्द लूटा। यहाँ स्थायी रूपसे रहनेवाले संन्यासी कैसे होते हैं, अिसकी विस्तृत जानकारी देना भी वे न चूके। अुन्होंने हमें वहाँकी पहाडी भाषाके कुछ चुनिन्दा शब्दोंसे परिचित भी कराया। अिन संन्यासीका शरीर दुबल-पतला था। मुँहसे दाँतोंने स्तीफा दे रखा था। फिर भी वे अपने विनोदी, मसखरे और बातूनी स्वभावका और अपनी हास्यरस-पटुताका परिचय देनेमें ज़रा भी न चूके।

अुत्तरकाशीमें विश्राम करनेके बाद हम भटवाड़ी गये। भटवाड़ीका पुराना नाम भास्करपुरी है। भास्करसे भट कैसे हो गया, सो हमें कोअी समझा न सका। अेक पहियेके रथमें सात घोड़े जोतकर निरन्तर दौड़ लगानेवाले सूर्यनारायण भट अर्थात् बहादुर हैं, वीर हैं अिसमें शक ही क्या? भटवाडीमें देखने लायक कुछ नहीं था। लेकिन चूँकि हमने अपना गैरजरूरी सामान यहाँकी अेक दुकानमें रखकर गंगोत्रीके लिअे प्रस्थान किया था, अिसलिअे यह स्थान ध्यानमें रह गया। गंगोत्रीसे लौटकर भटवाड़ीके रास्ते ही केदारनाथ जाना होता है।

जैसे ही हम भटवाड़ी छोड़कर आगे बढ़े, सृष्टिने अेकाअेक नितान्त रमणीय स्वरूप धारण कर लिया। अूँचे-अूँचे पेड़, और लम्बी-लम्बी परन्तु नीचेको झुकी हुअी अुनकी डालियाँ; नदीका पाट, और अुसमें

निरन्तर स्नान करनेवाले ऋषितुल्य गोलमटोल पत्थर; सुगन्धित हवा — सभी चीजें सुहावनी और मनभावनी थीं। मुझे कुछ-कुछ याद है कि यहाँसे सत्यनारायण जाते समय हमें अेक बार गंगाजी पार करनी पड़ी थीं। यहाँ पास ही अेक बड़ा प्रपात है। स्वामी और बाबाजीने अुसका सविस्तर वर्णन सुनाया। जाते समय मेरा ध्यान जाने कहाँ चरने चला गया था कि मैं अुसे देख न पाया। लौटते समय भी अुसे देखनेकी बात याद नहीं पड़ती। स्वामीने अुसका वर्णन अितने अुत्साहके साथ किया, कि मुझे वैसे सुन्दर दृश्य देखनेका मौका खो देनेके लिअे मुँह लटकाकर बैठना पड़ा।

सत्यनारायणमें अेक पण्डेसे थोड़ी बातचीत हुअी। अुसने पूछा — "आप लोग कहाँसे आते है?" हमने कहा — "बम्बअीसे।" अितनी दूर आनेके बाद अिससे अधिक सूक्ष्म स्थल-निर्देश करनेमें कोअी सार न था। अुसके लिअे बम्बअी और बेलगाँव दोनों अेक-से थे। बम्बअीका नाम सुनते ही अुसने पूछा — "वहींसे, जहाँ व्यंकटेश्वर छापखाना है?" मैंने कहा — "जी हाँ, वहीं से।" बम्बअीमें दूसरा अैसा है ही क्या, जिसकी कीर्ति यहाँ पहाड़ तक पहुँचे? मैं व्यंकटेश्वर छापखानेवाले शहरसे आया हूँ यह सुनकर अुसने तुरन्त नम्रतापूर्वक कहा — "वहाँसे मेरे लिअे अेक 'शनि माहात्म्य' भेजेंगे?" मैंने मजूर कर लिया। अुसका नाम और गाँव अपनी नोट बुकमें लिख लिया, और जहाँ तक मुझे याद है, छह या आठ महीने बाद शनि-माहात्म्यकी अेक प्रति कहींसे अुसके पतेपर भेज दी। मेरा खयाल है कि अुस पुस्तकके पहुँचनेके बाद फिर शनि महाराजने अुस पण्डेको किसी प्रकारकी पीड़ा न पहुँचाअी होगी!

सत्यनारायणसे जरा आगे बढ़नेपर 'गंगानाणी' नामक अेक चट्टी आअी। यहाँ हमने अेक वृद्ध साधुकी कीर्ति सुनी। अिसलिअे गंगाजीके अुस पार वहाँ पहुँचे जहाँ गरम पानीका अेक कुण्ड था। झरनेमेंसे चूनेके जो सूक्ष्मकण निकलते है अुनके अेक-दूसरेपर जम जानेसे वहाँ अेक सुन्दरसा बमीठा बना हुआ देखा। हिमालयके कुछ प्रवाहोंकी यह अेक खासियत है। अगर पानीमें जड़ों और पत्तोंवाली अेकाध डाली गिर जाय तो धीरे धीरे पानी अुसपर असर करना शुरू कर देता है। पत्ते ज्यों-ज्यों गलते

जाते हैं, त्यों-त्यों अुनपर पानीका असर बढ़ता जाता है। पत्ते और अुनके साथ जुड़े काठके सूक्ष्म कण जैसे-जैसे घुलते जाते हैं, वैसे-वैसे चूनेके सूक्ष्म कण वहाँ अुसी आकारमें जम जाते हैं। कोअी छह महीनोंमें अुस सारी डालका पुनर्जन्म-सा हो जाता है, और वनस्पतिकी जगह देखनेमें संगमरमर-जैसी नाजुक लेकिन काफी मजबूत अेक डाली तैयार हो जाती है। अुसकी कारीगरी देखकर तो ग्रीसके शिल्पकार भी अवाक् ही रह जायँ। सिवा अुसकी शकलके असल डालीका और कोअी रूप बाकी नहीं रहता। यदि आत्माके अस्तित्वको न मानकर भी पुनर्जन्ममें विश्वासवाले बुद्ध भगवान्‌का ध्यान अिस पर्वतीय चमत्कारकी ओर गया होता, तो दीपकका दृष्टान्त देनेके बदले अुन्होंने अिस खनिज, जलज डालीका ही दृष्टान्त दिया होता। (अेक बार लाहोरमें अेक सज्जनके घर अिसी तरहसे बना हुआ अखरोटका अेक फल देखा था। परन्तु अुसमें चूनेके बदले लोहेका चूरा था और अिसलिअे वह वजनमें काफी भारी मालूम होता था।)

यहाँके वृद्ध साधुने स्वामीका ध्यान विशेष रूपसे आकर्षित किया। जबतक स्वामी अुसके साथ बातें करनेमें लगे रहे, मैं चूनेके अुस बगीठेको देखनेमें गर्क रहा। लौटनेपर स्वामीने कहा — "यह साधु यहाँ तीस सालसे रहता है।" मुझे अुनकी अिस बातपर सन्देह करनेका कोअी कारण न मिला। फिर भी मनमें विचार आया कि हिमालयमें यात्राके रास्तेपर कअी साधु अिसी तरफ झोंपड़ियाँ बाँधकर रहते हैं। वे आसपासके पहाड़ी लोगोंसे अपने विषयमें बड़ी बड़ी बातें फैला देनेको कहते हैं, और अिस मेहनतके बदले अपनी कमाअीमें अुनका भी कुछ हिस्सा रख लेते हैं। यह भी अैसा ही अेक साधु न होगा, अिसका प्रमाण क्या? अगर बात अैसी न थी तो ये लोग हमसे आग्रहपूर्वक यह क्यों कहते थे कि पुलके अुस पार अुष्ण कुण्डके समीप अेक बड़े भारी साधु रहते हैं? आप अुनके दर्शनोंके लिअे जरूर चलिअे। अेकने तो यहाँ तक कह डाला कि अुसके दादा कहा करते थे कि अुन्होंने अपने छुटपनमें भी अिन साधुको यहीं रहते देखा था। साधु महाराजकी अुम्र जितनी अुन दिनों लगती थी अुतनी ही आज भी लगती है। जिस प्रकार समाचार-पत्रोंमें छपनेवाली कुछ घटनाओंके वर्णन सदा अेक-से होते हैं, अुसी

प्रकार जंगलमें रहनेवाले योगियोंके विषयमें अिस तरहकी बातें सब जगह अेक ही रूपमें सुनी जाती हैं। कोअी कहेगा कि रोज़ नअी-नअी बातें सुननेकी अपेक्षा अेक सर्वमान्य वर्णन सुननेमें अधिक सुविधा नहीं है? जिस तरह रेल्वे लाअिनपर तमाम स्टेशनोंकी बनावट अेक-सी होती है, अुसी तरह साधुओंके चमत्कार भी प्रायः अेक-से होते हैं।

नीचेवाली गंगानाणीसे लगा हुआ अेक छोटा-सा प्रपात है। वहाँ पानी वेगसे गिर रहा था, फिर भी हम अुसमें नहानेके अपने लोभको रोक न सके। हिम्मत करके ज्यों ही हम प्रपातके नीचे पहुँचे तो पानीकी टॉकियोंकी चोटें सिरपर तडातड बरसने लगीं। स्वामीको पाठशालाके अपने दिन याद आ गये। "नहीं गुरुजी, मारिये नहीं, फिर अैसा कभी न करूँगा।" अिस तरह वे हँसते-हँसते चिरौरी करने लगे। अुस समयसे हमने अपनी बातचीतमें अुस प्रपातका नाम 'नहीं गुरुजी प्रपात' रख दिया।

वहाँसे आगेका प्रदेश खास गंगोत्रीके आसपासका प्रदेश कहा जा सकता है। रास्तेमें लकडीका बना हुआ अेक घर देखा। अिस तरफ सरकारी बँगले और निजी घर काठके पटियोंके बने होते हैं। अुनमें चीड़के गोंदकी धूपकी-सी सुगन्ध सर्वत्र फैली रहती है, क्योंकि ये पटिये चीड़ या देवदारके बडे-से-बडे तने चीरकर ही तैयार किये जाते हैं।

अिसी प्रदेशमें मैंने पहले-पहल वनगाय देखी। वनगायको यहाँ याक अथवा झब्बू कहते हैं। अिस वनगायका मालिक भोटिया अपनी गायकी अपेक्षा जरा भी सभ्य नहीं दिखाअी देता। अन्तर केवल अितना ही है कि गायें आगे-आगे चलती हैं और ये भोटिये अनुयायी बनकर अुनके पीछे-पीछे चलते हैं। वनगायें देखनेमें बहुत भली होती हैं। अुनके सींग कुछ आगेको निकले होते हैं। सींगोंके बीचसे होकर माथेपर बालोंका अेक गुच्छा-सा लटकता रहता है। अिनका अैसा ही चित्र मेरी दृष्टिमें समा गया है। यहाँ अिन वनगायोंका घी बहुत सस्ता मिलता है। परन्तु कभी-कभी अुसमें वनगायोंके बाल मिले होते हैं। अिसलिअे गरम करके छाने बिना अुसे अुपयोगमें लानेकी अिच्छा नहीं होती। अिस प्रदेशके आलू भी काफी बड़े और स्वादिष्ट होते हैं। अिधर गेहूँकी रोटी और आलूकी तरकारी ही कअी दिनों तक हमारी खुराक रही।

३६

गंगोत्री

बदरीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री और जमनोत्री अिन चार धामोंमें हरअेककी अपनी अपनी विशेषता है । बदरीनारायण अपने वैभवसे हमें आकर्षित करते हैं । केदारनाथके वातावरणमें वैराग्य विशेष रूपसे पाया जाता है । जमनोत्रीकी भव्यता हमारे हृदयपर अमिट छाप डालती है । और गंगोत्री तो हमें अपनी पवित्रतामें बिल्कुल ही डुबो देती है ।

गंगोत्री जाते हुअे स्वामीने रास्तेमें पड़े अेक साँपको अपनी लम्बी लकड़ीसे अुठाकर नीचेकी घाटीमें फेंक दिया । वह घबराया हुआ साँप हवामें अपने शरीरको अैंठता हुआ नीचेको गिर रहा था । अुस वक्त वह छुटपनमें बाज़ारसे खरीदे हुअे हरे साँप-सा दिखाअी देता था। अुस समय मेरे मनमें कुछ अैसे ही विचार आये । परन्तु गंगोत्री पहुँचते ही अिस तरहके सारे विचार काफूर हो गये । अब विचार-क्षेत्रमें प्राचीन राजर्षि और महर्षि प्रविष्ट होने लगे । भारत-सम्राट भगीरथ और धर्म-सम्राट श्री शंकराचार्यका स्मरण तो बिना हुअे रहता कैसे ? महाराज भगीरथको अुत्तराधिकारमें यह अेक सकल्प प्राप्त हुआ था कि पूर्वभारतके अंगवंगादि समतल-प्रदेशपर पानीकी विपुलता पैदा करके करोड़ों मनुष्योंको करोड़ों वर्षों तक अन्नदान किस प्रकार कराया जाय । अिसी सकल्पका सेवन करता हुआ राजा भगीरथ अिस पहाड़ीपर मारा-मारा फिरता और हिमालयके प्रवाहोंकी पैमाअिश करता था । आज अिनमेंसे कअी पहाड़ियाँ माताके सिद्धपीठके रूपमें प्रख्यात हैं । अिन सिद्धपीठोंपर की हुअी किसीकी भी तपस्या आज तक व्यर्थ नहीं हुअी ।

और जब शंकराचार्यने चारों तरफ दिग्विजय करके दक्षिणके धर्मनिष्ठ, संस्कार-सम्पन्न, ब्राह्मण कुटुम्बोंको यहाँ लाकर बसाया, अुस समय अुनके मनमें क्या-क्या सकल्प रहे होंगे ? हिमालयके अिन शिखरोंपरसे दक्षिण और अुत्तर दोनों दिशाओंमें, और भारत व तिब्बत दोनों देशोंमें, धर्म-प्रवाह प्रवाहित कर अद्वैतके जीवन-सिद्धान्तकी और सर्वैक्यके हृदय-धर्मकी लहर

फैला देनेका संकल्प अुन्होंने भी यहाँ रहकर किया होगा। अुन्हींके पूर्व अवतारस्वरूप गौतम बुद्धने जो धर्म-प्रेरणा प्रचारित की थी, अुसकी लहरें हिमालयके अुस पार शंकराचार्यके समयसे पहले ही पहुँच चुकी थीं। शंकराचार्यने बुद्धके अुपदेशपर आस्तिक्यका पुट देकर अुसे राष्ट्रीय बनाया था। शंकराचार्यको प्रछन्न बौद्ध कहकर अुनके विरोधियोंने अुनकी निन्दा करनेके बदले वास्तवमें अुनके कार्यकी परम्परा और महत्ता ही बतलाअी है। गंगोत्रीमें गंगामैयाका मन्दिर अितना छोटा है, मानो किसी तपःपूत ऋषिकी आत्म-प्रेरणा या धर्म-स्फुरणा हो!

मुझे हिमालयमें शक्तिरूपिणी जगन्माताकी अुपासना करनी थी। वहाँ रहनेवाले अेक बंगाली साधुसे मैंने अुपासनाकी विधि पूछी। जहाँ तक मुझे स्मरण है, अुस साधुका नाम श्यामभारती या श्यामाभारती अैसा कुछ था। अुसने मुझसे मेरा अुद्देश्य पूछ लिया, और तुरन्त जवाब दिया — "भाअी, तुम मेरे शिष्य नहीं हो। भला, मैं तुम्हें वह विधि कैसे बतलाअूँ? तुम अपने गुरुसे ही पूछो।" कुछ लोगोंको अिस जवाबमें साम्प्रदायिक संकीर्णताकी बू आयेगी। मुझे वैसा न लगा। मुझे मालूम था कि हमारे धर्ममें गुरु-परम्पराके द्वारा ही निष्ठा और अेकाग्रताका परिपोष हुआ है। त्रिविधता जिसका सनातन स्वरूप है, अैसे अिस संसारमें स्वधर्म-निष्ठाका तत्त्व न हो, तो अेक भी सच काशी नहीं पहुँच पाये। जिस प्रकार कौटुम्बिक जीवनमें निष्ठा ही प्राणरूप है, अुसी प्रकार धार्मिक जीवनमें निष्ठाका अपना खास महत्त्व है। मुझे अिस बातका ध्यान था, अिसलिअे अुस संन्यासीके जवाबसे संतोष ही हुआ।

तीर्थक्षेत्रका नियम है कि वहाँ खाली पेट जाओ और वहाँसे भरे पेट निकलो। हम भी अिस नियमका विधिवत् पालन करते थे।

धधकते हुअे अंगारोंपरसे चलनेमें मनुष्यकी जैसी कसौटी होती है, वैसी ही यहाँ पिघली हुअी बरफके पानीमें नहाते समय होती है। फिर भी गंगोत्री पहुँचकर वहाँ बिना नहाये रहना सम्भव कैसे था? कॉलेजके अेक साथीने 'बाथ' अर्थात् स्नानकी अेक विनोदी परिभाषा बतलाअी थी 'सकल गात्रार्द्रीकरणं बाथ'। नहानेका शरीरशुद्धिसे अथवा मलापहरणसे कोअी सम्बन्ध नहीं है। समूचा शरीर भिगो लेनेसे स्नान

सम्पन्न हो जाता है। हम वहाँ अिस परिभाषाके अनुसार ही नहाये और पानीमेंसे जीवित बाहर निकले। अबरक और अत्यन्त महीन बालूके कारण पानी गँदला था। जिस जगह मैं नहाया वहाँ पानी बहुत गहरा नहीं था, अिसलिअे मुझे सिर डुबानेके लिअे पानीमें डुबकी लगानी पड़ी। मुझे क्या पता कि मेरे सिरके पास ही पानीमें अेक प्राचीन गोल पत्थर ध्यानस्थ बैठा है! हम दोनोंके माथे प्रेमसे और सख्तीसे अेक-दूसरेके साथ टकराये। आवाज़ भी हुअी, लेकिन सिरके भीतर वेदना पहुँचनेके लायक़ चैतन्य कहाँ रह गया था! मेरा शरीर बधिर हो गया था। मैं अुसी अवस्थामें दौड़ता हुआ पानीसे बाहर निकला और धूनीके पास जाकर हाथ तपानेके बाद ही गीले कपड़े निचोड़ सका। दूसरे दिन जब माथेपर अुस ध्यानस्थ मित्रकी छोटी-सी प्रतिकृति अुठी हुअी दिखाअी दी, तभी अिस बातका प्रदर्शन हुआ कि मेरा और अुसका मिलन कितना प्रेमपूर्ण हुआ था!

यहाँ हम तीन दिन ठहरे। दुर्गा सप्तशती, गीता, तुकारामके अभंग, रामदासका मनोबोध और अीश-कठ आदि अुपनिषदोंके पठनमें ही हमारा समय बीता। यहाँसे गोमुख सिर्फ़ बारह या अठारह मील है। वहाँ जाने न-जानेके बारेमें हमारे बीच बहुत-कुछ चर्चा हुअी। कुछ पहले आये होते, तो गंगाजीके जमे हुअे पाथरसे ही सुगमतापूर्वक गोमुख पहुँच जाते। जनश्रुति तो अैसी है कि गोमुखमें आज भी आकाशसे गंगाजी गिरती है। शायद वहाँ नित्य होनेवाली रिम-झिम रिम-झिम वर्षाको ही यात्री अिस रूपमें समझ लेते होंगे। अन्यथा वहाँ तो अखण्ड बरफका खज़ाना ही है, और कुछ नहीं। पण्डे लोग कहने लगे, "यदि कुछ कुलियोंको कुल्हाड़ी और लकड़ियोंके साथ ले लिया जाय, तो नदीके किनारे-किनारे गोमुख तक जाया जा सकता है। अिधर अुधरसे आकर गंगाजीमें मिलनेवाले छोटे-छोटे प्रवाह रास्ता काटें, तो लकड़ीके काम चलाअू पुल बनाकर आगे जा सकते हैं। लौटते समय ये पुल अपनी जगहपर होंगे ही, अिसका कोअी ठिकाना नहीं। अिसलिअे दोहरी तैयारी रखनी पड़ती है।" पण्डोंने हमें बतलाया कि गंगोत्रीसे गोमुख तककी भूमि अितनी पवित्र है कि यात्रीको वहाँ मल-मूत्र विसर्जन किये बिना ही हो आना चाहिये।

शंकराचार्यकी अैसी ही आज्ञा है। हम अपने साथ टेहरीके हाकिमकी सिफारिश ले गये थे। अुसका अेक विचित्र परिणाम हुआ। हमें नाराज़ करते पण्डोंको डर लगता था, लेकिन साथ ही वे हमसे विशेष द्रव्य पानेकी आशा भी नहीं रख सकते थे। अिसलिअे अूपर अूपरसे तो वे यह जतलाते थे कि अुनमें पूरा अुत्साह है, वे खुद हमारे लिअे सारी सुविधायें कर देनेको तैयार हैं; पर साथ ही, सारी बातें अिस तरह हमारे सामने रखते थे कि आगे जानेकी हमें अिच्छा न हो। मुझे शाकुन्तलका वह प्रसंग याद आया, जहाँ मृगया-प्रेमी दुष्यन्तके विरुद्ध सेनापति और विदूषकने आपसमें सलाह की थी। बहुत सोच-विचारके बाद स्वामीने आगे जानेका विचार छोड़ देनेका सुझाव रखा। मुझे वह अखरा नहीं। अुस समय तक जो कुछ देख लिया था, वही अितना अधिक भव्य, विविध और विशाल था कि और नये दृश्य देखनेकी खास अुत्सुकता रही नहीं थी। जानेका फैसला होता तो हर तरहके कष्ट और संकट झेलनेके लिअे मैं तत्पर था। परन्तु अैसा न लगा कि जाना न हुआ तो जीवनके किसी बड़े भारी लाभसे वंचित रह जाना होगा। चित्तमें कोअी विषाद न रहा। यदि मनुष्य शास्त्र-शुद्ध अुदासीनताका विकास कर ले, तो वह योगीकी 'नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।' स्थितिको स्थूल रूपसे अवश्य दिखा सकता है।

गोमुख न गया, अिसका तो मुझे ज़रा भी दुःख न हुआ। परन्तु गंगोत्रीको छोड़ते समय चित्तवृत्ति स्वस्थ कैसे रहती? जिस तरह घरसे कॉलेजके लिअे विदा होते समय हृदय भर आता था, वैसा ही गंगोत्री छोड़ते समय हुआ। न जाने कितने — शायद अनगिनत — हिन्दू पूर्वज भावभक्तिसे यहाँ आये होंगे, और गंगामैयासे स्थायी शान्ति तथा पवित्रताका प्रसाद पाकर लौटे होंगे! और अुनमेंसे कअियोंने तो यहाँ आनेपर फिर वापस जानेका विचार ही छोड़ दिया होगा। सचमुच गंगाजी भारतवासियोंकी मैया ही हैं, और अुनकी गोदमें हरअेकको जीवनकी शान्ति मिलती ही है।

बुड्ढा केदार

गंगोत्रीसे हमने गंगाजलका अेक लोटा भर लिया। पण्डोंने अुसे चपड़ेकी मुहर लगाकर हमें यात्राका सुफल दिया। हम लौटे। रास्तेमें प्रत्येक यात्रीके हाथमें गंगाजलका अेक अेक लोटा था ही। यह पवित्र जल अनेक प्रान्तोंके अनेक घरों और झोपड़ोंमें पहुँचेगा। पश्चात्तापसे जलते हुअे कअी पापियोंको यह जल परमात्माकी क्षमाका आश्वासन देगा। मृत्यु-शय्यापर पड़े हुअे कअी वृद्धोंको यह जल मरण-कालकी शान्ति प्रदान करेगा।

और कुछ साधु तो यहाँके गंगाजलको सेतुबन्ध रामेस्वर तक पहुँचाकर और रामेस्वरकी बालू गंगोत्रीमें डालकर सारे भारतवर्षको धर्मबन्धनसे अुसी प्रकार बुन डालते हैं, जिस प्रकार हम निवारसे खाट बुनते हैं। चार धामोंक यात्रा हमारी धार्मिक बुनावट है। अिस प्रकार देश और समाज अेक-दूसरेमें ओतप्रोत हो जाते हैं।

वापस भटवाड़ी आकर हमने केदारका रास्ता लिया। यह रास्ता हिमालयमें भी अत्यन्त जंगली और भयानक माना जाता है। बीस-बीस मील तक किसी गाँव या मनुष्यके दर्शन नहीं होते। वृक्ष अितने घने और अूँचे हैं कि दोपहरमें भी वहाँ क़रीब-करीब अँधेरा-सा रहता है। बारिशके कारण नीचेकी जमीन कुछ भीगी हुअी होती है। अिसलिअे जमीनपर पेड़ोंकी जड़ोंका अेक जाल-सा बिछा हुआ दिखाअी देता है। रातके समय ये जड़ें जानकी गाहक सिद्ध होती हैं। क्योंकि अिनमें पैर अुलझने ही मनुष्य ठोकर खा जाता है। परन्तु अैसे अरण्यमें रातके समय कोअी जायेगा ही क्यों? अगर पहाड़की वेंडी चढ़ाअीमें अिन जड़ोंका सहारा न मिलता, तो कहीं-कहीं तो आगे चढ़ना ही असम्भव हो जाता। बीच-बीचमें पड़े हुअे सूखे पत्तोंके ढेर अिस जंगलको और भी भयावना बना देते हैं। किसी-किसी स्थानपर, जहाँ चढ़ाअी सख्त नहीं होती और झाड़-झंखाड़ भी अुतने ज्यादा नहीं होते, बड़े रमणीय दृश्य देखनेको मिलते हैं।

जहाँ तक नज़र दौड़ाअिये रंग-बिरंगे फूल ही फूल दिखाअी देते हैं। अैसा मालूम होता था, मानो किसी शौकीन मनुष्यके बॅगलेके बगीचेमें घूम रहे हों; और यह कि जरा आगे बढ़नेपर अुसका बॅगला भी नज़र आयेगा। पर सबेरेसे शाम तक सारे दिनमें कहीं न तो गाँव मिलता था न मकान, और न मनुष्य या जानवर ही। निर्जनता कितनी भीषण हो सकती है, अिसकी कुछ कल्पना यहीं आअी। निर्जन प्रदेशमें विविध रंगोंवाले फूलोंका यह भूमि-भाग किसी अलौकिक परिस्तान-जैसा मालूम होता था।

जहाँ मनुष्यका मुँह तक देखना दूभर था, वहाँ ठीक रास्ता किससे पूछने? संकटमें सूझ पैदा होती है। हमने देखा कि अिस रास्तेसे जाते हुअे यात्रियोंने अपने फटे हुअे जूते अिधर-अुधर फेंके हैं। अगर पाव घण्टे या आध घण्टे तक बीचमें कहीं फटे हुअे जूते न मिले, तो तुरन्त शक होता था कि ज़रूर रास्ता भूल गये! जंगलके यात्री हाथमें कुल्हाड़ी लेकर पेड़ोंके तनोंपर अुसके निशान बनाते चलते हैं, ताकि वे फिर अुसी रास्ते लौट सकें। हमारी युक्ति अिससे भी बढ़कर थी। क्योंकि हमें अुसी रास्तेका अनुसरण करना था, जिससे हमसे पहलेके यात्री गये थे। आगे चलकर जब हमारे जूते बिलकुल घिस गये, तो स्वामीने अेक दिन अपने अेक जूतेको रास्तेमें रुखसत दी और अुसकी जगह किसी दूसरे अच्छे-से लावारिस जूतेसे काम लिया। दो-चार दिनके बाद जब वह दूसरा जूता भी अपने साथीके विरहसे व्याकुल हो अुठा, तो अुसे भी हिमालयमें रहनेका पुण्य प्रदान करके स्वामीने अुसके बदलेमें रास्तेसे दूसरा अेक बेजोड़ जोड़ा अुठाकर पहन लिया। ये दोनों जूते अेक ही बनावट या अेक ही प्रान्तके तो कैसे हो सकते थे?

यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ।
समेत्य च व्यपेयातां तद्वद् भूतसमागमः॥

शामको हम छुआचट्टीमें पहुँचे। अिसी रास्तेपर, मगर याद नहीं पड़ता कि कहाँसे, स्वामी और बाबाजी आगे निकल गये थे। मैं अकेला पीछे रह गया। अँधेरा होने लगा। मैं अिस चिन्तामें था कि

अब रास्ता कैसे मिलेगा, अितनेमें कुछ यात्री पीछेसे आये। अैसे स्थानमें यों अचानक मनुष्यके दर्शन पाकर कितना आनन्द होता है, अिसकी कल्पना बिना अनुभवके सम्भव नहीं। हम अपनी तत्काल गढ़ी हुअी राष्ट्रभाषामें बातें करते जा रहे थे। अितनेमें अेकाअेक अेक आदमी चिल्ला अुठा — "अरे भालू, भालू, भालू!" मैं चकित-सा होकर यह देखने लगा कि अैसे जंगलमें रीछ कहाँसे आया? परन्तु सब लोग चिल्ला-चिल्लाकर भालूके पीछे दौड़ने लगे। फलतः मैं 'अुस भालू' के दर्शनसे वंचित ही रहा। जब हम अपनी चट्टीमें पहुँचे, तो बाबाने हमारे लिअे हल्दी डालकर गरम दूध तैयार रखा था, क्योंकि अुस दिन मेरा गला साफ नहीं था, मुझे सर्दी होनेका डर था। यात्रामें अिस तरहके सादे अुपाय काफी गुणकारी सिद्ध होते हैं।

गंगोत्रीसे केदार जानेवाले रास्तेपर वृद्ध केदार अथवा बूढ़ा केदार पड़ता है। अेक बड़ा-सा अुतार अुतरकर साँझको हम वहाँ पहुँचे। रास्ता अितना खराब था और बारिशने हमको अिस क़दर हैरान किया था कि मुक़ामपर पहुँचनेके बाद मैंने तो मन्दिर जानेसे अिन्कार कर दिया। अपने मनको यह कहकर समझा लिया कि साथियोंका भगवानके दर्शन कर लेना काफी है। यहाँकी धर्मशालामें अुत्तरकी तरफके कुछ महाराष्ट्रीय हमें मिले। अेक वृद्धा बोलनेमें बड़ी संस्कारी मालूम हुअी। अुसने हमसे कअी प्रश्न पूछे। स्वामी-जैसा जवान छोकरा माँ-बापको छोड़कर और सगे सम्बन्धियोंको भूलकर, अिस तरह जंगल-जंगल भटकता है, यह देख वृद्धाका हृदय भर आया, और अुसने मुक्त कण्ठसे रुदन किया। 'अरे, तुम लोग कैसे निष्ठुर हो! तुम्हारे माँ-बाप पर क्या गुजरती होगी? तुम्हारे भाअी-बहनको कैसे अुदासी-सी लगती होगी? अैसे जंगलोंमें अपनी कायाको निचोड़कर आखिर तुम्हें मिलेगा क्या?' अैसे अनेक सवाल अुस बेचारीने पूछे।

अपना अेक हमेशाका अनुभव भी यहीं सुना दूँ। हमारे देशमें व्यर्थकी कुतूहल वृत्ति बहुत है। चाहे पैदल चलते हों या रेलगाड़ीमें, ज्यों ही किसीका साथ हुआ, अेक-दूसरेकी सारी कुल कथा पूछे बिना हमें चैन नहीं पड़ता। और, कहनेवाला भी विस्तारपूर्वक कहते नहीं थकता, मानो जनम-जनमका कोअी साथी मिल गया हो! मेरे चश्मेसे लोगोंको सहज ही यह अनुमान होता कि मैं कोअी पढ़ा-लिखा आदमी हूँ, अिसलिअे

लोग प्राय: पूछते — "कहाँ तक पढ़े हो ?" अगर कह दूँ कि "कॉलेजकी पढ़ाअी खतम कर चुका हूँ", तो फिर क्या पूछना था ? "तुमने नौकरी क्यों नहीं की ? वकील होनेकी तैयारी क्यों नहीं की ? अंग्रेजी पढ़नेपर भी तीर्थ-यात्रामें श्रद्धा कैसे बनी रही ?" आदि-आदि सारी बातें पूछ ली जातीं । बादमें सवाल होता — "घरमें कौन-कौन है ?" भाअियोंकी बात करूँ, तो फिर हरअेक क्या करता है, अिसकी तफसील पेश करनी होती । 'ब्याह हुआ है या नहीं ?" यह तो कुतूहलका मुख्य प्रश्न होता । यदि 'नहीं' कहूँ, तो पूछते — "यह वैराग्य छुटपनसे ही था, या अिसका कोअी खास कारण हुआ ?" और यदि कहूँ कि "विवाहित हूँ," तो जरूर सवाल होता कि — "स्त्री जीवित है या नहीं ?" अगर सही अुत्तर देकर कहता हूँ कि "जीवित है", तो अनेक असुविधाजनक प्रश्नोंकी झड़ी लग जाती, और स्त्रीके जीते जी पुरुषको साधु होनेका अधिकार है या नहीं, अिसपर अेक लम्बा शास्त्रार्थ छिड़ जाता । हर रोज अिस तरहका अिक़रार करते रहनेकी मेरी तैयारी न थी । और अपने रूखे व्यवहारसे मनुष्यका दिल तोड़ देना यात्रामें अच्छा नहीं लगता । अिसलिअे मैंने हिम्मत करके झूठ बोलनेका निश्चय किया । किसीके ज्यादा कुछ पूछने से पहले ही मैं ठण्डी सॉस लेकर कह देता — "स्त्री बड़ी अच्छी थी, लेकिन वह जाती रही, अिसलिअे बच्चे भाअीको सौंपकर मैं अिस वनवास का सेवन कर रहा हूँ ।" मैं जानता हूँ कि अैसे असत्य कथनके लिअे कानूनमें कोअी सज़ा नहीं है, लेकिन धर्मशास्त्र अितनी आसानीसे माफ करेगा ही, अिसका मुझे विश्वास नहीं है ।

लोगोंकी अैसी अतिरिक्त जिज्ञासासे अकुलानेके कारण मैं स्वयं भी किसीसे अधिक प्रश्न पूछनेसे डरता हूँ । क्योंकि मैं सोचता हूँ, कहीं यह भी मेरी तरह तंग आकर झूठ बोलने लगे तो अुसका पाप मेरे मत्थे चढ़ेगा । कभी-कभी जब कोअी बहुत सारे प्रश्न पूछने लगता है, तो मैं दिक आकर कह देता हूँ — "भाअी, अब बहुत हो गया । अगर अधिक पूछोगे, तो फिर झूठा जवाब दे दूँगा ।" झूठ बोलनेकी अपेक्षा झूठ बोलनेका डर दिखाना अधिक अच्छा अुपाय है । बादमें सच्चा जवाब देनेपर भी पूछनेवालेको विश्वास तो होगा ही नहीं ।

यदि कोअी मुझसे पूछे कि मार्गमें मिलनेवाला बेचारा अेकाध यात्री निःस्वार्थ भावसे, और मानव सहज समभावसे कुछ सवाल पूछता है तो अुसमें बुराअी क्या है? तो मेरे पास अिसका कोअी जवाब नहीं। यात्रियोंके दस-पाँच सवालोंका जवाब देते देते तंग आ जानेवाला मैं आज सारी यात्राका अितना लम्बा-चौड़ा वर्णन कैसे लिखने लगा, यह प्रश्न मेरे मनमें अुठता है। लेकिन अिसका भी कोअी जवाब मेरे पास नहीं।

मालूम होता है कि साहित्य और जीवनमें कट्टर वैर है। सेकण्ड क्लासमें बैठा हुआ अंग्रेज़ अपने पास बैठे दूसरे यात्रीसे बातचीत करके अुसकी जीवन-कथा जाननेके बदले रुपया-दो-रुपया खर्च कर अेकाध अुपन्यास या कहानी पढ़नेमें समय बिताना पसन्द करता है। आखिर अुपन्यासमें भी तो कोअी काल्पनिक जीवन कथा ही होती है। यात्राका वर्णन मैं अपनी सुविधासे लिखता हूँ। पर जब कोअी सवाल पूछता है, तो मुझे बन्धनमें पड़ना होता है। और, जब अेक ही सवाल कअी लोग बार-बार पूछते हैं, तब तो धीरजका बाँध टूट जाता है। फिर भी, हमें भूलना न चाहिये कि निरक्षर समाजमें साहित्य और शिक्षाकी बहुत-सी आवश्यकता सम्भाषणसे ही पूरी होती है।

अुसी धर्मशालामें दूसरे दिन बूढ़े केदारका अेक ब्राह्मण हमसे मिलने आया। हमें पढ़ा-लिखा पाकर वह हमसे अपने लड़केकी परीक्षा लिवानेके लिअे अुसे अपने साथ ले आया। लड़का कोअी चौदह-पन्द्रह सालका था। पिताने कहा—"आजकल यह तर्क-संग्रह पढ़ रहा है।" कॉलेजमें मैंने अिण्टरमें तर्कशास्त्र पढ़ा था। अिसलिअे अिस चौदह-पन्द्रह वर्षके लड़केको तर्क सीखते देख मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने अुससे अेक सहज प्रश्न पूछा। प्रश्न सुनते ही लड़केने अुस प्रश्नसे सम्बन्ध रखनेवाला समूचा प्रकरण मुखाग्र सुना दिया। बादमें अुसी प्रकरणकी टीका भी वह चटसे बोल गया। जिस तरह कोअी शास्त्री समझाता है, अुसी तरह अुचित स्थानपर रुककर, शब्दोंका सम्बन्ध-सा बतलाते हुअे, वैसे ही लहजेमें अुसने अपनी बात कही। लेकिन बेचारा अुसमेंसे अेक 'ब्रह्माक्षर' भी समझता न था। मैंने अुस पितासे कहा—"तर्क तो बुद्धिका विषय है। व्याकरणसे भी कठिन है। व्याकरणका सम्बन्ध भाषासे है, जब कि तर्क तो

विचारशुद्धिका विषय है। अिसमें कोरे रटनसे कैसे काम चलेगा?" पिताने भोले भावसे जवाब दिया — "यदि अिस अुम्रमें रट लिया जाय, तो बड़ेपनमें तकलीफ कम होगी, और भूल होनेका अँदेशा तो ज़रा भी न रहेगा।"

शिक्षण-शास्त्रपर बहुत कुछ सोचनेपर भी यह निर्णय नहीं हो पाया कि रटनेकी प्रथा बिलकुल अुठा देने लायक है। हाँ, यह सच है कि रटन्त विद्याका दुरुपयोग बहुत होता है। लेकिन यदि अुसका अुचित रूपसे अुपयोग हो, तो अुसके कारण बुद्धिके विकासमें रुकावट नहीं होनी चाहिये। जब छापखाने नहीं थे, और सब-कुछ लिखकर अुसकी रक्षा करनेकी मेहनतसे बचनेका सवाल अेक भारी सवाल था, अुस समय यदि स्वावलम्बी मनुष्य अपने अध्ययनकी पूँजीको नित्य ताज़ा और तैयार रखनेके लिअे बहुत-कुछ कण्ठाग्र कर लेता था, तो अिसमें आश्चर्यकी कोअी बात न थी, बल्कि अिसीमें शक्तिका संग्रह था। आज भी यह लाभ छोड़ देने योग्य नहीं है।

दूसरे दिन हम अेकाध मील ही गये होंगे कि पहले दिनकी बारिशके कारण लथपथ मेरे जूतेने हड़ताल कर दी। हड़ताल ही नहीं, अिस्तीफा तक दे दिया। मैंने अपने साथ अहमदाबादी जूतोंकी अेक जोड़ी ज़्यादा रख ली थी। अब तककी यात्रामें वह मुझपर सवार होकर चलती रही। अब मैं अुसपर सवार हुआ। लेकिन वे जूते मेरे छोटे पैरोंके लिअे भी ओछे निकले। अुन्हें पहनकर चलनेमें मेरे पैरोंकी वैसी ही दुर्दशा होनी शुरू हुअी, जैसी चीन देशमें वहाँकी ललनाओंके पैरोंकी होती है। अिसलिअे मैं अुन जूतोंको पहले पानीमें अच्छी तरह भिगो लेता और फिर पहनता। भीगा हुआ चमड़ा दीन बनकर मेरे पैरका आकार ग्रहण कर लिया करता। लेकिन ज़रा सूखते ही वह दुगना वैर भँजाने लगता। सौ-सवा-सौ मील तक अैसी ही हैरानी व परेशानी रही। मेरा दुःख जानकर स्वामीने अपने पासके दक्खिणी जूते मुझे दिये। वे लाल जूते जंगलमें शोभा देते, और यात्रियोंका ध्यान आकर्षित करते थे। अुनकी सामनेवाली गोल बाजू तो ठोकरके लिअे अेक अकसीर दवा ही थी। परन्तु हिमालयके रास्तेपर यह जूता पैरमें ठहरे कैसे! अथवा अधिक ठीक भाषामें कहूँ, तब तो

कहना होगा कि जूतेमें पैर कैसे ठहरें! पैर घिसता गया, और तलुअेमें छाले पड़ गये। अेक भी जूता पहना नहीं जाता था। अगर नंगे पैर चलता, तो रास्तेपर नहा-धोकर तैयार पड़े हुअे कंकर-पत्थर बिच्छूके डंककी तरह अपना प्रताप दिखलाये विना मानते न थे।

रास्ते भर पैरके दर्दका ही ध्यान रहता था। अैसे जंगलमें आरामके लिअे कहीं ठहरनेका खयाल आता, तो कैसे आता? जैसे-तैसे आगे बढ़ते रहे। परन्तु रास्तेमें क्या-क्या देखा, अिसका कोअी होश न रहा।

३८

भोटचट्टी

अेक जगह सवेरे ज्योंही आगेके लिअे रवाना हुअे, सामने शामके मुक़ामकी चट्टी नजर आयी। मनमें शंका अुठी — अितनीसी दूरीके लिअे अेक पूरा दिन कैसे लग जायगा? मैंने कहा — "अरे, अिस सामनेवाले पहाड़के शिखरपर जो मचान-सा कुछ दिखाअी देता है, वहाँ तक पहुँचनेमें देर ही कितनी लगेगी! क्या अिस छोटी-सी चढ़ाअीसे घबराकर हम पूरा अेक दिन अिसमें बिता देंगे?" लेकिन मैं तो मनके लड्डू खा रहा था। चढ़ाअी सीधी होती, तो भी गनीमत थी। हाँफते-हाँफते वहाँ पहुँच सकते थे। लेकिन यहाँ तो सारा रास्ता आरेकी धारकी तरह चढ़ाव और अुतारसे भरा था। चढ़ते-चढ़ते दम फूलने लगता, और अुतरते-अुतरते घुटने भर आते। अिसका दुःख तो था ही। लेकिन जब जितना चढ़ते, अुतना ही फिर अुतरनेकी नौबत आती, तो अितनी सारी मेहनतके अकारथ जानेकी मानसिक वेदना यात्राके सारे मज़ेको किरकिरा कर देती थी। जहाँ तक मुझे स्मरण है, अुस दिन हमने नौ पहाड़ियाँ पादाक्रान्त कीं और अुतनी ही घाटियाँ लाँघीं। अन्त-अन्तमें तो हमें यह सन्देह-सा होने लगा कि मुकाम आयेगा भी या नहीं। बड़ी मुसीबतोंके बाद अूपर पहुँचे। चट्टीवाली झोंपड़ीकी अूँचाअी अन्दर खड़े रहने लायक़

नहीं थी। जिस तरह जानवर गुफ़ामें प्रवेश करते हैं, अुसी तरह झोंपडीके भीतर जाना होता था। फ़र्श बिलकुल भीगी हुअी थी। हमारे साथ अेक मोमकपड़ा था। मेरे पास घासकी अपनी अेक चटाअी थी। अिनवर ज्यों-त्यों करके हमने रात काटी। यहाँकी यात्रामें शाक तो आलूका ही हो सकता है। पर आज हमें वह भी न मिला। जंगलमें कुछ छोटे-छोटे ठूँठोंपर घुअियोंके डण्ठलों-जैसे डण्ठल अुग रहे थे। लेकिन अुनके छोरपर पत्ते न थे। बकरेके सींगकी तरह अुनके छोर शंखाकृति हो जाते थे। मैंने कुछ पहाड़ियोंको अिन डण्ठलोंका साग बनाकर खाते देखा था। अिसलिअे मैं आसपास घूम-घामकर अेक-दो मुट्ठी डण्ठल बीन लाया। मुझे विश्वास था कि बाबा .खुश होंगे; लेकिन अुन्होंने अुन्हें पकानेसे अिन्कार कर दिया। बाबा रामदासी सम्प्रदायके 'दास-बोध' की सिखावनके अनुसार चलनेवाले जो ठहरे! अुन्होंने कहा — "अनजाना फल या सागपात कदापि न खाना चाहिये।" और अपने अिस कथनके समर्थनमें 'दास-बोध' की अेक अुक्ति जोड़ दी। अब भला मेरा क्या चल सकता था! मैंने अुन डण्ठलोंको जमीनपर चक्राकार जमाकर अुनसे कअी तरहकी आकृतियाँ बनायीं, और अिस प्रकार जीभसे नहीं, तो आँखसे ही अपने पुरुषार्थका रस चखा।

अेक रातको हम मोटचट्टी पहुँचे। वहाँ बेहद भीड़ थी। डर था कि कहीं रातको बग़ैर आसरेके मैदानमें न सोना पड़े। लेकिन आखिर हमें जगह मिल गयी। अिसी जगह दो पहाड़ी आदमियोंकी अेक साझेकी दुकान थी। अेक साथ व्यापार करनेकी विश्वासपूर्ण अुदारता तो अुनमें थी, लेकिन अुसके लिअे आवश्यक गणितका ज्ञान न था। अिसलिअे दुकानमें अेक साथी जितना माल लाता, दूसरा भी अुतना ही ला देता और किसी ग्राहकको माल देते ही जो दाम आते, अुन्हें दोनों अुसी क्षण बराबर-बराबर बाँट लेते। और, जब तक बँटवारेका यह हिसाब न हो लेता, तब तक नये ग्राहककी सुध कोअी क्यों लेने लगा! अिन दोनोंमेंसे अेक कुछ होशियार था। हिसाबके सुभीतेके लिअे वह अपने ग्राहकसे थोड़ा ज़्यादा या कम माल लेनेको कहता, और अगर ग्राहक न मानता, तो अुसे सौदा ही न मिलता। यों, दोअी दुकानोंवाली

मालूम न होगी। यहाँ यह कह देना चाहिये कि यह फलश्रुति बहुत मोटे — चरबीवाले — लोगोंके लिअे नहीं है।

अिस तरह हिमालयकी कठिन से-कठिन चढ़ाअी चढ़ जानेपर हमें विश्वास हो गया कि यह तपस्या व्यर्थ नहीं है। अूपर पहुँचकर जो दृश्य देखा, अुसे मैं अिस जीवनमें भूल नहीं सकता। अनगिनत हिमाच्छादित शिखरोंकी अेक महान परिषद् अर्ध-वर्तुलाकार रचनामें विराजित थी, मानो वेदकालीन ऋषियोंकी कोअी महासभा बैठी हो। यहाँसे अधिक नहीं तो कम-से-कम पचास मीलका दृश्य तो दिखाअी ही देता था। और जिधर देखिये दूर-दूर तक श्वेत शिखर अनन्तताका सूचन करते नजर आते थे। यह सफेद बरफ अिस प्रकार बिछी थी, मानो त्रिकालातीत हो। बरफ ज्यों-ज्यों बासी होती जाती है, त्यों-त्यों अुसपर हाथी दाँतके-से पीलेपनकी प्रतिष्ठा जमती जाती है और जब अुसपर कहीं कहीं नयी कपूर-सी सफेद बरफ पडती है, तो वह अैसी शोभती है जैसे किसी वृद्धाकी गोदमें बैठा हुआ बालक।

मैं ज्यों-ज्यों टकटकी बाँधकर यह सारा दृश्य देखने लगा, त्यों त्यों अुसका अुन्माद मेरे मस्तिष्कमें पैठने लगा; और वह समूचा दृश्य पहाड़ियोंके हिलोरते हुअे महासागरके समान मालूम होने लगा। अगर अिस तरह की अेक भी पहाड़ी हमारे समतल प्रदेशमें आकर बसे, तो चारण और कवि बडे गर्वके साथ निरन्तर अुसकी प्रशंसा करते रहें। लेकिन अिन पहाड़ियोंको कोअी पूछता तक नहीं। जिस प्रकार हिन्दुस्तानके सन्तोंकी कोअी गिनती नहीं, अुसी प्रकार हिमालयकी अिन पहाड़ियोंकी भी कोअी गिनती नहीं।

अखण्ड हिमप्रदेशका अर्थ है, कालके परिवर्तनका पराभव। बारहों महीने यहाँकी शोभा ज्योंकी त्यों बनी रहती है। लेकिन अिस शोभामें भी प्रति क्षण लावण्य पूरनेका कार्य सवितानारायणकी किरणें करती रहती हैं। किसी पुण्य पुरुषके सहवाससे जिस तरह आसपासके सारे समाजके धर्मनिष्ठ बन जानेका भास होता है, अुसी तरह सुबहकी बालकिरणोंके फैलते ही समस्त शिखरोंके अनुरक्त होनेका दृश्य अुपस्थित हो ही जाता

है। कभी कभी सारे शिखर गेरुआ रंग धारण कर दशनामी* अखाड़ा जमाते हैं।

पवालीसे जल्दी-जल्दी अुतरकर हम त्रिजुगी नारायण पहुँचे। मानो स्वर्गसे अुतरकर मृत्युलोकमें आये। और, स्वर्गके सारे पुण्य धो डालनेके अुद्देश्यसे ही आअी हुअी वर्षाने रास्तेभर झड़ी-सी लगाकार हमारे सारे अुत्साहको धो डाला। अन्त अन्तमें तो हम रास्ता छोड़कर सीधे ही अुतरने लगे। लेकिन अिससे भी आखिर समयकी बचत तो नहीं हुअी।

त्रिजुगी नारायणमें नारायणका प्राचीन मन्दिर है। अिस मन्दिरकी अग्नि पारसियोंके आतिशबेहरामकी तरह सतजुगसे आज तक बराबर जलती आअी है। जब हिमालयकी पुत्री पार्वती देवाधिदेव महादेवसे ब्याही गयी थी, तब विवाहके होमके लिअे अिस अग्निका आधान किया गया था। तबसे आज तक यह अग्नि बिलकुल बुझी नहीं है!

यहाँ रातको अेक साधु 'मेरा सब कुछ लुट गया' कहकर जोरसे रोने और चिल्लाने लगा। सारी धर्मशाला हैरान हो अुठी। जाँच-पड़तालके बाद मालूम हुआ कि यह सब बहाना भर था। किसी दूसरे साधुको सकटमें डालनेके लिअे अुसने आधी रातकी शान्तिमें यह स्वाँग रचा था। साधु ही जो ठहरे!

त्रिजुगी नारायणसे नीचे अुतर हम केदारकी मुख्य सड़कपर आये। वहाँसे मन्दाकिनीके किनारे-किनारे चलते हुअे गौरीकुण्ड पहुँचे। यहाँ गरम पानीके झरने हैं।

जमनोत्री और बदरीनारायणके पास तो ठेठ तीर्थस्थानमें ही गरम पानीके झरने हैं, जब कि गंगोत्रीसे केदारनाथ जाते समय तीर्थस्थानके कुछ अिस ओर रास्तेपर गरम पानीके झरने पड़ते हैं। गंगोत्रीके लिअे गंगनाणी और केदारके लिअे गौरीकुण्ड। गौरीकुण्डका पानी स्वच्छ नहीं था, अिसलिअे हमने अुसमें नहानेका विचार छोड़ दिया। गौरीकुण्डसे आगेका रास्ता अपनी विकट चढ़ाअीके लिअे प्रख्यात है।

---

* संन्यासियोंमें गिरी, पुरी, भारती, सरस्वती, अरण्य, तीर्थ, आश्रम, सागर वगैरा कुल दस फिरके होते हैं, जिन्हें दशनामी कहते हैं।

वह चढ़ाओी चढ़कर हम केदारनाथके नज़दीक पहुँचे। रास्तेमें अेक मोड़को पार करते ही दूरपर केदारनाथका शिखर दिखाओी देने लगा। हरअेक यात्रीने अपनी कायाको जमीनपर फेंककर साष्टांग प्रणिपातपूर्वक जयघोष किया —'जय केदारनाथकी जय; जय केदारप्रभुकी जय'।

मन्दिरकी मूर्तिके दर्शनोंकी अपेक्षा शिखरके दर्शनोंकी अुमंग ही विशेष होती है।

४०

केदारनाथ

केदारनाथके मन्दिरकी लोकप्रियता वदरीनारायणसे कुछ कम तो है ही। अिसीलिअे यहाँका मन्दिर अधिक प्राचीन, अधिक भव्य और तपस्वी-सा मालूम होता है। मन्दिरके अग्रभागमें बना यूनानी शैलीके छप्परका त्रिकोन (जिसे अंग्रेज़ीमें 'गेबल' कहते हैं) ध्यान खींचता है। टेहरीके हेडमास्टरने कहा था कि यहाँके पण्डोंके पास शकराचार्यकी जो वंशावली है, अुससे यह सिद्ध हो सकता है कि यहाँका मन्दिर अत्यन्त प्राचीन है। लेकिन मन्दिरका स्वरूप ही अुसकी प्राचीनताका यथेष्ट प्रमाण है। फिर यहाँ यूनानी शैली कहाँसे आयी? या कि यूनानी लोगोंने अपनी शैली यहाँसे ली? अिस शैलीको अपनी तो कहा ही नहीं जा सकता। यदि यह हमारी होती तो अिसके अनेक प्राचीन नमूने अनेक रूपोंमे दिखाओी देते। काश्मीरमें पन्द्रेथान नामकी अेक जगह है। अुसकी स्थापत्य-शैलीके विषयमे अैसी ही शका अुठती है। यदि अशोकका राज-महल औरानी शैलीका था, तो केदारनाथमे यूनानी शैलीके आनेपर आश्चर्य क्यों हो? हम यह क्यों मानें कि हमारे समर्थ पूर्वज परायी कलासे घृणा करते थे? जब निर्बल लोग कहींसे कुछ अुधार लाकर पहनते हैं, तो अुससे अुनकी गरीबी ही ज़्यादा स्पष्ट होती है; लेकिन जब बलवान कहींसे कुछ अुधार लेते हैं, तो अैसा मालूम होता है मानो वे खुद ही अुपकार कर रहे हों!

केदारनाथके मन्दिरके पास कुछ कुण्डोंमें लम्बे-लम्बे लँगोटीनुमा कागज पड़े हुअे दिखाअी दिये। कुछ कागज़ कपड़ेकी चिन्दियोंपर चिपकाये हुअे थे। अुनमेंसे अेकको बाहर निकालकर देखा, तो वह किसीकी जन्मपत्री निकली। पूछताछ करनेपर पता चला कि बहुतसे वृद्ध यात्री केदारकी यात्रा करके कृतकृत्य होनेपर यहाँ अपनी जन्मपत्रीका विसर्जन कर देते हैं। जिन दर्शनोंकी उत्कण्ठा बरसोंसे लगी थी, केदारनाथके वे दर्शन हो चुके; जीवनका सारा पाप धुल गया, नवग्रहोंने अपना-अपना प्रभाव लौटा लिया, अब अिस जन्मपत्रीमें देखना क्या है, जो कागज़का यह चिथड़ा अब सहेजा जाय?

केदारप्रभुके दर्शनोंके बाद भी मनुष्यको जीवनकी अभिलाषाने छोड़ा कहाँ है कि वह यहाँ अपने जीवनका ही विसर्जन कर सकता? जब जीवनका मोह नहीं छूटता, तो जीवनकी प्रतिनिधिभूत जन्मपत्री छोड़कर ही सन्तोष माना जाता है। पर्याय धर्मकी भी बलिहारी है। अिब्राहीमसे पुत्रकी बलिके बदले अेक बकरेकी बलि लेकर ही अुसके भगवानने सन्तोष माना था। गयाजी जाकर कामक्रोधादि षड्रिपुओंका त्याग करनेके बदले कोअी न रुचनेवाला शाक या फल छोड़कर ही यात्री अपनी यात्रा सफल करते हैं। नहानेकी अिल्लतसे बचनेके लिअे पहाड़ी ब्राह्मणोंने पानीकी पाँच बूँदोंकी 'पंचस्नानी'का आविष्कार किया। और, आजकलके सभ्य राष्ट्र भी शत्रुके हाथमें न आनेपर अुसके चित्रको चौराहेपर जलाकर अपनी क्रोधवृत्तिको सन्तुष्ट करते हैं। बेचारे मनु भगवानने आरम्भमें मानव-जातिसे कह रखा है कि मुख्य धर्मके पालनकी शक्ति होते हुअे भी जो मनुष्य पर्याय धर्म अथवा आपद्धर्मसे सन्तोष मानता है, अुसे परलोकमें अुस क्रियाका फल नहीं मिलता।

हिमालयमें स्थित हमारे ये सारे तीर्थस्थान दस-दस हज़ार फुटकी अूँचाअीपर होते हुअे भी चिरहिम-प्रदेशकी तलहटीमें ही बसे हुअे हैं। अिसलिअे यहाँ जिधर देखो, अूँचे-अूँचे पहाड़ नज़र आते हैं। हम मानव अिन घाटियोंकी गोदमें अितने नन्हे दिखाअी देते हैं कि हमें बालककी अुपमा भी शोभा नहीं देती।

महाभारतमें केदारनाथका वर्णन सुन्दर ढंगसे हुआ है। जब पाण्डव वनवासमें थे, तब मध्यम पाण्डव अर्जुन अस्त्र-प्राप्तिके लिअे घूमता-भटकता अिस तरफ आया था। और जब भीम दिव्य कमल लानेके लिअे निकला, तो वह भी यहाँ तक आया था। रामदासस्वामीको हनुमानजीके दर्शन भी शायद अिसी प्रदेशमें हुअे होंगे। और जब अपनी जीवनयात्राकी समाप्तिपर पाण्डवोंने महाप्रस्थान किया था, तब भी वे यहीं आये थे। वे वृद्ध पाण्डव और अुनकी साथिन मानिनी द्रौपदी अिसी भूमिपर विषण्ण चित्तसे विचरे होंगे। यह विचार कि जिन पहाड़ोंको आज मैं देख रहा हूँ, वही पहाड़ अुन्होंने भी देखे थे,—हमें पाण्डवकालके साथ जोड़ देता है। और महाप्रस्थानका स्मरण होते ही धर्मराजके अुस अीमानदार कुत्तेका स्मरण हुअे बिना कैसे रह सकता है? अिन्द्रके स्वर्गमें आजकलके होटलोंकी तरह कुत्तोंके लिअे प्रवेश नहीं था। अिन्द्रने युधिष्ठिरसे कहा — "अिस मैले-कुचैले जानवरको निकाल दे; तुझे अब पुण्यलोक मिला है।" धर्मराज बोला — 'आप कहें, तो मैं लौट जाअूँ, लेकिन अिस अीमानदारका त्याग मुझसे न होगा। **स्वर्गसुखार्थ अकार्या न करिन सोडूनि मी सुकार्यातें** — (स्वर्गसुखके लिअे भी मैं सत्कार्य छोड़कर अकार्य नहीं करूँगा)।

जब हम केदारनाथके मन्दिरमें पहुँचे, तो वहाँ लगातार शंखध्वनि सुनकर हमारी चित्तवृत्ति सहसा अुत्तेजित हो गयी। दूसरे दिन सवेरे हमने देखा कि यहाँकी मूर्ति तो अेक बड़ा खुरदरा पाषाणमात्र है। यह अेक अलग बात है कि कअी-कअी जमानोंके यात्रियोंकी अखंड धाराने अपने स्नेहसे अिस पाषाणको चिकना बना दिया है। जो आता है वही शिवलिंगसे अपनी देह भिड़ाकर अुसे छातीसे लगाता है।

केदारप्रभुके दर्शन कर चुकनेकी मस्ती न हो, तो कोअी यात्री अेक रातके लिअे भी यहाँकी ठण्डको सह न सके।

हजारों वर्षोंसे अेकको अेक श्रद्धा ही भारतवासियोंको प्रतिवर्ष यहाँ ले आती है। भारतवर्षके अितिहास और पुराणोंमें जितने पुरुष प्रख्यात हैं, अुनमेंसे कअी अिसी जगह आकर और अिस शिवलिंगको आलिंगन देकर धन्य-धन्य हुअे होंगे। साधारण कोटिके असंख्य लोगोंने अुन

सत्रकी प्रणालिकामें अपना स्थान ग्रहण करके अपने तुच्छ जीवनको भी गौरवान्वित किया होगा। जिसने अिस स्थानको पसन्द किया और जिसने सबसे पहले अपनी भक्तिसे अिसे सींचा, अुस व्यक्तिकी विभूति कितनी बड़ी रही होगी! अपने अुस अज्ञान भक्त ऋषि और भारतीय पूर्वजको केदारनाथ प्रभुके साथ ही हमारे अखण्ड वन्दन पहुँचे।

सबेरे धूप चढनेके बाद कुछ देर करके हम मन्दाकिनीपर स्नानके लिअे गये। नदीकी धारामे पत्थर अितने अधिक थे कि नहानेकी सुविधाका विचार हो ही नहीं सकता था। और वहाँ नहानेवाले भी बहुत आये थे। अिसलिअे अेकान्तका जो आनन्द होता है, वह भी वहाँ नहीं मिला। अेकान्तकी अिच्छा जितनी स्वाभाविक है, अुतनी ही विचित्र है। अेकान्तके लिअे हम निर्जन स्थान खोजते है। मनमें कहते हैं, कैसा निर्जन स्थान है! अुस समय हमें यह खयाल नहीं रहता कि हमारी अुपस्थितिके कारण ही अुस स्थानकी निर्जनता मिट गयी है। क्या यह अिच्छा करना अुचित है, धर्म्य है कि अमुक स्थानमे अकेला मैं ही रहूँ, और दूसरा कोअी न रहे?

तिसपर भी धर्मात्मा ही खास तौरपर निर्जन स्थानोंकी खोज करते हैं। नहीं; सिर्फ धर्मात्मा ही नहीं। अेक साधुने कहा था — "रोगी, भोगी और योगी तीनों शान्त, निर्जन स्थान खोजते हैं।" तो भी तीनोंकी आतुरतामें कितना अन्तर होता है?

हिमालयमें अितनी दूर आनेपर जिस क्षण जहाँ अेकान्तकी अिच्छा हो, अुसी वक्त चारों तरफ जन-समर्द बना रहे, तो वह कितना बुरा मालूम होता है?

अब तो सिर्फ बदरीनारायणकी ही अेक यात्रा और रह गयी। यहाँसे बदरीनारायण बहुत दूर नहीं है। केदार-बदरीके दरमियान केवल अेक ही बड़ा पहाड़ खड़ा है। पहाड़ लाँघनेकी सुविधा हो, तो दोनोंके बीच पाँच मीलका भी अन्तर नहीं है। लेकिन अिस अूँचे पहाड़को लाँघना ही मुश्किल है। वह निरन्तर बरफसे ढँका रहता है। फलतः लोगोंको आनेके रास्तेसे वापस जाकर और बड़ा चक्कर खाकर, कअी पहाड़ बचाकर नौ दिनकी यात्राके बाद बदरीनारायण पहुँचना पड़ता है। अिसपरसे यात्रियोंमें कहावत पड़ गयी है, नौ दिन चले ढाअी कोस।

अेक दन्तकथाके अनुसार प्राचीन कालमें यह पहाड़ बीचमें नहीं था। अेक ही पुजारी दोनों जगह अेक ही आरतीसे अिकट्ठी पूजा कर सकता था। यह बात चाहे जितनी रोचक हो, तो भी मानने लायक नहीं है। दन्तकथाओंके मूलमें कभी-कभी अैतिहासिक तत्त्व होता है, लेकिन कभी-कभी केवल लोकमानसकी काव्य-कल्पना ही होती है।

'ढाअी कोसवाली' अिस बातको सुननेके बाद मनमें विचार आता है कि आधुनिक मनुष्यको नौ दिनका यह चक्कर बचानेके लिअे खंडाला घाटकी तरह सुरंगे ही बनानेकी सूझेगी।

कहते हैं, अिटली या स्विट्ज़रलैंडमें अिस तरहकी सुरगें बनी है। जब सुरंगका रास्ता बनेगा, तो बिजलीकी बत्तियाँ भी आ ही जायँगी। बिजलीके पीछे-पीछे होटल भी आवेंगे, और फिर अुनके साथ धर्म विरोधी असंख्य चीजें आ सकती हैं। काश्मीरका तो यही हाल हो रहा है। क्या अेक हिमालयको भी हम आधुनिकताके हमलेसे नहीं बचा सकते?

४१
अुखीमठ और तुंगनाथ

सुमेरूके शिखर और केदारके मन्दिरको प्रणाम करके हम लौट पडे। नालाचट्टीतक सीधे रास्ते जाकर वहाँसे हमने अुखीमठका रास्ता पकड़ा। यह प्रदेश मुझे विशेष आकर्षक मालूम हुआ, क्योंकि यहाँकी कुछ पहाड़ियाँ महाराष्ट्रकी पहाडियों-जैसी दिखाअी दीं।

जिस तरह आजकल दिल्लीके राजपुरुष गर्मियोंमें शिमला जाते हैं, अुसी तरह जाड़ोंमें केदारनाथ प्रभु नीचे अुतरकर अुखीमठ आते है। जाड़ोंमें केदारनाथकी सारी घाटी बरफसे ढॅक जाती है। ग्रीष्म ऋतु आनेपर पुजारी फावडे कुदालियाँ लेकर अुखीमठसे केदार जाते हैं, और बरफ काट-काटकर वहाँके रास्तेको साफ कर देते है। पुजारी कहते है कि शीतकालके आरम्भमें मन्दिर बन्द करते समय वे मन्दिरमें जो दिया जलता छोड़ आते हैं, वही गर्मियों तक जलता रहता है। अिस तरहकी बातोंको

हम सच न मानें, तो भी अिनका जिक्र किये बिना रहा नहीं जाता। मनुष्यको क्या-क्या प्रिय है, और अुसकी कल्पनायें कहाँ-कहाँ तक दौड़ती हैं, सो जाननेभरके लिअे अिन वार्तोंका अुपयोग होता है। कअी बार अिस तरहकी कल्पनाओंमें ही आगेके बहुतसे आविष्कारोंकी जड़ होती है। अिसलिअे मनुष्यकी मुरादके नाते अैसी मान्यताओंका लोप कभी होने ही न देना चाहिअे।

अुखीमठमें अेक बड़ा बाजार है। याद नहीं क्यों वहाँ हमने चार या आठ आने देकर अेक नारियल खरीदा था। यहाँके बाजारमें कअी नारियल दुकानसे मन्दिरमें और मन्दिरसे दुकानमें लगातार चक्कर काटा करते हैं। बाज़ारमें सिक्कोंके अैसे ही चक्करको बचानेके लिअे जिस तरह कागजके नोट चलाये जाते हैं, अुसी तरह यहाँ मन्दिरमे भी कागज़के नारियल चलाये जायँ, तो क्या बुरा है? नारियलकी तरह वे भीतरसे सड़ेंगे तो नहीं!

जहाँ तक मुझे याद है, बंगाली साधु माधवानन्द अुखीमठ तक ही हमारे साथ था। यहाँ अुसे भंग पिलानेवाले कोअी दूसरे साधु मिल गये, अिसीलिअे वह गहरी छानकर अुसके नशेमे चूर हमसे मिलने आया था। अुसकी मुद्रा प्रसन्न नहीं मालूम होती थी। आँखे अैसी दिखाअी देती थीं, मानो पित्तप्रकोप हो गया हो। अब हम अपनी यात्राके राजमार्गपर आ गये थे। गंगोत्री-जमनोत्रीके रास्तेपर सुविधायें कम और जोखिम ज़्यादा है। वहाँ माधवानन्दको हमारे संगकी बहुत जरूरत थी। अब वह नहीं रही। और फिर हमारे साथ पच्चीस-पच्चीस, तीस-तीस मील रोज चलकर वह थक गया था। अब अुससे और अधिक चला नहीं जा सकता था। अुसने कहा—"अब मैं थोड़ा आराम करूँगा। अगर आराम न किया, तो डर है कि यहीं ढेर हो जाअूँ।" हमने सन्तोषपूर्वक अुसे बिदा दी। यहाँकी धर्मशालामें अेक डाक्टरने हमें कुछ पत्ते दिखलाये। महाराष्ट्रमें जिसे 'घोड़ेके पैर' कहते है, अुसी किस्मकी अेक बेलके वे सूखे पत्ते थे। अुन्हें हाथमें लेते ही अुनकी बुकनी बन जाती थी। लेकिन अुन्हींको जब पानीमें डाला गया, तो थोड़े ही वक़्तमें वे फिर ताज़ा पत्तोंकी तरह हरे हो गये। डाक्टरने हमसे आग्रहपूर्वक कहा कि वहाँसे

थोड़ी दूरपर अेक साधु रहता है। जो भी कोअी अुससे मिलने जाता है, अुसे वह पत्थर मारता है, और गालियाँ देता है। लेकिन दर्शन करके आनेवालेको चमत्कार दिखे बिना नहीं रहता। कोअी न कोअी लाभ तो होता ही है। हमें न तो गालियोंकी चाह थी, और न पत्थरोंकी, और न चमत्कार और लाभकी लालसा थी। अिसलिअे हमने दर्शनोंकी अिच्छा नहीं की। हम आगे बढ़ गये।

अब हमें तुंगनाथकी चढ़ाअी चढ़नी थी। अब तक हम कअी चढ़ाअियाँ चढ़ चुके थे। अिसलिअे तुंगनाथकी चढाअीके लिअे हम तैयार न हों, सो बात नहीं। परन्तु अुस दिन हवामें जो कुहरा छाया हुआ था, अुसके लिअे हम सचमुच तैयार न थे। सवेरे हम बहुत बढ़िया चले, पर मार्गमें अेक भी बढ़िया चीज़ देखनेको न मिली। क्षीरसागरमें मछलियोंकी तरह हम तुंगनाथकी चढ़ाअी चढ रहे थे। बीच-बीचमें रुककर हम अपने चारों तरफ देखते कि कहींसे भाग्य खुलते हैं? ठेठ चोटीपर पहुँचनेके बाद बादल कुछ छितराये। अूपरका भाग स्पष्ट हुआ। परन्तु शिखरके आसपास, हमारे पैरोंके नीचे, अब भी दूर दूरतक बादल घिरे थे। बादलोंसे भी अूपर अुठकर नीचेके बादलोंपर नजर डालनेमें जो आनन्द आता है, और जैसे गौरवका अनुभव होता है, कमसे कम अुसीके लिअे हरअेकको यहाँ आना चाहिअे। सिंहगढ, दार्जिलिंग, आबू आदि स्थानोंपर अिस तरहकी शोभा कअी लोगोंने देखी होगी। अुस वक्त अैसा जान पड़ता है, मानो हम अिस पृथ्वीके नहीं, बल्कि बादलोंपर विराजमान गंधर्व नगरीके निवासी हैं, और हमेशा अिसी तरह अूपर ही रहेंगे। अेकबार अिसी तरहकी अेक दूसरी यात्रामें मैं दोपहरको अेक पहाड़ लाँघ रहा था। वहाँ कुहरेके कारण पैरोंके नीचे, दूर तक अेक विशाल अिन्द्रधनुष्य फैला हुआ दिखाअी दिया। अैसा लगा मानो अेक रंगीन किनारवाला भव्य आसन बिछा है, और मैं अुसपर बैठा हूँ। अैसे स्थानपर सेंतमेंतमें अितना वैभव अनुभव करके मनुष्यका दिमाग हमेशाके लिअे फिर जाय, तो ताज्जुब नहीं। और यह भी नहीं कि अैसे अुदाहरण पाये न जाते हों। जिसका सिर थोड़ी देरके लिअे फिरता है, वह कवि कहलाता है। मगर जिसका सिर सदाके लिअे फिर जाता है, अुसे

पागल या दीवाना कहते हैं। ज्योंही हम तुंगनाथसे नीचे अुतरे, हमारा वैरी कुहरा भी अूपरसे तितर-बितर हो गया। हम जब अूपर थे तभी वह तशरीफ ले जाता, तो क्या हम अुसे शाप दे देते? नीचेकी मगलचट्टीसे तुंगनाथका शिखर बहुत भव्य दिखाओी दिया। हम कितनी भव्य, रमणीय अूँचाओी तक पहुँच गये थे, अिसकी वास्तविक कल्पना हमें नीचे अुतरने पर ही हो सकी! वहाँसे हम आगे बढ़े। स्वामी हमारे आगे थे। बाबा और मैं बहुत पीछे रह गये। साँझ हो गयी, अँधेरा होने आया, और वर्षाने भी जी भरकर अपना प्रसाद चखाया। अिसीलिअे मैं रुक गया। स्वामीका पता लगाया। वे आगे चले गये थे। मैंने बाबाके आनेकी बाट देखी और हमने अेक आदमीके साथ ओढ़ने-बिछानेका और दूसरा कुछ सामान आगे गोपेश्वर भेज दिया। हम वहीं रह गये। हमारी सारी यात्रामें यही अेक रात अैसी थी, जब हम तीनोंका संग छूटा था।

जब दूसरे दिन सवेरे हम गोपेश्वर पहुँचे, तो देखा कि स्वामी वहाँके वृद्ध महन्तसे बातें कर रहे थे। ये महन्त असलमें दक्षिणी थे, लेकिन यहाँ रहते रहते पहाड़ी बन गये थे। टूटी-फूटी मराठी बोल लेते थे। 'रानांत'* की जगह 'राणात' कहते थे। अुन्होंने हमारी आवभगत की। स्वामीने अुनके साथकी अपनी बातचीतका सार हमें कह सुनाया। मालूम हुआ कि भगिनी निवेदिता यहाँ आयी थीं। बादमें हम अुनसे विदा होकर लालसाँगाकी तरफ गये। वहाँसे आगे बदरीनारायणका रास्ता पड़ता है।

लालसाँगा यानी लाल पुल। अिस गाँवका असल नाम चमोली है। परन्तु यात्रियोंके लिअे यहाँ अलकनन्दापर जो पुल बना है, अुसके रंगपरसे अिस स्थानका नाम लालसाँगा पड़ गया है। यहाँ बाज़ार, तारघर, वगैरा सुविधाओंके सिवा, अेक शफाखाना (अस्पताल) भी है। लालसाँगासे आगेकी यात्रामें ज्यादा मजा नहीं आता। यात्रियोंका अैसा ताँता देखनेको मिलता है, मानो चींटियोंकी कतार चली हो। रास्तेमें गरुड़चट्टी पड़ी। वहाँ दोपहरमें अच्छी गहरी नींद आयी। अिसीलिअे

* रानांत = जंगलमें।

अुस चट्टीका नाम याद रह गया है। पिछली रातको हमें मुश्किलसे थोड़ी नींद मिली थी। यदि दोपहरमें अिस तरह सोने नहीं पाते, तो शायद बीमार पड़ जाते। याद पड़ता है कि यहीं हमने बिच्छू नामका भयानक पौदा देखा था। पिछले दिनों हम अितने चल चुके थे कि अब थकावट मालूम होने लगी थी। शामको हम जोशीमठ पहुँचे। जिस प्रकार केदारप्रभुकी शीतकालीन राजधानी है अुखीमठ, अुसी प्रकार बदरीनारायणकी है जोशीमठ।

४२

बदरीधाम

अपनी दिग्विजयके बाद श्री आदिशंकराचार्यने हिन्दूधर्मके लिअे अेक सुन्दर व्यवस्था बना दी। जैसे अीसाअी धर्मके लिअे सन्त पॉल हैं, अुसी तरह बड़े पैमानेपर हिन्दू धर्मके लिअे भी वेदव्यास और भगवान शंकर हैं। अिन विभूतियोंके हृदयोंमें बड़े-बड़े खण्ड (महाद्वीप) समा सकते हैं। और अिनकी दृष्टि तो सुदूर सदियों तक पहुँचती है। विश्वास, वाग्वैभव और व्यवस्था ही मानो अिनका शरीर है। शंकराचार्यने अपनी व्यवस्थाको कायम और सजीव बनाये रखनेके लिअे भारतवर्षके चार सिरोंपर चार मठ कायम किये — द्वारिका, शृंगेरी, पुरी, और ज्योतिर्मठ (जोशीमठ)। अिस धर्मसम्राट्ने अिन चारों जगहोंमें अपने ब्रह्मचारी नियुक्त किये — मानो अशोकके राजुक (वाअिसराय) हों।

अुत्तरमें ज्योतिर्मठ स्थापित करके वहाँ दक्षिणकी तरफ़के कट्टर धर्मनिष्ठ ब्रह्मचारियोंको बुलाया और नियुक्त किया।

हिन्दुस्तानसे बौद्धधर्म अुत्तरकी ओर तिब्बत और चीनकी तरफ गया। अुसके मंगोलियन संस्कार फिर अिस देशमें न आने पावें, कहा जाता है कि अिसी अेक अुद्देश्यसे यह अेक नाका यहाँ क़ायम किया गया था। प्राचीन संस्कृतिमें व्यापारकी दृष्टि, सैनिक दृष्टि और धर्मकी दृष्टि तीनोंको अेकत्र करके थाने क़ायम किये जाते थे।

जाड़ोंमें प्रभु बदरीनारायण स्वयं जोशीमठ आकर रहते हैं। अिसलिअे यहाँ भी पण्डों और यात्रियोंकी खासी भीड रहती है। यहाँके कारीगर ताँबे और चाँदीकी चद्दरोंपर बदरीनारायणका चित्र अुभारकर बेचते हैं; वे कागजपर छपी तसवीरें भी रखते हैं। यहाँका बाजार अिस प्रदेशका अेक बड़ा बाज़ार कहा जा सकता है।

जोशीमठमें हमें अेक मद्रासी ब्रह्मचारी मिला। वह अंग्रेजीमें बोल सकता था। अुससे जोशीमठके ब्रह्मचारी, महन्त और अुनके वंशविस्तारकी काफी जानकारी हमें मिली। यात्रियोंकी अन्धी दान वृत्तिमेंसे अिन महन्तोंको मुफ़्तकी कितनी आमदनी होती है और अुसका किस तरह विनियोग होता है, अिसके विषयमें भी अुसने हमें बहुत कुछ बतलाया। अुसकी बातोंसे हमें पता चला कि वह बहुत-सी अन्दरकी बातें भी जानता था। हिन्दू समाजको साधारण समझदारी सिखाने और कअी तरहकी गंदगी दूर करनेके लिअे अब किसी जबरदस्त शिक्षा-विशारद शंकराचार्यका अवतीर्ण होना ज़रूरी है। जोशीमठके मन्दिरके चारों कोनोंपर चार छोटे-छोटे मन्दिर है। अिन मन्दिरोंकी मूर्तियाँ प्रमाणशुद्ध और रुपहली लगीं। अिनमेंसे अेक मन्दिरमें शंकर और पार्वती भीलके वेशमें खड़े हैं। यह मूर्ति देखकर मैं तो मुग्ध हो गया।

जोशीमठसे अुतरकर हम अलकनन्दा और धवलगंगाके संगमपर विष्णुप्रयाग पहुँचे। जब पहाड़ी नदियाँ परस्पर मिलती हैं, तो मतवाली हो अुठती हैं। वहाँ देर तक बैठे रहना भी खतरनाक होता है। आश्चर्य नहीं कि अुस मस्तीमें गोता लगाकर आदमी बह जाय। वहाँसे आगेकी दो-तीन चट्टियाँ पार करके हम हनुमान चट्टी पहुँचे। वहाँ प्राचीन कालमें अेक बड़ा भारी याग (यज्ञ) हुआ था। परन्तु वहाँ बिना रुके हम आगे बदरीनारायणकी तरफ चले। रास्तेमे अेक नदी जमकर बरफ हो गयी थी। अुसे पार करना आसान न था। पैरों तलेकी बरफ ठोस है या तरल, सो जाननेके लिअे हम अपनी लकड़ीकी नोक बरफपर बड़े ज़ोरसे मारते। अक्सर नदीकी अूपरी सतह तो जम जाती है, पर भीतर ठण्डा पानी बहता रहता है। अगर अूपरकी तह टूट जाय और आदमी भीतर गिर पड़े, तो वह ठण्डे पानीके प्रवाहरूपी अुस तलघरमें बहे बिना

1388

न रहे ! फिर अुसके लिअे बचनेका कोअी अुपाय ही नहीं । अूपरकी पहाड़ीपरसे लुढ़क-लुढ़क कर कअी पत्थर बर्फके पटपर आ गिरे थे। पत्थरोंके भारसे बरफ पिघलती तथा पतली होती है । फिर अेक अैसा क्षण आता है, जब बरफसे पत्थरका बोझ नहीं सहा जाता । डुब्ब ! और बस, समझिये कि पत्थरने जल-समाधि ले ली। अिस तरहकी कुछ जल-समाधियाँ देखकर हम चेत गये थे। कहते है कि अेक बार कोअी धनवान मनुष्य चार कहारोंकी झंपानमें बैठकर जा रहा था। अितनेमें अेकाअेक नीचेकी बरफ़ पिघल गयी बस, वह झंपान और वे पाँचों प्राणी वहीं प्रवाहमें गिरकर ठण्डे हो गये । अुनके लिअे ठण्ढी सफेद कब्र तो तैयार ही थी ।

मुझे कुछ कुछ याद पड़ता है कि या तो केदारके रास्ते या बदरी-नारायणके रास्तेपर हमें नदीके किनारे चलते-चलते कहींपर बरफका अेक बड़ा-सा प्राकृतिक रूपसे बना हुआ पुल मिला था। नीचेकी तरफ़ झूलते पुलकी तरह बरफ़की अेक गोल कमान बन गअी थी ।

* * *

दर्शन हुअे ! आखिर बदरीनारायणके शिखरके दर्शन हुअे । आनन्द ! आनन्द ! ‘उरसा, शिरसा, दृष्टया, वचसा, मनसा, तथा पद्भ्यां, कराभ्यां, जानुभ्यां’ हमने साष्टांग प्रणिपात किया! मनुष्य कितना ही क्यों न थका हो, क्या वह अिस आखिरी फासलेको पार करनेमें देर लगा सकता है ! हम तो हवाअी गेंदकी तरह हलके होकर दौड़ने लगे। भीगे कपड़ोंसे पुरीमें प्रवेश किया । अुतारेपर जाकर कपड़े सुखाये और साँझकी आरती तथा राजभोग देखने जा पहुँचे । बाबा लोगोंका घंटी बजानेका अपना अेक खास ढंग होता है। कमर कसकस कर दो आदमी घंटी बजाते है, और असमान ताल बराबर साधते है । यह ताल अिन्हें कैसे सूझा, अिसपर आश्चर्य हुअे बिना नहीं रहता । घण्टानादके आमन्त्रणके अुत्तरमें हम मन्दिर पहुँचे । लोगोंकी भीड़ अितनी थी, मानों छत्तेपर मधुमक्खियाँ हों ! अुस वक्त मनमें क्या क्या आया, कौन-कौनसे भाव अुमड़े, अपने शब्दोंमें अिसकी कल्पना देनेकी अपेक्षा अुसे स्वामी आनन्दकी भाषामें यहाँ टाँक दूँ, तो मनको कुछ सन्तोष होगा—

"हम अुठकर अुतावलीसे मन्दिरमें गये। साक्षात् नारायणके द्वार पर — भगवानके चरणोंमें — लोगोंकी भीडका पूछना ही क्या था? सारी बदरीपुरी वहीं अुमड़कर आ गअी थी। अैसा अभागा कौन हो सकता है, जो पुरीमें रहकर भी राजभोगके दर्शन न करे! हमने ज्यों त्यों करके दर्शन किये। मन्दिरके भीतर दूरपर मूर्तिके पास अनेक दीपोंकी दीप-माला जगमगा रही थी। दर्शन करके हम गद्‌गद हुअे। कृतकृत्य हुअे। सगेसम्बन्धी, स्नेही, आत्मीय, सबका यहाँ स्मरण हुआ। कअी दिनोंसे जिसकी धुन लागी हुअी थी, जिसके लिअे महीनों जंगलों और पहाड़ोंमें मारे-मारे फिरना हमने खुशीसे कबूल किया था, अुसे अन्तमें प्राप्त हुआ देख आँखोंसे आनन्दाश्रु बहने लगे, जीवन सफल हुआ। अुस समय धन्यताका अनुभव कर नारायणके द्वारपर कअी लोग कृतकृत्य और पावन होकर, 'तेरे चरणोंमें अेक बार सदाके लिअे स्थान दे दे, नारायण', 'अिसी क्षण तेरे दरवाज़ेपर आश्रय दे', 'अब तेरी शरणमें आनेके बाद, फिर अुस असार जगत्‌मे मत भेज, प्रभो', 'मुझे अुबार ले', 'अिस जगत्‌मेंसे निकालकर अपने चरणोंके पास अक्षय्य शान्ति दे', 'धन्य हो गया हूँ नारायण, अब मृत्यु दे', आदि अनेक प्रकारसे प्रार्थना कर भगवानको मना रहे थे! नारायणके द्वारपर, साक्षात् नारायणके सम्मुख अुपस्थित होनेपर भी किस अभागे प्राणीके मनमें अिस असार ससारकी भ्रान्ति रह सकती है, या अुसके लिअे यत्किंचित् भी मोह रह सकता है!

"मन्दिरके बाहर नारायणका प्रसाद (भात) बँट रहा था। मगर वहाँ अितनी करारी भीड़ थी कि लाख कोशिश करनेपर भी हम भीतर नहीं घुस पाये। आखिर अेक यात्रीसे थोडासा प्रसाद माँगकर, बड़े प्रेमसे कृतकृत्य होकर खाया। यहाँ नारायणके द्वारपर राजा-रक अेक हैं, गरीब-अमीर अेक हैं, ब्राह्मण शूद्र अेक हैं, पापी-पुण्यवान् अेक हैं, सुखी-दु:खी अेक हैं, रोगी-कोढी, ढेढ़-चमार, शूद्र-अतिशूद्र, चांडाल पतित, अूँच-नीच, काले-गोरे, वैष्णव-शैव, सन्यासी-त्यागी, शाक्त-वैरागी, छोटे-बड़े, बालक-स्त्री, सभी अेक हैं। यहाँ न भेद है, न जाति है, न संप्रदाय या पथ है, न तेरा-मेरा है, यहाँ न द्वैत है, न द्वेष है, न वाद है, न टंटा है; यहाँ न सनातनी है, न समाजी है. यहाँ न सुधारक है; न

अुद्धारक है, न पूर्व है, न पश्चिम है; यहाँ सभी अेक है, क्योंकि आज सारे भाअीवन्द फिर अेक ही पितासे मिलनेके लिअे विदेशसे लौटे हैं। यहाँ किसीका दरजा बड़ा नहीं। कोअी भी तिनकेके समान नहीं, कोअी तुच्छ नहीं। अहंकारसे नाहक फूले हुअे लोगोंका मद यहाँ नारायणके दरवाज़े पर अुतर जाता है। जो छोटे हैं, अुन्हें नारायण अपने हाथसे अूपर अुठा-कर, पावन करके, सबकी पंगतमें बैठा देंगे। यहाँ अितना छोटा या अितना पापी भी कोअी नहीं, जिसपर नारायणकी दृष्टि न पड़े —

'अिक नदिया अिक नार कहावै मैलो नीर भर्यो
जब मिल गये तब अेक बरन भये गंगा नाम पर्यो'।

"अिस पतित-पावनके द्वारपर कौन पावन न होगा? साक्षात् नारायणकी पावन दृष्टि पड़नेके बाद भी नीच-अूँच, अच्छा-बुरा, पापी-पुण्यवानके क्षुद्र भेदभावका मैल किस तरह रहेगा? और यह अभेद, यह अद्वैत, यह प्रेम, यह अेकात्मभाव, यह बंधुभाव अिस समय यहाँ बड़े-बड़े ज्ञानियोंसे लेकर ठेठ गँवार तक सबकी समझमें आता है। अमीरसे लेकर निपट गरीब, अपढ़, अनाड़ी यात्री तक, सब बिना किसी संकोचके, बड़े प्रेमसे, अेक दूसरेसे नारायणका प्रसाद माँगकर और आपसमें बाँट कर खाते है, सो यों ही नहीं। अिसलिअे अेक बार बोलो "श्री बदरी विशालकी जय!" "जय श्री बदरी विशालकी जय!"

२

आज मुझे अन्तिम श्राद्ध करना था। यदि सिद्धपुर और गयामें माता-पिताका श्राद्ध किया जाय, तो माता-पिता तृप्त हो जाते हैं। लेकिन अगर मनुष्य बदरीनारायणमे ब्रह्मकपालकी शिलापर बैठकर श्राद्ध करे, तो अुसके सभी पूर्वज अेक साथ मोक्ष पाते हैं। शास्त्रोंमें यह स्पष्ट लिखा है कि यहाँ श्राद्ध करनेके अुपरान्त यदि मनुष्य फिर श्राद्ध करे, तो मोक्षको गये हुअे पूर्वज नरकमें पड़ते हैं। यहाँ श्राद्ध करनेसे मनुष्य पितरोंके ऋणसे सदाके लिअे मुक्त होता है। अनेक यात्रायें करता-करता मनुष्य हिमालयकी यह आखिरी यात्रा करता है, अिसलिअे अुसके सारे अैहिक बन्धन छूट जाने चाहिअें। फिर अपने ही कुटुंबसे चिपटे रहनेकी संकीर्णता अुसमें रहनी ही न चाहिअे। जहाँ मानसिक आसक्ति छूटी कि धार्मिक

ऋण भी चुक ही गया। श्राद्ध करना होता है, सो अपनी कोमल और प्रेमल स्मृतिमें रहनेवाले पूर्वजोंका। हृदयकी ग्रंथि खुलते ही अपने माने हुअे सगेसम्बन्धियोंका भी बन्धन टूट जाता है। फिर यह लगावट दुबारा नहीं लगायी जाती। जो सबका हो गया, अुसके लिअे अपने और परायेका भेद क्यों रहे? भगवानके चरणोंमें आकर भी यदि मनुष्य अैसी सकीर्णता रखे, तो समझिये कि वह वैसा ही बना है। वह और अुसकी स्मृति दोनों नरकको न जावें तो और क्या हो? नरक यानी संकीर्णता। तुकारामने कहा है—

> 'आधीं होता मुक्त। स्वयें झाला बद्ध।
> घेअुनीयां छन्द। माझें माझें।'*

सबेरे अुठकर, नहा-धोकर, लोटेमें चावल लेकर मैं मन्दिर पहुँचा। बदरीनारायणमें नहानेका कष्ट नहीं है। गरम पानीके बड़े-बड़े कुण्ड हैं। लोग जितने चाहें, नहायें, और जितना नहाना हो, नहायें। लोटा और चावल पुजारीके हवाले कर दिये। अुसने कुण्डके चूल्हेपर दूसरे असख्य लोटोंके साथ मेरा लोटा भी चढा दिया। दर्शन करके लौटा, तब तक लोटेमें चावल चुड़कर भात तैयार हो गया था। बदरीनारायणको अुसका भोग लगानेके बाद, लोटा मुझे वापस मिला। अुसे लेकर मैं अपने पुरोहितके साथ ब्रह्मकपालकी विशाल शिलापर पहुँचा और मैंने श्राद्ध किया। यहाँके पण्डोंकी परेशानीको मैं खूब जानता था। अेक संस्कृतको छोड़कर और किसीसे अुनका वैर न था। अिसलिअे मैंने खुद ही श्राद्धके मंत्र याद कर लिअे थे। मृत पूर्वजोंके नाम भी अुनके सगे-सम्बन्धियों सहित कण्ठ कर लिये थे। मैंने सबके नामसे यहाँ श्राद्ध किया, और अेक कुल-धर्मकी सांगता सिद्ध कर चुकनेका सन्तोष लेकर लौटा। कितनी कृतार्थता थी! जैसे मैं अिस दुनियामें था ही नहीं! वहाँसे सीधा वापस मन्दिरमें आया। घर जाकर भोजन करनेसे पहले मुझे फिर अेक बार नारायणके दर्शन करने थे। दरवाजेपर भीड़ बढती जाती थी। अितने लोग अितनी भीड़ लगाकर खड़े हों, अेक-दूसरेका धक्का अेक-दूसरेको लगता

* अर्थ—पहले मुक्त था। फिर 'मेरे,' 'मेरे'की धुनमें पड़कर स्वतः बद्ध हुआ।

हो, और फिर भी किसीका मिज़ाज बिगड़ता हो, सो बात न थी। सभी भक्तिके अुन्मादमें चूर थे। हरअेक आँखसे अेक-दूसरेके प्रति सद्भाव टपकता था।

अुस भीड़में अेक मारवाड़ी युवती अेक छोटी-सी थालीमें बादाम, शकर, किसमिस, चन्दन, कपूर आदि अनेक पूजाद्रव्य लिये, प्रवेश खोजती थी। अितनेमें किसीका धक्का लगा। हाथमेंसे थाली गिर पड़ी। थालीके गिरते ही अेक क्षणके लिअे वह सन्न हो गअी, मानो छातीमे तीर भोंक दिया हो! दूसरे ही क्षण वह रो पड़ी। और क्यों न रोती? क्या अुसने शकरका अेक अेक दाना बीन-बीन कर पसद नहीं किया था? अेक अेक बादाम अच्छा पुष्ट देखकर लिया नहीं था? अपने हाथों चन्दन घिस-घिस कर अुसका लेप नहीं बनाया था? "यह सब बदरी-नारायणको चढ़ाअूँगी" अिस सकल्पके साथ सारी सामग्री अेकत्र करके और अुसे अपने प्राणोंकी तरह सहेजकर वह यहाँ तक लायी थी। अुस पूजाद्रव्यके पीछे कितना ध्यान, कितनी भक्ति, कितना आनन्द सन्निहित था! धन्यताके क्षणमें ही वह हाथसे गिरकर भगवानके द्वार पर बिखर जाय, अिससे बडी विपत्ति और क्या हो सकती है? कितना अुसका दुःख था! कैसा विलाप! मेरा हृदय रो पड़ा। मैं पास गया। अुस बालिकाकी भक्तिके आगे मेरा माथा झुका। मैंने कहा—

"बहन, यह वृथा शोक क्यों करती हो? क्या अिसलिअे कि पुजारीके हाथों यह भोग भीतर नहीं पहुँच पाया? तुम भूल करती हो। यहाँका अेक अेक पत्थर पवित्र है, पावन है। और भगवानके द्वारपर जड़े ये फर्शके पत्थर! कौन जानता है कितने सत-महंत, साधु-सत्पुरुषोंके चरण स्पर्शसे ये सब पुनीत हुअे होंगे! भगवान तुम्हारे भोगको पुजारीके हाथों स्वीकारना नहीं चाहते थे। अुन्हें वह तुम्हारे हाथों ही लेना था। अिस-लिअे अैसा हुआ। तुम्हें अपनी भक्तिपर विश्वास होना चाहिअे।" अैसी कअी बातें मैंने अुससे कहीं। बाला श्रद्धाकी दृष्टिसे मेरी तरफ़ देखती ही रही।

बिखरे हुअे बादामों और शकरके दानोंको बटोरकर अुन्हें भगवानके प्रसादकी तरह अुसे देते हुअे मैंने कहा—"जाओ बहन, अब सुखसे

घर जाओ। भगवानकी कृपाके विषयमें मनमें शंका न रखना। ” भोली बाला! मैंने जो कुछ कहा, सो सब अुसने सुना, श्रद्धापूर्वक माना। आँसु पोंछ लिये, और ‘जय बदरी विशालकी जय’, कहकर वहाँसे चली गअी। वह गअी, लेकिन मुझे भक्तिकी दीक्षा देती गअी। नारी-हृदयमें कितनी श्रद्धा होती है, कितनी भक्ति होती है, कितनी अुत्कटता होती है, अिसका मुझे दर्शन कराती गअी। मुझे बदरीनारायणके दर्शन मूर्तिकी अपेक्षा अिस भोली मारवाड़ी बालमें विशेष हुअे।

४३

वापसीमें

बदरीनारायणसे कुछ यात्री वसुधारा जाते हैं। वहाँ अूपरसे अेक झरना गिरता है। कहा जाता है कि जो पुण्यवान होते हैं, अुन्हींके माथेपर अुसकी धारा गिरती है। यदि कोअी पापी हो, तो धारा अेक तरफ गिरेगी, अुसके माथेपर नहीं। वसुधारा जानेका विचार हमने छोड़ दिया, क्योंकि हमारे कुलियोंकी नीयत आगे जानेकी न थी। वे अब जल्दी घर जानेके लिअे अुत्सुक थे। हम लौट पड़े। रास्तेमें देखा कअी लोग बदरीनारायणका भात धूपमें सुखा रहे थे। यह सुखाया हुआ भात वे लोग यहाँसे घर ले जायेंगे। बंगाली बंगाल ले जावेंगे, पंजाबी पंजाब, मारवाड़ी अपनी मरुभूमिमें ले जाकर खायेंगे और कट्टर व कर्मठ महाराष्ट्रीय भी अपने घर ले जाकर और सारे सगे-सम्बन्धियोंको बाँटकर खायेंगे। मद्रासियोंके — ठेठ रामेश्वर तकके मद्रासियोंके — घर भी यह भात पहुँचेगा। जैसे शालिग्राम पत्थर नहीं समझा जाता, जनेअू सूत नहीं समझा जाता, अुसी प्रकार यह भात अन्न नहीं समझा जाता। यह तो प्रत्यक्ष प्रभुका प्रसाद है। यह हमारी काया पवित्र करता है। किसी भी कारणसे यह प्रसाद अपवित्र नहीं होता। यह अग्निकी तरह पवित्र है। हम यह प्रसाद लेकर लौटे।

रास्तेमें जहाँ तहाँ बिच्छूके झुरमुट दिखाओी देते थे। मराठीमें अिस पौदेको 'खाजकुओी' कहते है। कोओी 'खाजकोली' भी कहते हैं। अिसके पत्ते शरीरसे रगड़ खाते ही बड़ी खुजली और जलन पैदा करते हैं।

अेक वैष्णव भक्त तुलसीके पौदेको प्रणाम कर रहा था। अेक पादरीने यह देखा। अुसने तुलसीके पत्ते हाथमें लिये और मसल डाले। भक्त भी पहुँचा हुआ था। वह सहज भावसे कुछ आगे गया और बिच्छूके पौदेको साष्टांग प्रणाम करके बोला— "हमारा यह देव तुलसीसे भी बड़ा है।" दुबारा प्रयोग करके देखनेपर पादरी साहबको भी अिस बातकी प्रतीति हुओी। अुधरके पहाड़ीने हमें यह किस्सा हँस-हँसकर सुनाया। अिस तरहके चुटकुले सभी प्रान्तोंमें सुने जाते हैं। अगर पादरी न हो, तो दूसरा कोओी विधर्मी या नास्तिक हो सकता है। किस्सेका काम तो किसी भी आदमीसे चल जाता है।

हम लालसाँगा पार करके मिलचौडी आये। यहाँ टेहरी राजकी सीमा खतम होती है। कुलियोंके अिकरार यहीं तकके होते है। कैरासिंह और बादरू दोनों अपना पूरा वेतन पाकर गद्‌गद हो गये और हमें छोड़कर लौटे। बिदा होते समय वे हमसे कहने लगे— "आप लोग अितनी तेज़ीसे चले कि हमारे दिन बचे, आधा खर्च भी बचा। लेकिन चलते-चलते दम निकल गया। अब घर जाकर खूब दूध-घी खायेंगे और अगले साल बोझ ढोनेके कामसे छुट्टी लेंगे।" जिस दिन हम मुकाम करते, अुस दिन अुनका आधा खर्च हमपर पड़ता था। गेहूँके आटेके बदले यदि हम अुन्हें दाल-चावलकी खिचड़ी दे देते, तो वह अुनके लिअे बड़ी नियामत हो जाती थी। खिचड़ी देकर दस मील ज़्यादा चला लेनेपर भी वे अुज्र नहीं करते थे। हमने अेक नया कुली किया। वह था तो सीधा, लेकिन भोलेपनमें बातें बहुत करता था। जिस तरह साधु लोग अपने विषयमें बात करते वक्त 'मैं' कहनेके बदले 'यह शरीर' कहा करते हैं, अुसी तरह हमारा कुली भी, जब अुसे अपने बारेमें कुछ कहना होता, तो 'मेरे प्राण'से ही बात शुरु करता था: 'मेरे प्राण थक गये है', 'मेरे प्राणोंको नींद चाहिअे', 'मेरे प्राण अंधेरेमें जानेकी हिम्मत नहीं करते' वगैरा वगैरा!

मिल्चौड़ीसे आगे चलते ही गणओ आया। वहाँ अेक दुकानके पिछवाड़ेवाले लम्बे और सँकरे दालानमें हम सो रहे थे। थके हुअे शरीरको नींदकी अेक झपकी मुश्किलसे मिल पाअी थी कि अितनेमें पड़ोसमें गाना शुरू हो गया। बहुतसे पहाड़ी जमा हुअे थे। आवाज परसे हमने अन्दाज किया कि कोअी लड़का गा रहा है। अुसका गला अच्छा था। तान भी मधुर थी। थोड़ी देर तक नींदमें गानेकी मिठास मिल गयी, और मैं प्रसन्न हुआ। लेकिन गाना अेक कड़ीसे आगे बढ़ता ही न था। आध घंटा हुआ, पौन घंटा हुआ, अेक घंटा हुआ, दो घंटे हो गये! मगर बस वहीकी वही कड़ी चल रही थी। मैं अुकता गया, तंग आ गया, बेचैन हो गया। वह कड़ी मगजमें घुसी, माथा घूमने लगा। परन्तु गाना कुछ भी किये रुकता ही न था। वहाँ फरियाद भी किससे करता? आखिर थककर कब सो गया, भगवान ही जाने। जो संगीत शुरूमें मधुर लगा, वही बादमें अितना अरुचिकर हो गया, यह देखकर मनमें विचार आया कि स्वर्गके देव भी अेक ही से भोग पुनः पुनः भोगकर मेरी तरह ही अुकता अुठते होंगे और मृत्युके लिअे तरसते होंगे। मुझे तुकारामका अेक अभंग याद आयाः

स्वर्गींचे अमर अिच्छिताती देवा।
मृत्युलोकीं व्हावा जन्म आम्हां॥*

अमरत्व यानी, जैसा कि स्वामी दयानन्दने कहा है, कभी समाप्त न होनेवाली आजन्म सजा। मैं कोअी स्वर्गका देव न था, जो मृत्युके लिअे तरसता। मेरे लिअे तो बस, यही जरूरी था कि सवेरा हो और मैं गणओसे आगे रवाना होअूँ।

यहाँ रास्तेमें अच्छा आटा नहीं मिलता। अुसमें चक्कीकी बालू मिली होती ही है। नतीजा यह हुआ कि मेरा पेट बिगड़ गया। मुझे बुखार आने लगा। लेकिन यहाँ रुकनेसे काम थोड़े ही बननेवाला था। चाहे बुखार हो, चाहे न हो, चलना तो पड़ेगा ही। रास्तेमें काठके बरतनमें जमाया हुआ कच्चे दूधका दही मिलता था। वह दही

---

* (अर्थ — स्वर्गके देव अिच्छा करते हैं कि हे अीश्वर, हमें मृत्युलोकमें जन्म चाहिये।)

मैं दिल खोलकर खाता था। दहीसे मुझे नुकसान नहीं हुआ। अुल्टे, पेटके मरोड़ोंके लिअे वह अकसीर दवाके समान सिद्ध हुआ।

४४

'द्वाराहाट'

अेक दिन बिलकुल शाम हो जानेपर हम अेक पहाड़की तलहटीमें जा पहुँचे। रास्तेमें पानी बहुत बरसा। मैं भीग गया था। अेक आदमीके यहाँ कपड़े सुखाने ठहर गया, और पिछड़ गया। दुकानदारने कहा — "तुम्हारे दो साथी आगे द्वाराहाट गये हैं और तुम्हें वहाँ पहुँचनेको कह गये है।" दुकानदारसे सन्देशा सुना और आकाशकी तरफ देखा। अैसा सुन्दर आकाश क्वचित् ही देखनेको मिलता है। अँधेरा बढ़ता चला। मैं सोचने लगा कि आगे जाअूँ या न जाअूँ? मनने तय किया कि अँधेरेमें जानेसे अेक रात यहाँ रह जाना ही अच्छा है। लेकिन दूसरे ही क्षण धुन सवार हुअी कि चला चलूँ। अेक रातका अनुभव मिलेगा। दुकानदारको अचम्भेमें डालकर मैं अुस रातमें आगे बढ़ चला।

पूनोंकी रात थी। लेकिन अँधेरा अितना था कि अमावसकी रातमें भी क्या होता? आकाश काले सियाह मेघोंसे घिरा हुआ था। रास्ता बराबर सूझता न था। दोपहरकी बारिशके कारण रास्ता बीच-बीचमें धुल भी गया था, और छोटे-बड़े गड्ढे बन गये थे। रास्तेमें कअी बार गिरा, लड़खड़ाया, घुटना मोच खा गया। ओढ़ी हुअी शालको मेरी अपेक्षा कटीले झाड़ोंपर ही दया आने लगी, और वह वहीं रह जानेकी बात करने लगी। अुसे मनाकर साथ लिया और आगे चला। ज्यों-ज्यों वक्त जाता था, त्यों-त्यों पछतावा होता था कि पीछे रह जाता, तो कितना अच्छा होता! बहुत चलनेके बाद दिलमें विचार आया कि जितना चलकर आया हूँ, वह अन्तर अधिक है या आगे बचा हुआ अन्तर अधिक है? लौटनेकी सोचूँ

और आगेका रहा हुआ अन्तर दो फर्लांगका ही हो, तो बेवकूफ ही न बनूँ! आगे चलता जाता था, और फिर हिसाब लगाता जाता था। मेरी घड़ी अण्टीमें बँधी थी, लेकिन रातके वक्त अुसमें क्या दिखाअी देता? अन्तमें बुद्धिमानी सूझी कि विचारकी घड़ी बन्द कर दूँ, और चुपचाप चलता चलूँ। धीरज खुटनेसे पहले जंगल ही खुट गया, और मैं द्वाराहाट पहुँचा।

द्वाराहाटमें बाजार लगता है। लेकिन रातके नौ-साढ़ेनौ बज गये थे। सारा गाँव सो रहा था। अब बाबा और स्वामीकी कहाँ तलाश की जाय? किसीका दरवाजा खटखटाअूँ और वह मुझे दुतकार दे तो? और मान लो कि न भी दुतकारे, तो अुससे क्या पूछूँ? हमारे बाबा कहाँ हैं? स्वामी कहाँ हैं? वर्डस्वर्थकी 'अीडियट बॉय' नामक कविता याद आयी। मूर्ख माँने लड़केको गधेपर बैठाकर आधी रातको डॉक्टरके पास भेजा। गधा और बेवकूफ लड़का दोनों जगलमें 'ठण्डी धूप' की सैर करने गये। आखिर मूर्ख माता अुन्हें खोजने निकली। शहरमें जाकर डॉक्टरसे पूछा — "डॉक्टर, डॉक्टर, व्हेर अिज माअी जॉनी?" (डॉक्टर, डॉक्टर, मेरा जॉनी कहाँ है?) बेचारा डॉक्टर अुस पागल माँके दुलारे जॉनीको कहाँसे जाने? नींद खराब होनेके कारण वह चिढ़ गया, और बड़बड़ाता हुआ सो गया। यदि मैं घर घर बाबा और स्वामीकी तलाश करता, तो मेरी भी यही दशा होती। अन्तमें अेक अुपाय सूझा। मैं बड़ी गम्भीर और अूँची आवाजमें अुपनिषदोंके अुन मन्त्रोंको, जो मुझे मुखाग्र थे, गाता हुआ घूमने लगा।

जब बिजली चमकती थी तो कुछ दिखाअी पड जाता था, लेकिन बादमें अँधेरा दुगना हो जाता था। अेक रास्तेके छोरपर पहुँचा तो वहाँ समतल और चिकनी जमीन दिखाअी दी, मानो रेत ही बिछी हो। सोचा, टेनिस कोर्ट यहाँ कैसा? शायद अुधरसे होकर मेरा रास्ता आगे जाता होगा। लेकिन मुझे शक हुआ। अेक पत्थर अुठाकर टेनिस कोर्टपर फेंका। पत्थरने रिपोर्ट दी कि यहाँ पानी है, और तुरन्त जलसमाधि ले ली। अुस परोपकारी पत्थरको धन्यवाद। मैंने दाहिनी तरफका रास्ता लिया और फिर गश्त लगाना शुरू कर दिया। थोड़ा

आगे जाते ही अेक दुकानकी अटारीकी छोटी-सी खिड़की खुली। स्वामीने पुकारा — "काका?" मैंने पूछा — "आनंद?" और लालटेन लेकर स्वामी तुरन्त नीचे आये। बाबाने रसोअी बनाकर रखी थी। अुन्होंने बड़े प्रेमसे, छलछलाती आँखोंसे मुझे भोजन कराया। अितने अँधेरेमें मैं कैसे आ सका, यही सबकी चर्चाका अेक बड़ा भारी विषय बन गया। प्रेमकी बातोंका कभी अन्त आता है? थके हुअे शरीरने तकाजा न किया होता, तो हमारी बातें खतम होनेसे पहले रात ही खतम हुअी होती। सबेरे 'टेनिस कोर्ट' जैसे अुस तालाबके दर्शन किये। तालाबपर लाल-हरी अजीरी काअी जमी हुअी थी।

हम आगे चले। अब रास्ता थोड़ा रह गया था। नीचे घाटीकी राह चलते, तो असह्य बफारेसे भुन जाते। अिसलिअे हमने भी पहाड़ी लोगोंकी तरह पहाड़ियोंकी चोटियोंपर जैसा भी कुछ रास्ता मिला, अुसीसे जाना पसन्द किया। बारबार चढ़ना-अुतरना पड़े तो परवाह नहीं, लेकिन घाटीकी भट्टीसे तो बचना ही चाहिअे। आखिर अलमोड़ा आया। वहाँके परिचित स्थान भी नये-नयेसे मालूम होने लगे। हमने डेढ़-दो महीनेमें कितना क़ीमती अनुभव प्राप्त किया था, कितने विचार विकसित किये थे, कितनी भव्यताका आकण्ठ पान किया था! दृष्टि बिलकुल नअी हो गअी थी। अब अुसे पुराने दृश्य भी नये लगने लगे, तो अिसमें आश्चर्य ही क्या?

अेक यात्रा पूरी हुअी। अेक संकल्प सफल हुआ। लेकिन अिसीमेंसे अमरनाथकी यात्राकी अेक फुनगी निकली, जो हमें चैनसे बैठने नहीं देती थी। बाबा और मैं स्वामीसे विदा लेकर फिर हरिद्वारकी ओर चले। हमें स्वयंभू महादेव अमरनाथके दर्शन करने थे। काश्मीरका भूस्वर्ग देखना था। सृष्टि अनन्त है, दिशा और काल अनन्त है, कार्य-कारण भाव अनन्त है, मूल परब्रह्म अनन्त है, तो मनुष्यकी वासना, अुसके संकल्प और अुसकी योजनाओंका भी अन्त कैसे हो?

४५

फलश्रुति

'रोचनार्था फलश्रुतिः'। किसी भी वस्तुकी तरफ मनुष्यके चित्तको ललचानेके लिअे जो सच्चे-झूठे लाभ बतलाये जाते हैं, वे फलश्रुति हैं। बच्चोंको सच्चे लाभ बतलाये जायँ, तो वे अुनकी निगाहमें नहीं जँचते। अिसलिअे अुन्हें रुचिकर होनेवाले सच्चे या झूठे लाभ बतलानेका हमारे यहाँ अथवा यों कह लीजिये कि दुनियाके सभी देशोंमें, बहुत पुराना रिवाज़ है। अिससे सत्यका कितना अपमान होता है, अिसका विचार कोअी करता ही नहीं। और अेकबार असत्य बोलनेका निश्चय करनेपर फिर अुसमें मर्यादा क्यों रखी जाय? असत्यकी मात्रा नशीली चीजकी तरह बढ़ती ही जाती है। परन्तु अिसीमें असत्यकी दवा भी है। हमारी धार्मिक विधियों और व्रतोंमें फलश्रुतिकी मानो होड़-सी चल रही है। आजके अिश्तिहारबाज जैसी निर्लज्जतासे झूठका बाजार गरम करते हैं, अुतनी ही निर्लज्जता हम पुरानी फलश्रुतियोंमें देख सकते हैं। 'पुत्रार्थी लभते पुत्रम्। धनार्थी लभते धनम्।' आदिकी मालिका जहाँ आरम्भ हुअी कि फिर अुसका अन्त आता ही नहीं। 'भुक्ति मुक्ति च विन्दति' तक पहुँचे बिना कैसे रहा जाय?

अिस ढंगसे यदि हिमालय-यात्राकी अेक फलश्रुति लिखनी हो, तो मुझे कहना चाहिअे कि जो कोअी यह यात्रा करेगा, अुसे कम-से-कम सौ शतायुषी पुत्र होंगे, अुसका घर सुवर्णका होगा, मनचाही शादियाँ करनेपर भी वह जवानका जवान ही रहेगा, स्वर्गकी अप्सराअें, हिमालयके सिद्ध, गन्धर्व और सनत्कुमारादि निवृत्तिशाली ब्रह्मचारी अेक ही समय सम्मिलित रूपसे अुसपर प्रसन्न होंगे। अैसी फलश्रुतिसे मनुष्यकी कैसी दुर्दशा होगी, अिसका विचार करना हमारा काम नहीं।

यदि यात्राकी अितनी फलश्रुति है, तो यात्रा-वर्णनकी फलश्रुति अिससे भी बढ़कर होनी चाहिअे। जो कोअी यह यात्रा-वर्णन पढ़ेगा, अुसे अर्ध-लाभ होगा। जो अिस वर्णन ग्रंथको अपने संग्रहमें रखेगा,

अुसके घर चोर नहीं आयेंगे। जो कोअी यह पुस्तक मोल लेकर ब्राह्मणों और विद्यार्थियोंको — और आजके जमानेमें हरिजनोंको — मुफ्त देगा, अुसपर ग्रंथकार आचार्य और अुसके प्रकाशक सदा सन्तुष्ट रहेंगे। प्रवास किये बिना ही अुसे यात्राका फल मिलेगा, अित्यादि, अित्यादि।

अगर लालचके साथ भय न जोड़ा जाय, तो काम अधूरा माना जायगा। अिसलिअे, जो कोअी अिस पुस्तककी बुराअी करेगा, अिसके वचनोंपर मनमें सन्देह करेगा, अुसे यह होगा, वह होगा। और अूपरकी फलश्रुतिके विषयमें जो शंका करेगा, वह तो कम-से-कम चार कल्पतक रौरव नरकमें सड़ता रहेगा। और जो कोअी अिस यात्रा-वर्णनको पढ़कर फलश्रुतिके अध्यायको छोड़ देगा, 'वृथा पाठो भवेत्तस्य श्रम अेव ह्युदाहृत:'।

हिन्दू धर्मपर फलश्रुतिने जितना अत्याचार किया है, अुतना शायद नास्तिकताने भी न किया होगा।

परन्तु मुझे अपनी यात्राकी फलश्रुति अिससे बिलकुल भिन्न रीतिसे देनी है। मुझे यह बतलाना है कि अिस यात्रासे मुझे कौनसा लाभ हुआ, और जो कोअी अिस प्रकारकी यात्रा करेगा, अुसे प्रत्यक्ष क्या-क्या लाभ हो सकते हैं। अितना हुआ कि मेरा काम पूरा हो गया।

शुरूमें ही मुझे यह स्वीकार कर लेना चाहिअे कि अिस तरहकी यात्राके लिअे जो तैयारी पहलेसे करनी चाहिअे, वह मैंने नहीं की थी। पूर्व तैयारीके बिना किये गये काम कम-से-कम फल देते हैं। शिक्षा जीवनकी पूर्व तैयारी ही है। अिसलिअे शिक्षाशास्त्रीको तो हर बातमें पूरीपूरी पूर्व तैयारी करनेका खयाल रहना ही चाहिअे। लेकिन आजकलके शिक्षाशास्त्री दूसरोंको जो शिक्षा देते हैं, अुसे अपने जीवनमें लानेकी परवाह नहीं करते। मुझे तो याद नहीं आता कि मैंने अपने जीवनमें किसी भी अवसरपर ठीक ठीक पूर्व तैयारी की हो। अिसलिअे मैं अिस यात्राकी फलश्रुतिमें क्या कहूँ?

हिमालयकी यात्रा अथवा अुत्तरकी किसी भी यात्रापर जानेवालेको हिन्दी भाषाका कामचलाअू ज्ञान तो होना ही चाहिअे। मेरे पास यह ज्ञान नहीं था। जिस प्रदेशकी यात्रा कर रहे हों, अुसके स्थानिक अितिहास

और स्थानिक भूगोलकी साधारण जानकारी तो यात्रीको होनी ही चाहिअे। मुझे वह भी नहीं थी। यात्राके लिअे रवाना होते समय तीर्थक्षेत्रका माहात्म्य, जैसा भी मिले, पढ़ जाना चाहिअे। अन्यथा मनुष्य यात्राके आधे काव्यको खो बैठेगा। पूर्व तैयारीके नाते मेरे पास अुत्साहकी पूँजी यथेष्ठ थी। शरीर दुबला-पतला लेकिन कष्ट-सहिष्णु था। बरबाद करनेके लिअे समयकी कमी न थी। बिना किसी अुद्देश्यके जीवन बितानेकी मानसिक तैयारी भी थी। मुझे रसोअी बनाना आता था। पानीमें तैरना आता था, और अकेले-अकेले मनोराज्यमें मग्न होना भी आता था। प्रकृतिके साथ अेकरूप होने जितनी मनोवृत्ति बन चुकी थी, और यह श्रद्धा थी कि निष्पाप प्रवृत्तिका कोअी सात्त्विक फल ही मिलेगा। और, दूसरी बड़ी-से-बड़ी तैयारी थी प्रेमी मित्रोंका साथ।

वेदान्तके ग्रन्थोंमें कहा है कि भक्तोंमें दो प्रकारकी वृत्तियाँ होती हैं, बिल्लीके बच्चोंकी और बन्दरके बच्चोंकी। बिल्लीका बच्चा सभी तरह निराधार होता है: आँखें मींचकर पड़ा रहता है और मनमें कहता है कि मेरी माँ आयेगी और मुझे अुठाकर ले जायगी। लेकिन बँदरीका बच्चा भरसक स्वावलम्बी होता है। मेरी माँ कहाँ है, सकट किस तरफसे आ सकता है, आदि बातोंका वह खुद ही ध्यान रखता है, और सकटके समय झट जाकर माँसे चिपट जाता है। मनुष्यमें ये दोनों तरहकी वृत्तियाँ होती हैं। मुझमें भी ये दोनों वृत्तियाँ अुचित मात्रामें थीं, अिसलिअे अिसे भी पूर्व तैयारीका अेक अंग माननेमें हर्ज नहीं।

जब कोअी हिन्दू हिमालयकी यात्रा करने निकलता है, तो अुसमें अुसका मुख्य अुद्देश्य धार्मिक ही हो सकता है। हम हिमालयका दूसरी दृष्टिसे विचार ही नहीं कर सकते। परन्तु धार्मिक हेतुके मानी क्या हैं? हिन्दू समाजमें यह धारणा तो होती ही है कि हम पैदल चलें। पवित्र मानी जानेवाली भूमिपर हमारे शरीरका भार पड़ा, अिसलिअे हम पावन तो हो ही गये!- यदि अैसा न होता, तो अन्धे और बहरे यात्रा करने न जाते। जब कोअी यूरोपनिवासी यात्रा करता है, तो वह अपने साथ सुख-सुविधाके जितने साधन ले सकता है, ले लेता है। वह शरीरका वजन,

शरीरकी शक्ति और शरीरका आनन्द बढ़ानेका प्रयत्न सर्व प्रथम करता है। फोटो खींचने और चित्र बनानेकी सामग्री साथ रखकर वह अपने संस्कारोंको स्थायी रूप देनेकी कोशिश करता है। आड़ा-टेढ़ा जितना घूमा जा सके, घूमकर जो दूसरोंने न देखा या जाना हो, अुसीको प्राप्त करके किसी न किसी बातकी सर्व प्रथम गवेषणा करनेका वह प्रयत्न करता है। धार्मिक यात्रामें हम जितने कष्ट अुठाते है, अुतना ही यात्राका पुण्य बढ़ता है। भोगविलासकी बदौलत या आलसीकी बदौलत शरीरपर जो जड़ता चढ़ जाती है, अुसे निकाल फेंकना भी अेक धार्मिक साधना मानी गयी है। मेरी समझमें हमारे लोगोंने यात्राओंमें तितिक्षाका तत्त्व दाखिल करके अुन्हें बहुत अूँचा अुठा दिया है। यदि यात्रियोंमें तितिक्षा वृत्ति न हो, तपोलालसा न हो, तो यात्राके धाम पवित्र नहीं रह सकते। और अुस दशामें अुन-अुन तीर्थस्थानोंका प्राकृतिक सौंदर्य भी फीका पड़े बिना नहीं रह सकता। कष्ट झेलनेसे, स्वेच्छापूर्वक तरह तरहकी असुविधायें सहनेसे, मनुष्यकी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक भूख खिलती है, और जीवनका आनन्द सात्त्विक अेवं विशुद्ध बनता है। विलासिता और कलामें वैर होनेसे तितिक्षाके द्वारा ही मनुष्य रसास्वादकी शक्तिका विकास और संवर्धन कर सकता है। जो अमुक प्रकारसे तपस्वी होता है, वही कलारसिक हो सकता है।

धार्मिक लाभोंमें दूसरा बड़ा लाभ है, सत्पुरुषोंके दर्शन। अैसे अुदाहरण विरले हैं कि किसी तीर्थका माहात्म्य देखकर सत्पुरुष वहाँ जा बसे हों। प्रकृतिकी भव्यता देखकर या किसी प्रसंग विशेषकी पवित्रतासे प्रभावित होकर कोअी सत्पुरुष वहाँ बस जाता है, और बादमें वह स्थान तीर्थकी पदवी प्राप्त करता है। यदि अनेक सत्पुरुष अेक ही स्थानको दीर्घकालके लिअे पसन्द करें, अथवा कोअी प्रभावशाली व्यक्ति किसी स्थानके माहात्म्यको बढ़ावा दे दे, तो तुरन्त ही वह अेक बड़ा तीर्थस्थान माना जाने लगता है। फिर वहाँ साधुसन्त, तपस्वी और मुनियोंका आना-जाना जारी रहता है। हरअेक तीर्थके साथ जो-जो घटनायें जुड़ जाती हैं, वे सब यात्रियोंके मुँहमें जीवित रहती हैं। अिसलिअे अैसे स्थानोंमें धर्मजीवन और धर्मरहस्य अनायास ही जाग्रत रहता है।

बादमें ये स्थान सहज ही धार्मिक विचारका विनिमय करनेवाले सम्मेलन स्थान-जैसे बन जाते हैं।

लोगोंकी धार्मिक वृत्तिके कारण यहाँ अखण्ड रूपसे ज्ञानके सत्र चलते रहनेकी सुविधायें अुपस्थित हो जाती हैं। और फिर यहाँ धर्म-विचारोंकी परख भी भलीभाँति होने लगती है। अनेक लोगोंके विचार आमने-सामने अेक-दूसरेसे टकराते हैं और अुसमेंसे अत्युच्च समन्वयकी दृष्टि भी विकसित होती है।

बड़े बड़े तीर्थस्थानोंमें मैंने ये चारों लाभ देखे हैं।

सच्चे यात्री अक्सर यात्रामें ब्रह्मचर्यका पालन करते ही हैं; वे यथासम्भव झूठ नहीं बोलते, न किसीको धोखा देते हैं। यह भी अेक बड़ा भारी धार्मिक लाभ ही समझा जाना चाहिअे। यदि मनुष्यने अेक बार शुद्ध जीवनका आनन्द चख लिया, तो अुसे अैसा लगने लगता है कि आगे भी अैसा ही जीवन बिताना पड़े तो अच्छा हो। और कभी-कभी मनुष्य अुस संकल्पको दृढ़ भी कर लेता है। यात्राके कारण धार्मिक धारणाओं, भावनाओं, रीत-रिवाजों और अुनके काव्यका भण्डार तो मनुष्यके हृदयमें बढ़ता ही है। यही नहीं, बल्कि अिस सबके मूलस्वरूप अुसके विचार भी अधिकाधिक अुदार होते जाते हैं। जब मद्रासी ब्राह्मण काश्मीर जाता है, और काश्मीरका पण्डित महाराष्ट्रमें पहुँचता है, तो यह देखकर कि कट्टर धार्मिक माने जानेवाले लोगोंमें भी कितना फरक होता है, मनुष्यका मन चाहे जैसे हेरफेरके लिअे तैयार हो जाता है। और यह अुदारता ही शिक्षाका बड़े-से-बड़ा फल है।

शिक्षाके मुख्य क्षेत्र दो हैं. अेक मानसशास्त्र और दूसरा समाजशास्त्र। यदि मनुष्य दोनों दिशाओंमें दूर तक जा सका, तो वह शिक्षित है ही। मनुष्य अपने भीतर पैठकर, अन्तर्मुख होकर, अपने आपको जाँच-परख कर मानसशास्त्रमें डुबकी लगाता है; जब कि अपने आसपासका निरीक्षण करके, दूर तकके कार्य-कारण-भावकी जाँच करके और साधारण मनुष्य किस किस तरहका बर्ताव करते हैं, अिसका लेखा लगाकर वह समाजशास्त्रकी रचना करता है। भीतर पैठकर वह अन्तर्यामीको पहचान सकता है और बाहर सब तरफ़ घूमकर वह विराट्

पुरुषका आकलन कर सकता है। अन्तर्यामीकी पहचान अध्यात्मशास्त्र है, और विराट् पुरुषका परिचय सृष्टिशास्त्र। दोनोंके मेलसे धर्मशास्त्र बनता है। अिस धर्मशास्त्रका परिशीलन ही यथार्थ शिक्षा है।

यात्राका सद्यःफलदायी लाभ तो प्रकृतिकी लीलाके दर्शन हैं। अूँचे-अूँचे पर्वत और नीची घाटियाँ, चौडी नदियाँ और अुनसे भी चौडे पुलिन, सब तरफ अुगे हुअे पेड़ और अुनके अूपर-नीचे आश्रय लेनेवाले पशु-पक्षी — यह सब अेक महान काव्य है। जहाँ पहाड़-पर्वत न हों, और जमीन सब तरफ बिलकुल सीधी-समतल हो, वहाँ भी ऋतुके अनुरूप सौन्दर्य देखनेको मिलता है। कभी-कभी जहाँ पानीकी अेक बूँद नहीं होती, वहाँ भी कोरे जल-प्रवाह धूपमें दौड़ते हुअे हरिणोंको धोखा देकर मार डालते हैं। लेकिन अिसके कारण मृगजलकी शोभा कम नहीं होती। और अगर हवामें सचमुच नमी हो, तो अेकाध अिन्द्रधनुष अचूक रूपसे अपना प्रभाव दिखाता ही है।

और यदि समुद्रने दर्शन दिये, तो ज्वारभाटारूपी अुसका श्वासोच्छ्वास हमारा ध्यान आकर्षित किये बिना नहीं रहता। यदि हमारी साँससे हमारा रक्त शुद्ध होता है, तो समुद्रके अिस ज्वारभाटेसे क्या शुद्ध होता होगा, अिस आशयकी कल्पनायें अुठे बिना कैसे रहेंगी? और जब समुद्रकी तितलियाँ (पतवारवाले जहाज़) लहरों पर डोलती हैं, तो अेक अैसी अुत्कण्ठा जाग्रत होती है कि बस अब लहरोंमेंसे फूल खिल अुठेंगे। और जिस प्रकार लहरोंके कारण समुद्रमें पानीका हृदय अूँचा-नीचा होता है, अुसी प्रकार कभी-कभी ज़मीनपर भी वैसे ही दृश्य स्थिर रूपमें दीख पड़ते हैं।

सूर्योदय और सूर्यास्त तो नित्य-नूतन कवित्वकी अनन्तता है। अिन अुभय संध्याओंकी शोभा देशानुरूप बदलती है, ऋतु अनुरूप बदलती है, क्षण-क्षणमें बदलती है, और बादलोंकी सनकके अनुसार भी बदलती है।

और बादल! बादल तो अनन्त आकाशके चिरप्रवासी यात्री हैं। आकाश कभी बदलता नहीं, और बादल अेक क्षण को भी स्थिर रहते नहीं। अिन दो जनोंकी जोड़ीके चंगुलमें फँसे हुअे बेचारे सूर्यको नित्य नयी

भूमिकाका अभिनय करना पड़ता है। पृथ्वी — बहुरत्ना वसुन्धरा — अपना कितना ही वैभव क्यों न दिखाये, वह थोड़ा ही है, ये बादल हमेशा यह सिद्ध करनेकी फ़िक्रमें रहते हैं। यदि कोओी अिन बादलोंसे स्पर्धा करना चाहता होगा, तो वे होंगे हिमालयकी बरफ़के ढेर। परन्तु हिमालय पर्वतसे भी बड़े बड़े पर्वत चाहे जहाँ खड़े करके ये बादल हिमालयके, बल्कि पृथ्वीके गर्वका हरण करते हैं। अन्तर अितना ही है कि पहाड़ोंपर छोटे-बड़े असंख्य वृक्ष अुगते हैं, जब कि बादलोंपर तो दूसरे बादल ही अुगते हैं।

यात्री कितना ही घुमक्कड़ और विरक्त क्यों न हो, फिर भी अुसे अपने पेटको तो साथ ही लिये-लिये घूमना पड़ता है। अिसलिअे जब दो पहरकी भूखका समय होता है, तो अुसे अतिथिशील झोंपड़ीका काव्य सबसे अधिक आकर्षक लगता है। यों भी गाँवोंकी झोंपड़ियाँ आकर्षक तो होती ही हैं। झोंपड़े, मवेशियोंके कोठे, खेती और भाँति-भाँतिकी क्रियायें, जुलाहा, कुम्हार, सुनार, बढ़अी, लुहार आदि कारीगरोंके फैले हुअे धन्धे, सभी अलग-अलग और मिलकर अेक बड़ा काव्य बनता है। नदीका काव्य अेक प्रकारका और अुसपर बने पुलका काव्य दूसरे ही प्रकारका होता है।

यों यात्रामें निकलनेवाला मनुष्य जिस प्रकार प्रकृतिकी विविध रंगोंवाली लीला देख सकता है, अुसी प्रकार अुसे विविध भाँतिके लोगोंके दर्शन भी होते हैं। हर जगहकी भाषा अलग, रिवाज अलग, मकानोंकी बनावट अलग, पोशाक अलग। अिस भेदके मूलमें क्या-क्या सहूलियतें हैं, किन आदर्शोंका परिपोष हुआ है, यदि मनुष्य अिसकी खोज करे तो अुसे क़ीमती शिक्षण मिले बिना न रहे। और ज्यों-ज्यों वह गहराअीमें जाता है, त्यों-त्यों अुस विविधताकी जड़में अुसे अेक सार्वभौम अेकताकी प्रतीति होती है, और यह देखकर अेक विशेष आनन्द प्राप्त होता है कि अेक ही मनुष्य हृदय कितने प्रकारसे विकसित होता है। लोकजीवन यानी मनुष्य-जातिकी मोटी बुद्धिकी सूक्ष्मता। प्रकृतिके बदलते ही मनुष्यको बरबस अपनी आदतें बदलनी होती हैं। मनुष्यके विचार करनेसे अिनकार कर देनेपर भी

रोज़-रोजकी टक्करें अुसे किसी-न-किसी दिन तनिक विचार करनेको बाध्य करती हैं, और जो काम बुद्धि नहीं करती वह काल कर डालता है। अिस तरह दीर्घकालकी सफ़ाओके कारण जो मनुष्य जीवन बना है, अुसकी स्वाभाविक मोहकता आँखोंमें समाये बिना नहीं रहती।

और चूँकि यह सब लोक-स्वभावमें यथार्थरूपसे आ चुका है, अिसलिअे लोग अिसमें अेक तरहका स्वास्थ्य भी अनुभव करते हैं। जिस तरह अचानक आअी हुअी अमीरी मनुष्यको अटपटी लगती है, वैसा अिस संस्कृतिमें नहीं होता। अिसलिअे अिस सादगीमें असाधारण गौरव रहता है। और अिस सारी लोकसंस्कृतिके नये नये प्रकारोंको अुनके स्वाभाविक वातावरणमें जाकर जाँचने-पड़तालनेसे जो शिक्षा मिलती है, अुसका मूल्य कौन आँक सकता है!

हमारे देशमें लिखित रूपमें जितना अितिहास संकलित नहीं है, अुतना हमारे जीवनमें है। अिसलिअे यात्रा पर्यटनमें अितिहास-दर्शन भी होता ही है। और फिर हिमालयका प्रदेश तो भारतवर्षका प्रांतदेश ठहरा। यहाँ संस्कृति और क्रान्तिकी न जाने कितनी लहरें आकर शान्त हुअी होंगी। कुरुपांचालोंकी संस्कृतिसे लेकर कर्नल यंग हस्बैंडके आक्रमणसे बद्ध हुअी तिब्बतियोंकी आजकी संस्कृति तक सारी चीज़ोंकी झनक यहाँ अेक साथ सुननेको मिलती है। अिस तरफ हमारा ध्यान दिलाकर भगिनी निवेदिताने हिन्दू समाजका बड़ा अुपकार किया है।

भू-रचनाकी दृष्टिसे और भूस्तरशास्त्रकी दृष्टिसे भी हिमालयकी यात्रामें बहुत-सी जानकारी मिलती है। यदि हिमालय रास्तेमें आड़ा न पड़ा होता, तो रूस और चीनकी ठण्डी हवाओं और वहाँकी कठोर संस्कृति, दोनोंके हमले हमपर हुअे होते। यदि गंगा नदी न होती, तो जैसे हमारी आजकी सारी शान-शौकत न होती, वैसे ही यदि हिमालय न होता, तो हिमालय जैसी अुत्तुंग आर्यसंस्कृति भी यहाँ कभी पनप न पाती।

देशकी आत्मा और देशका विराट् स्वरूप, दोनोंका अेक ही साथ दर्शन करनेके लिअे यात्रा ही अेकमात्र अमोघ साधन है।